ॐ

प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी

(एक आदर्श जीवन चरित्र)

संग्रहकर्ता

प्रसिद्ध व्याख्याता पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज

लेखक

आचार्य पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री

M. O. Ph., H. M. D.

काव्य-साहित्य-तीर्थ-आचार्य, प्राच्य विद्या वारिधि

आयुर्वेदाचार्य, विद्यासागर

भूतपूर्व प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय

प्रकाशक

श्री सोहनलाल जैन ग्रन्थमाला

विक्रमी सम्वत २०१०

वीर निर्वाण सम्वत २४७९

प्रथम वृत्ती १०००] [मूल्य ४) चार रुपया

मुद्रक—ओसवाल प्रिंटिंग प्रेस, बस्ती हरफूलसिंह, सदर बाजार, देहली

दो शब्द

सम्वत् १९९८ में पञ्जाबकेशरी पूज्य श्री काशीराम जी महाराज राजकोट (काठियावाड़) के चातुर्मास में कानोड़ मेवाड़ निवासी श्री उदयलाल जैन ने प्रधान आचार्य पूज्य श्री मोहनलाल जी महाराज का जीवन चरित्र लिखा था। उस समय राजकोट के श्री संघ ने प्रेस कापी के लिए ५००) व्यय किये थे, इसके लिए उनको धन्यवाद दिया जाता है। किन्तु वह कापी सन् १९४७ में लाहौर के प्रेस में छपने के लिये जा रही थी, परन्तु विभाजन होने के कारण पुस्तक नहीं छप सकी और प्रेस कापी नष्ट हो गई। पुनः सम्वत् २०१० में जीवन चरित्र का मैटर संग्रह करके पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री द्वारा लिखी जाने के बाद लाला बनारसीदास प्रेमचन्द ओसवाल सदर बाजार, देहली के प्रयत्न से जीवन चरित्र प्रकाशित किया गया।

—रतनचन्द ओसवाल
(R. C. Oswal)

प्राप्ति स्थानः—

बनारसीदास प्रेमचन्द ओसवाल

सदर बाजार, देहली।

पूज्य श्री सोहनलाल जैन धर्मोपकरण सामग्री भण्डार

अम्बाला शहर।

श्रीमान लाला उलफतराय जी जैन
सुपुत्र लाला अर्जुनलाल जैन जींद निवासी
बेअर्ड रोड, नई दिल्ली

श्रीमान लाला टेकचन्द जी
मालिक फर्म
लाला गैंदामल हेमराज, नई दिल्ली

इस पुस्तक के प्रकाशित करने में निम्नलिखित महानुभावों ने सहायता प्रदान की है—

५००) लाला वलायतीराम जी, मालिक फर्म लाला गेंदामल वलायतीराम, न्यू देहली।

५००) लाला उल्फतराय जी जैन, सुपुत्र लाला अर्जुनलाल जैन, रईस, जींद निवासी, हाल बेअर्ड रोड, नई देहली।

५००) लाला टेकचन्द जी, मालिक फर्म लाला गेंदामल हेमराज, न्यू देहली।

२५०) लाला फकीरचन्द जी, मालिक फर्म लाला काकूशाह फकीरचन्द, क्लाथ मर्चेन्ट्स, चांदनी चौक, देहली।

२५०) लाला अरीदमनलाल राजकुमार, सुपुत्र लाला जसवन्तमल जी जैन अमृतसर वाले, सदर बाजार, देहली।

२५०) सेठ रघुनाथसहाय जी जैन रईस, शोरा कोठी, सब्जी मंडी, देहली।

२५०) सेठ वशेशरनाथ मक्खनलाल जी जैन रईस, शोरा कोठी, सब्जी मंडी, देहली।

१०१) लाला काकूशाह उत्तमशाह, क्लाथ मर्चेन्टस, चांदनी चौक, देहली।

१००) लाला अमोलकचन्द जी जैन, हांसी वाले।

५१) धर्मपत्नी लाला ज्योतीप्रसाद जी, सब्जी मंडी, देहली।

५०) लाला लालचन्द जी रावलपिण्डी वाले।

२५) श्रीमती त्रिलोक बाई धर्मपत्नी लाला हीरालाल जी स्यालकोट वाले।

२५) लाला मुसद्दीलाल मलखानसिंह जैन सर्राफ, चांदनी चौक, देहली।

२१) लाला ताराचन्द जी स्यालकोट वाले।

२०) लाला रवेलचन्द जी रावलपिण्डी वाले।

१०) पुष्पादेवी सुपुत्री लाला लक्ष्मीचन्द जी पटौदी वाले।

३४७) गुप्त दान।

३२५०)

श्रीमान सेठ बशेशरनाथ जी जैन रईस
सब्ज़ी मंडी, शोरा कोठी, दिल्ली

श्रीमान सेठ रघुनाथसहाय जी जैन रईस
सब्ज़ी मंडी, शोरा कोठी, दिल्ली

लाला उत्तमशाह जी जैन
मालिक फर्म
काकूशाह उत्तमशाह क्लॉथ मर्चेंट
चांदनी चौक, दिल्ली

लाला जसवन्तमल जी जैन
अमृतसर वाले

लाला फकीरचन्द जी जैन
सुपुत्र लाला काकूशाह रावलपिंडी
निवासी, काकूशाह क्लाथ हाउस,
चांदनी चौक, दिल्ली

प्रस्तावना

आज भारत को स्वतंत्र हुए लगभग छै वर्ष हो गए, किन्तु उसमें स्वराज्य स्थापित हो जाने पर भी स्वराज्य की स्थापना अभी मृगमरीचिका ही बनी हुई है। युद्धपूर्व काल की महंगाई सुरसा के बदन के समान इतने भयंकर रूप में बढ़ती जाती है कि आज अत्यधिक बेरोजगारी बढ़ जाने पर भी महंगाई कम नहीं होती। युद्धकाल की अपेक्षा तो वह कई गुना बढ़ चुकी है।

यद्यपि भारत के प्रधानमंत्री मानवोचित गुणों से विभूषित एक उच्चकोटि के राजनीतिक व्यक्ति हैं, किन्तु तब भी देश में भृष्टाचार, घूसखोरी, पक्षपात तथा चोर बाजार आदि की बुराइयां इतने अधिक परिमाण में प्रचलित हैं कि उसमें अत्यन्त सम्पन्न तथा निम्न श्रेणी के मजदूर ही अपना निर्वाह सुचारु रूप से कर सकते हैं। मध्य श्रेणी तो उसके कारण एकदम नष्ट होती जा रही है। मध्य श्रेणी में आज इतनी भयंकर बेकारी आई हुई है कि योग्यतम व्यक्ति को भी आज काम मिलना असम्भवप्राय है।

शासन में भृष्टाचार तथा पक्षपात इतना अधिक बढ़ गया है कि जब कोई स्थान खाली होता है तो जनता को उसकी सूचना मिलने से पूर्व ही पदाधिकारी लोग उसकी पूर्ति कर लेते हैं।

इस प्रकार हमारे भारतीय समाज में आज आचरण की त्रुटि इतनी अधिक हो गई है कि जितनी कभी भी नहीं थी। यह एक

ऐतिहासिक तथ्य है कि पराधीन देश का आचरण अत्यन्त गिर जाया करता है। भारतवासियों के आचरण इतने मुस्लिम काल में नहीं गिरे थे, जितने अंग्रेजों के राज्य काल में गिर गए। मुसलमानों के समय भारतवासियों को अधिक से अधिक धार्मिक दासता ही सहन करनी पड़ी, किन्तु अंग्रेजी शासन में उनको राजनीतिक दासता के साथ साथ आर्थिक दासता का शिकार भी बनना पड़ा। इसी से उसका आचरण गिरना आरम्भ हुआ। इस बात को सभी समाचारपत्र पढ़ने वाले पाठक जानते हैं कि उसी सिद्धान्त के कारण प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मनों के तथा द्वितीय महायुद्ध के बाद जापानियों के आचरण अत्यधिक गिर गए थे।

भारतवासियों के गिरे हुए आचरण का पता वास्तव में संसार को तब लगा जब उनके ऊपर से अंग्रेजों की छत्रछाया हट गई। अंग्रेजों के शासन काल में औसत भारतवासी कानून से भयभीत होने के कारण दुराचरण करता हुआ डरता था, किन्तु उनके चले जाने पर सबका भय निकल गया और अब वह वर्तमान शासन की चिन्ता न करते हुए अपनी दोनों जेबें भरने के लिये खुल कर खेल रहे हैं। इसको राजनीतिक शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि

"आज औसत भारतवासी में नागरिकता की भावना का अभाव है।"

किन्तु इसी को धार्मिकता का अभाव भी कहा जा सकता है। वास्तव में धार्मिकता तथा नागरिता में कोई विशेष भेद नहीं है। अच्छा नागरिक सदा ही धार्मिक होगा और एक धार्मिक व्यक्ति सदा ही एक अच्छा नागरिक होगा।

वास्तव में धार्मिकता तथा नागरिकता दोनों के लक्षण एक दूसरे से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। नागरिकता का मूल सिद्धान्त है

"नगर में सुख से रहो और दूसरों को सुख से रहने दो।" अर्थात् अपने नागरिक अधिकारों का उपभोग करते हुए दूसरे के नागरिक अधिकारों में बाधा मत डालो।

जैन धर्म के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदारसंतोष तथा परिग्रहपरिमाण यह पांचों अणुव्रत ही नागरिक में भी होने आवश्यक हैं। यह पांचों अणुव्रत जिस व्यक्ति में होंगे वह निश्चय से उच्चकोटि का नागरिक तथा उच्चकोटि का धार्मिक व्यक्ति होगा।

जैन धर्म गृहस्थों के लिये इन्हीं पांचों अणुव्रतों पर युग की आदि से बल देता आया है। इसीलिये प्राय: जैनी अच्छे नागरिक प्रमाणित होते रहे हैं।

किन्तु जैनियों के शासनकाल में कुछ जैन धर्म के विद्वेषियों ने जैन धर्म को इस प्रकार झूठा बदनाम किया कि उस के संबन्ध में अनेक अनर्गल बातों का प्रचार किया गया। इसमें सबसे अधिक अनर्गल प्रचार जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में किया गया।

आज जैन धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में इतनी भ्रांतियां हैं—

१. जैन धर्म शंकराचार्य के बाद चला।

२. जैन धर्म बौद्ध धर्म की शाखा है।

३. जैन धर्म को भगवान् महावीर स्वामी ने चलाया।

४. जैन धर्म को भगवान् पार्श्वनाथ ने चलाया।

क्या जैनधर्म शंकराचार्य के बाद चला ?

इनमें से प्रथम तथा दूसरी बात केवल लोगों के ओठों में है। आज भी ऐसे मूर्खों की कमी नहीं जो जैन धर्म को शंकराचार्य के बाद चला हुआ अथवा बौद्ध धर्म की शाखा मानते हैं। किन्तु उनको यह पता नहीं कि यह बात आज तक किसी भी ऐतिहासिक विद्वान् ने नहीं लिखी है। वास्तव में इतिहास का कोई विद्वान् ऐसी अनर्गल बात को अपनी लेखनी से लिख ही नहीं सकता।

स्वामी शंकराचार्य के ही शिष्य द्वारा लिखे हुए 'शंकर दिग्विजय' नामक ग्रन्थ में उज्जैन के राजा की सभा में स्वामी शंकराचार्य तथा जैनियों के शास्त्रार्थ का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वामी शंकराचार्य द्वारा लिखे हुए वेदान्त सूत्र के शांकर भाष्य की टीका में उन्होंने

नैकस्मिनसन्भवात्

सूत्र की टीका में जैनियों के 'सप्त भङ्गी न्याय' का खंडन किया है। यद्यपि स्वामी शंकराचार्य ने जैनियों के 'सप्त भङ्गी न्याय' के इस खंडन से पूर्व पूर्वपक्ष को समझने का लेशमात्र भी यत्न नहीं किया, किन्तु इससे उन लोगों की मूर्खता प्रकट हो जाती है जो जैनधर्म को स्वामी शंकराचार्य्य के बाद चला हुआ मानते हैं।

क्या जैनधर्म बौद्ध धर्म की शाखा है ?

यह बात समझ में नहीं आती कि जैन धर्म को बौद्धमत की शाखा किस आधार पर कहा गया। बौद्ध त्रिपिटकों में स्थान स्थान पर भगवान् महावीर स्वामी को गौतम बुद्ध का समकालीन

तथा प्रतिस्पर्द्धी लिखा गया है। इसके अतिरिक्त गौतम बुद्ध ने अपने आरम्भिक जीवन का वर्णन करते हुए यह भी स्पष्ट कहा है कि "मैंने सत्य की खोज में भारत के सभी मतों के अनुसार तप करके देखा। मैंने जटाएं भी रखीं और केशों का लोंच करके पांच महाव्रतों का पालन भी किया और कई २ दिन तक उपवास भी रखे।" इसका यह साफ़ अर्थ है कि गौतम बुद्ध ने कभी जैन दीक्षा भी ली थी। इस प्रकार जैन धर्म का बौद्ध धर्म की शाखा होना तो दूर, उल्टे बौद्ध धर्म को जैन धर्म की शाखा सुगमता से कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में जैन धर्म को बौद्ध धर्म की शाखा बतलाना अपने अज्ञान को प्रकट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

क्या जैन धर्म को भगवान् महावीर स्वामी ने चलाया ?

यह एक ऐसा प्रश्न है जो हमारे ऊपर विदेशियों द्वारा लादा गया है। भारत का कोई धर्म भगवान् महावीर स्वामी को जैन धर्म का प्रवर्तक नहीं मानता। बौद्ध ग्रन्थों में भगवान् महावीर स्वामी को जहां गौतम बुद्ध का समकालीन तथा प्रतिस्पर्द्धी बतलाया गया है, वहां उनको जैन धर्म का प्रवर्तक नहीं बतलाया गया। इसके विरुद्ध बौद्ध ग्रन्थों में स्थान स्थान पर जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों का वर्णन मिलता है।

प्रसिद्ध बौद्ध आचा धर्म कीर्ति रा बनाए हुए बौद्ध न्याय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'न्याय बिन्दु' के विद्या विलास प्रेस काशी के संस्करण के पृष्ठ १२६ तथा भाषा पृष्ठ ३२ पर संदिग्ध साध्य वैधर्म्य का उदाहरण देते हुए कहा गया है—

'अत्रवैधर्म्योदाहरणम् । यः सर्वज्ञो आप्तो वा स

ज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान् । तद्यथा—ऋषभवर्द्धमानादिरिति' ।

इस प्रमाण में वैधर्म्य का उदाहरण—

जो सर्वज्ञ या आप्त होता है वह ज्योतिर्ज्ञान आदि का उपदेश देता है । जैसे—जैन ऋषभ और वर्द्धमान आदि ।

इसके पश्चात् इसी ग्रन्थ में पृष्ठ १२८ (संस्कृत) तथा पृष्ठ ३३ (भाषा) में कहा गया है—

अत्रैवैधर्म्योदाहरणम्—यो वीतरागो न तस्य परिग्रहाग्रहो । यथा—ऋषभादेरिति । ऋषभादेरवीतरागत्वपरिग्रहयोगयोः साध्यसाधनधर्मयोः संदिग्धो व्यतिरेकः ।

इसमें वैधर्म्योदाहरण—

जो वीतराग होता है उसके परिग्रह और आग्रह नहीं होता । जैसे—ऋषभ आदि । ऋषभ आदि के साध्य धर्म अवीतरागत्व और साधन धर्म परिग्रह और आग्रह के योग में व्यतिरेक संदिग्ध है ।

न्याय विन्दु की उपरोक्त पंक्तियों से यह प्रकट है कि यदि आचार्य धर्मकीर्ति जैन धर्म का आदि उपदेष्टा भगवान् महावीर को मानते तो वह उनके पूर्व ऋषभ देव का नाम न रखते । इतना ही नहीं, दूसरे उदाहरण में तो वह भगवान् महावीर के नाम को भी उड़ा कर यह प्रकट करते हैं कि उनकी दृष्टि में जैन धर्म के आदि उपदेष्टा भगवान् ऋषभ देव ही हैं ।

यहां यह बात ध्यान रखने की है इस उदाहरण से धर्मकीर्ति जैन तीर्थंकरों के सर्वज्ञ होने में सन्देह प्रकट करते हैं । वह उनकी सर्वज्ञता का पूर्ण निषेध नहीं करते ।

इस प्रकार बौद्ध ग्रन्थ कहीं भी यह नहीं कहते कि भगवान् महावीर स्वामी जैन धर्म के आदि उपदेष्टा थे।

वैदिक सम्प्रदाय का कोई ग्रन्थ भी भगवान् महावीर स्वामी को जैन धर्म का आदि उपदेष्टा नहीं मानता।

वास्तव में यह कल्पना पाश्चात्य देश के विद्वानों के मस्तिष्क की उपज है, और उन्होंने ही इस सिद्धान्त का सब कहीं प्रचार किया है।

क्या भगवान् पार्श्वनाथ जैनधर्म के आदि उपदेष्टा थे ?

भगवान् पार्श्वनाथ के जैन धर्म का आदि उपदेष्टा होने के सम्बन्ध में भी किसी प्राचीन ग्रंथ में उल्लेख नहीं पाया जाता। कुछ नवीन ग्रन्थों में ऐसा अवश्य लिखा मिलता है। सांगीत गोपीचन्द नामक एक बहुत आधुनिक हिन्दी ग्रन्थ में ऐसा अवश्य लिखा मिलता है, किन्तु वहां ऐसी अनेक बातों को भी लिखा गया है, जिनसे लेखक का जैन धर्म के प्रति विद्वेष बिल्कुल स्पष्ट हो गया है। अतएव ऐसे अप्रामाणिक लेखक की बात को किसी प्रकार भी प्रमाण नहीं माना जा सकता।

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव

इसके विरुद्ध अनेक सनातनधर्मी तथा बौद्ध ग्रन्थों में जैन धर्म का प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभ देव को माना गया है।

बौद्ध ग्रन्थ न्याय बिन्दु की साक्षी का ऊपर वर्णन किया ही जा चुका है। अब सनातनधर्मी तथा वैदिक ग्रन्थों की इस विषय में सम्मति पर विचार किया जाता है।

प्रसिद्ध भागवत पुराण में विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन करते हुए उनमें ऋषभ देव को विष्णु का पांचवां अवतार माना गया है। उनमें विष्णु का प्रथम अवतार मत्स्य; द्वितीय कच्छप, तृतीय वराह और चौथा नृसिंह अवतार मान कर पांचवां अवतार ऋषभ देव को माना गया है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि विष्णु के अवतारों में भगवान् ऋषभ देव मनुष्य अवतारों में सर्व प्रथम थे। भगवान् ऋषभ देव का चरित्र भागवत पुराण के पंचम स्कन्ध में विस्तारपूर्वक दिया गया है। उसमें यह भी लिखा गया है कि उन्हीं के चरित्र की नकल करके बाद में जैन धर्म चला। भागवत में उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती को एक बड़ा भारी महात्मा बतलाया गया है।

कुछ लोग भागवत पुराण को हजार बारह सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं मानते, किन्तु सनातनधर्मी समाज उसको महाभारतकालीन महर्षि बादरायण व्यास की सबसे अंतिम कृति मानता है। किन्तु वाल्मीकीय रामायण तथा योगवासिष्ठ को सनातन धर्मी लोग भी राम का समकालीन ग्रन्थ मान कर उनको भागवत पुराण से अधिक प्राचीन मानते हैं।

वाल्मीकीय रामायण के आदि काण्ड दशम सर्ग के श्लोक ८ में दशरथ द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि

> **अनाथा भुञ्जते नित्यं, नाथवन्तश्च भुञ्जते।**
> **तापसा भुञ्जते चापि, भुञ्जते श्रमणा अपि॥**

वाल्मीकिय रामायण, बालकांड, सर्ग १०, श्लोक ८

दशरथ के यज्ञ में अनाथ, सनाथ, तापस और श्रमण सभी आहार लेते थे।

अर्थात् दशरथ ने साधुओं के समान 'श्रमणों' को भी दान दिया। श्रमण शब्द का अर्थ जैन तथा बौद्ध साधु ही होता है। बौद्ध लोग रामायण काल में बौद्ध साधुओं का अस्तित्व नहीं मानते। अतएव वाल्मीकीय रामायण के 'श्रमण' शब्द का अर्थ केवल जैन साधु ही हो सकता है। इस प्रकार रामचन्द्र के समय में जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध है।

रामकालीन दूसरे ग्रन्थ 'योगवाशिष्ट' के वैराग्य प्रकरण में तो राम स्पष्ट रूप से जैनधर्म का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में करते है—

नाहं रामो न मे वाञ्छा, विषयेषु न च मे मनः।
शान्तमास्थातुमिच्छामि, वीतरागो जिनो यथा ॥

मैं राम नहीं हूं, मेरे अन्दर कोई इच्छा नहीं है। विषयों में भी मेरा मन नहीं है। अब तो मैं वीतराग जिन के समान एक दम शान्त बन जाना चाहता हूं।

रामचन्द्र के समय में जैनधर्म के अस्तित्व का यह कैसा दृढ़ प्रमाण है!

इसके अतिरिक्त वेदों के अनेक मंत्रों में जैन तीर्थंकरों का नाम आता है। किन्तु उनका अर्थ करने में वह नामों का यौगिक अर्थ करके उनके अर्थ को बदल देते हैं। इस विषय में यजुर्वेद का केवल एक मंत्र उदाहरण रूप में यहां उपस्थित किया जाता है

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

यजुर्वेद, अध्याय २५, अध्याय १६

(वृद्धश्रवा)[1] बहुत कीर्ति वाला (इन्द्रः) इन्द्र देवता (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) स्थापित करे। और (पूषा) पुष्टि करने वाला सूर्य देवता (विश्ववेदाः) सर्वज्ञाता (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को धारण करे। (तार्क्ष्यः) तेजस्वी (अरिष्टनेमिः) भगवान् अरिष्टनेमि (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण करे। (बृहस्पतिः) बृहस्पति देवता (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण करे।

इस मंत्र में स्पष्ट रूप से अन्य दिक देवताओं के साथ जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान् को भी—जिनको जैन शास्त्रों में 'अरिष्टनेमि' भी कहा जाता है—गिनाया गया है। जैन ग्रंथों के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि यज्ञ के देवता हैं। इसलिये उनको अन्य देवताओं में गिनाया गया। किन्तु आधुनिक अर्थ करने वाले इस शब्द का यौगिक अर्थ 'अरिष्टों का नियमन करने वाला' करके इस शब्द के जैन महत्व को कम करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु यह अर्थ करने में किसी एक देवता का नाम नहीं बनता।

इस मंत्र के अतिरिक्त अन्य भी अनेक वैदिक मंत्रों में जैन तीर्थंकरों के नाम दिये गए हैं, जिससे प्रकट है कि वेदों के निर्माण काल में जैनियों का अस्तित्व अवश्य था। इसके अतिरिक्त वेद मंत्रों में ऐसे मत का भी वर्णन मिलता है, जो वेद विरोधी था। सो उस प्राचीन काल में ऐसा मत जैन धर्म ही हो सकता था।

इस सारे वर्णन से यह सिद्ध है कि जैन धर्म एक अनादि-कालीन धर्म है, जिसका उपदेश प्रत्येक युग की आदि में प्रथम जैन तीर्थंकर दिया करते हैं। इस बार उसका प्रथम बार उपदेश भगवान् ऋषभदेव ने दिया था।

---

1. वृद्धश्रवा—प्रतिज्ञा धारक जैन श्रावक हो सकता है।

जैन धर्म का वह उपदेश भगवान् ऋषभदेव से लेकर उनके बाद अन्य तेईस तीर्थंकरों ने कालक्रम से दिया। सब से अन्त में उस उपदेश को भगवान् महावीर स्वामी ने दिया।

भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे। इन में सब से प्रमुख गौतम इन्द्रभूति थे। किन्तु उन ग्यारहों गणधरों में से इस की शिष्य परम्परा उनके सामने ही समाप्त हो गई।

पांचवें गणधर श्री सुधर्माचार्य के शिष्य जम्बूस्वामी थे, जो अपने गुरु को मोक्ष होने के बाद मुक्त हुए। उनके बाद भगवान् महावीर स्वामी के शासन की शिष्य परम्परा तब से ले कर अब तक प्राय: अविरल गति से चलती रही है।

हमारे चरित्रनायक आचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज भी उसी शिष्य परम्परा में आचार्य पदवी के धारक थे। इसी से उनके जीवन चरित्र को पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है। यद्यपि आरम्भ में वह अपनी सम्प्रदाय के अनेक आचार्यों के समान एक आचार्य मात्र थे, किन्तु बाद में उस सम्प्रदाय के सभी आचार्यों ने उनको अपना मुकुटमणि मान कर उनको 'प्रधानाचार्य' मान लिया। इसी कारण इस ग्रन्थ का नाम 'प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी' रक्खा गया है। वास्तव में आपके उपदेश के कारण पंजाब में मूर्तिपूजकों की संख्या नहीं बढ़ पाई और आपने पंजाब के स्थानकवासी समाज की रक्षा की।

जैसा कि इस भूमिका के आरम्भ में कहा गया है आज समस्त भारत में भ्रष्टाचार, पक्षपात, घूसखोरी आदि का बोल-बाला है और राष्ट्रीय आचरण का मान बहुत गिर गया है। ऐसी स्थिति में जनता के सामने एक ऐसे आदर्श के उपस्थित

किये आने की आवश्यकता है, जिसका आचरण सर्वथा उच्चतम कोटि का तथा विशुद्ध हो।

प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वारा पाठकों को एक ऐसा ही जीवनचरित्र देने का यत्न किया गया है। इस जीवनचरित्र में दिखलाया गया है कि बालक सोहनलाल बचपन से ही बुद्धिमान् होते हुए भी अपने माता पिता का अत्यंत आज्ञाकारी बालक था। आजकल के बच्चे प्रायः हठी, आलसी, उद्दण्ड तथा नटखट होते हैं। बालक सोहनलाल में इनमें से एक भी दुर्गुण नहीं था। अतएव उनका शैशव काल आजकल के बालकों के लिये शिक्षाप्रद एवं अनुकरणीय है। आजकल के बालक माता पिता के दण्ड से बचने के लिये प्रायः झूठ बोल दिया करते हैं, किन्तु सोहनलाल जी ने एक अमूल्य शीशा तोड़ कर ऐसी स्थिति में भी असत्य भाषण नहीं किया, जब कि उन पर किसी को भी संदेह नहीं था और सारा दोष नौकरों पर डाला जा रहा था। उनका आत्मा इस बात से तिलमिला उठा कि उनके दोष का दण्ड किसी अन्य व्यक्ति को मिले। आज संसार में ऐसे कितने बालक हैं, जिनमें अपना दोष स्वीकार करने योग्य ऐसी निर्भीकता हो।

अपने विद्यार्थी जीवन में तो श्री सोहनलाल जी ने अपने और भी उच्चकोटि के चरित्र का परिचय दिया। आजकल के विद्यार्थी प्रायः उच्छृंखल होते हैं। क्लास में पढ़ने लिखने की अपेक्षा वह अपने मार्ग में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति का ऐसा मखौल उड़ाने का यत्न किया करते हैं, जिस से उसे कष्ट हो। किन्तु सोहनलाल जी इन दोषों से शून्य थे। धारी द्वारा किसान के जूते छिपा देने का विद्यार्थीसुलभ प्रस्ताव किये जाने पर भी आपने इसका विरोध करके धारी के सन्मुख पवित्र हास्य का

ऐसा आदर्श उपस्थित किया कि उस से धारी का जीवन एक दम बदल गया और किसान का संकट भी दूर हो गया। यदि हमारे आज के भारत में हमारे विद्यार्थी भी अपना आचरण ऐसा ही बना लें तो निश्चय से भारत में ऐसे नागरिक उत्पन्न होंगे जो सारे संसार को भारतीय सभ्यता से दीक्षित करके विश्व शांति के देवदूत प्रमाणित होंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि श्री सोहन लाल जी में बचपन से ही अनेक अलौकिक गुण थे। बचपन में दूसरों के झगड़ों का फैसला करना, अपनी चतुरता से घर की चोरी को निकलवा कर घर में सदा के लिये चोरी होना बन्द करा देना उनके ऐसे कार्य हैं, जिनकी आशा हम बड़े २ आदर्श विद्यार्थियो से भी नहीं कर सकते। वास्तव में यह उनका एक अलौकिक गुण था, जो उनके भावी जीवन की अलौकिकता की ओर संकेत कर रहा था। उनके द्वारा की हुई दीनों की सहायता का वर्णन हम कुछ ऐसे आदर्श विद्यार्थियों के जीवन में पाते हैं, जो आगे चल कर बड़े आदमी बन गए। हमारे विद्यार्थियों को आज आचार्य सोहन लाल जी महाराज के विद्यार्थी जीवन के उस सत्कार्य का अनुकरण करने की आवश्यकता है। जो विद्यार्थी अपने जीवन में इस गुण का सम्पादन कर लेंगे, वह आगे चल कर निश्चय से बड़े आदमी बनेंगे।

यह भारत का दुर्भाग्य है कि वह राजनीतिक स्वराज्य प्राप्त कर लेने पर भी अभी तक आर्थिक रूप से पौंड तथा डालर की दासता के बंधन में पड़ा हुआ है। हमारे शासनविधान के मौलिक अधिकारों में यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक भारतीय का यह अधिकार है कि

(१) उसे निःशुल्क शिक्षा मिले।

(२) उसे निःशुल्क चिकित्सा मिले।

(३) उसे वृद्धावस्था का इतना अनुदान मिले कि वह सुख से जीवन यापन कर सके।

(४) उसे बेरोजगारी से निश्चिंतता हो। यदि उसे अपने योग्य रोजगार न मिल सके तो बेरोजगारी के समय उसको राज्य की ओर से पर्याप्त अनुदान मिलना चाहिये।

यह चार आवश्यकताएं ऐसी हैं कि इन सुविधाओं के बिना आज भारत में अनेक परिवार भूख, बीमारी, बेरोजगारी तथा अन्य भी अनेक कष्टों का शिकार बने हुये हैं। हमारी सरकार इस सारी स्थिति को जानती हुई भी आर्थिक दासता में फंसी होने के कारण लाचार है। ऐसी स्थिति में भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति भर इस विषय में अपने देश भाइयों की सहायता करे। विश्वबन्धुत्व तथा भगवान् महावीर स्वामी का अनुयायी बनने का दम भरने वाले जैनियों का तो यह प्रधान कर्तव्य है कि वह अपनी आय का एक निश्चित अंश दान के लिये अलग रख कर ऐसी व्यवस्था करें कि उनके धन से जनता को निःशुल्क शिक्षा मिले, निःशुल्क अस्पताल खोले जावें, जिनमें नेत्र विभाग में रोगियों को इंग्लैंड के समान बिना मूल्य चश्मे भी दिये जावें। उनको इस प्रकार के फंड भी बनाने चाहियें, जिनके द्वारा वृद्धों तथा असमर्थों की सेवा की जावे।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज का जीवनचरित्र पढ़ कर यदि हमारे जीवन में इस प्रकार की प्रेरणा उत्पन्न न हुई तो यह कहना चाहिये कि इस जीवन चरित्र को पढ़ने वाला व्यक्ति सहृदय नहीं है। पूज्य सोहनलाल जी अपने विद्यार्थी जीवन में

दूसरे विद्यार्थियों की सहायता किया करते थे। घर से मिलने वाले पैसों को वह चाट आदि में खर्च न करके उनसे निर्धन विद्यार्थियों को सलेट, पेंसिल, कापी आदि ले दिया करते थे। दीनों की सहायता करने का उनका यह व्रत उनकी युवावस्था में भी चला। इसी लिये लाहौर के अनारकली बाजार में उन्होंने एक रक्त पीप से भरे हुए दीन अंधे को गाड़ी से टकराते देख कर उसे अपनी गोद में ले कर उसकी सेवा की थी। आज इतने उच्च कोटि के आदर्श का पालन करने वाले कितने व्यक्ति मिलेंगे? अपने इन्हीं लोकोत्तर गुणों के कारण पूज्य श्री सोहनलाल जी आगे चल कर इतने बड़े अध्यात्मिक नेता बने।

श्री सोहनलाल जी के चरित्र में ब्रह्मचर्य का आदर्श एक ऐसा आदर्श है, जिसका अनुकरण करने की आज हमारे विद्यार्थियों तथा युवकों को विशेष रूप से आवश्यकता है। आज सिनेमा के अश्लील गाने प्रत्येक बालक के मुख से सुने जा सकते हैं। वास्तव में यह गाने हमारे राष्ट्रीय चरित्र को गिराने में और भी अधिक सहायता दे रहे हैं। श्री सोहनलाल जी ब्रह्मचर्य के ऐसे पक्के थे कि उन्होंने धन समेत आई हुई लक्ष्मी को दुत्कार कर उसे भी ब्रह्मचर्य के मार्ग पर चला दिया। जो राष्ट्र सामूहिक रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसका मुकाबला संसार का कोई भी राष्ट्र नहीं कर सकता। श्री सोहनलाल जी के आचरण में जितेन्द्रियता तथा स्वधर्मीवत्सलता उनकी भारी विशेषताएं थीं।

उनका मुनि जीवन तथा आचार्य जीवन तो ऐसे आदर्श थे कि हम उसके ऊपर आलोचनात्मक दृष्टि डालने का भी साहस नहीं कर सकते।

उन के इन्हीं लोकोत्तर गुणों का परिचय जनता को देने के लिये इस जीवन चरित्र की रचना की गई है। यदि इसके अध्ययन से एक भी व्यक्ति का जीवन संभल गया तो लेखक अपने परिश्रम को सार्थक समझेंगे।

पहिले इस जीवन चरित्र की घटनाओं को पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज ने एकत्रित करके कानून निवासी उदय जैन से लिखवाया था। उस समय इसकी प्रेस कापी तैयार करके उसे लाहौर के एक प्रेस में छपने दिया जाने वाला था, किन्तु पाकिस्तान बन जाने पर वह कापी वहीं रह गई और यहां उसको पंडित मुनि शुक्लचन्द जी ने दुबारा तैयार किया। हम को सारी लिखी लिखाई सामग्री उन्हीं मुनि महाराज से मिली है। हमने तो सम्पादक के नाते उसमें भाषा का संस्कार आदि ही किया है। इस ग्रन्थ की सामग्री के लिये हम उदय जैन के सामान्य रूप से तथा पंडित मुनि शुक्ल चन्द जी महाराज के विशेष रूप से आभारी हैं। हमने इस ग्रन्थ में पण्डित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में एक अध्याय अपनी ओर से भी लिख कर जोड़ दिया है। इस ग्रन्थ में और भी जहां कहीं प्रशंसात्मक वाक्य उनके सम्बन्ध में आ गए हैं, वह सब हमारे लिखे हुए हैं।

आशा है कि आज की शिथिलाचार की अन्धकारपूर्ण रात्रि में यह ग्रन्थ दीपक का काम देगा।

चन्द्रशेखर शास्त्री।

मकान नं० ४५६६ बाजार पहाड़गंज,
नई दिल्ली—१।
तारीख २२ अगस्त १९५३ ई०

विषय सूची

अध्याय	विषय		पृष्ठ

श्रीमद् प्रधानाचार्य श्री सोहनलालजी महाराज
जन्म माघ वदि १ सं० १९०६ वि०, दीक्षा मार्गशीर्ष वदि ३ सं० १९३३ वि.
(चित्र केवल परिचय के लिये है)

१

जन्म स्थान

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

जन्म देने वाली माता तथा जन्मभूमि स्वर्ग से भी बड़ी होती है।

जिन महापुरुष की जीवन गाथा लिखने का उपक्रम किया जा रहा है, उनका जन्म भारत के उस प्रदेश में हुआ था, जो आज भारत के लिये विदेश बन गया है।

वास्तव में भारतवर्ष की सीमाएं प्राचीनकाल से लेकर आज तक न जाने कितनी बार बदल चुकी हैं।

जैन शास्त्रों के अनुसार भारतवर्ष जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों के सब से दक्षिणी भाग में है। जैन शास्त्रों ने इसको धनुष के आकार का माना है। धनुष की सीमा पर तीन ओर समुद्र तथा डोरी के स्थान पर हिमवन् पर्वत माना गया है। फिर इस धनुषाकार क्षेत्र को विजयार्द्ध पर्वत पूर्व से पश्चिम तक जाते हुए दो भागों में विभाजित करता है। हिमवन् पर्वत पर एक बड़ा भारी सरोवर है, जिसका नाम पद्म ह्रद है। उसके पूर्व भाग से गंगा नदी निकल कर विजयार्द्ध पर्वत के नीचे से बहती हुई पूर्व समुद्र में मिल जाती है। उसके पश्चिम भाग से सिन्धु नदी निकलती है, जो विजयार्द्ध के नीचे से बहती हुई पश्चिम समुद्र में मिल जाती है। इन दोनों नदियों तथा विजयार्द्ध

पर्वत के कारण भारतवर्ष अथवा भरतक्षेत्र के छै खण्ड बन जाते हैं। यह गंगा तथा सिन्धु नदियां इतनी बड़ी हैं कि इनमें से प्रत्येक में चौदह चौदह सहस्र सहायक नदियां आकर मिलती हैं। भारतवर्ष के दो खण्डों में पांच म्लेच्छ खण्ड तथा एक आर्य खण्ड है। जो व्यक्ति असि (तलवार चलाना), मसि (लेखन कार्य), कृषि, सेवा, शिल्प तथा वाणिज्य इन छै कर्मों द्वारा अपनी आजीविका करे उसे आर्य तथा केवल हिंसा द्वारा अपनी आजीविका चलाने वाले को म्लेच्छ कहते हैं।

जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन का है। यहां एक योजन दो सहस्र कोस का माना गया है। भारतवर्ष की उत्तर से दक्षिण तक चौड़ाई जम्बूद्वीप का एक सौ नव्वेवां भाग होने के कारण ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन अर्थात् १०, ५२, ६२१ $\frac{११}{१९}$ कोस अथवा २,०१,०५,२४३ $\frac{३}{१९}$ मील है। यह भारतवर्ष की उत्तर से दक्षिण तक चौड़ाई है। फिर पूर्व से पश्चिम तक की लम्बाई को इससे गुणा देने से इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल आजकल की समस्त पृथ्वी के क्षेत्रफल से किसी प्रकार भी कम नहीं होगा। जैन शास्त्रों में लिखा है कि भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती तथा उनके उत्तरवर्ती अन्य दस चक्रवर्तियों ने भारतवर्ष के इन छहों खण्डों पर विजय प्राप्त की थी। इस प्रकार उस प्राचीन काल में आजकल का समस्त भूमण्डल भारतवर्ष की सीमा में था। आज भी अमरिका के मूल निवासियों का रहन सहन, पहिनावा आदि सब कुछ प्राचीन भारतीयों के समान है। किन्तु समय बदला और भारतवर्ष में बारह चक्रवर्तियों के बाद फिर कोई ऐसा प्रबल शासक नहीं हुआ जो उन सभी ज्ञात

देशों को अपने शासन में रख सकता। अस्तु उनमें हमारा जाना आना कम हो गया और उन देशों को भारत की सीमा से बाहिर माना जाने लगा।

महाभारत युद्ध के समय हम वर्तमान भारत के उत्तर तथा उत्तर पश्चिम के सभी देशों को आर्य सभ्यता का अनुयायी पाते हैं। महाभारत काल में आजकल के अफ़ग़ानिस्तान का नाम गांधार देश था। वहां की राजकन्या गांधारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ हुआ था। गांधारी का भाई शकुनि वहां का राजा था। अफ़ग़ानिस्तान के पश्चिम में ईरान का नाम उन दिनों मद्र देश था। वहां का राजा शल्य था, जिसकी बहिन माद्री से राजा पाण्डु का विवाह हुआ था।

महाभारत की घटना के कुछ बाद मद्र देश में महात्मा जरथस्तु ने जन्म लेकर प्राचीन वैदिक धर्म के आधार पर एक नया धर्म चलाया, जिसको आजकल पारसी धर्म कहते हैं। यह लोग अभी तक प्राचीन आर्यों के समान जिंद अवस्ता में लिखे वेद मंत्रों से हवन करते हैं। किन्तु इस धर्म के कारण भी मद्र देश का भारत से कुछ अधिक अलगाव नहीं हुआ।

भारत पर सिकन्दर का आक्रमण विफल करके चन्द्रगुप्त मौर्य ने भारत की सीमा को वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान से आगे मध्य एशिया के उन प्रदेशों तक फैला दिया, जिनमें आज सोवियत जनतंत्र के अनेक देश स्वतंत्रता का उपभोग कर रहे हैं। किन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद भारत की सीमा अफ़-ग़ानिस्तान पर जाकर ही रुक गई।

चन्द्रगुप्त से कई सौ वर्ष पूर्व भगवान् महावीर स्वामी से भी पहिले वर्तमान पेशावर के समीप तक्षशिला का ऐसा भारी

विश्व विद्यालय था कि संसार भर में उसकी जोड़ का कोई अन्य विश्व विद्यालय नहीं था। सम्राट् श्रेणिक का प्रधानमंत्री वर्षकार, महावैयाकरणी पाणिनि तथा कूटनीति के आचार्य चाणक्य जैसे उद्भट विद्वान् इसी विश्व विद्यालय के स्नातक थे। इन दिनों पेशावर का नाम पुरुषपुर तथा लाहौर का नाम लवपुर था। इन दिनों भारत की सीमा मध्य एशिया तक फैली हुई थी। संसार भर के समुद्रों पर भारतीय जल सेना का प्रभुत्व था और भारतीय जहाज़ विश्व के सभी भागों में व्यापार के लिए जाया आया करते थे।

क्रमश: भारतीय सत्ता विभाजित हुई, जिससे भारतवर्ष का विस्तार भी कम होगया।

सातवीं शताब्दी में मुहम्मद साहिब के इस्लाम धर्म चलाने पर मुसलमान धर्म अरब से निकल कर विश्व भर में फैलने लगा। कुछ ही समय में मद्रदेश (ईरान) तथा गांधार देश (अफ़ग़ानिस्तान) ने भी इस्लाम धर्म को सामूहिक रूप में स्वीकार कर लिया। इससे ईरान के पारसी अपना देश छोड़कर भारत में आ बसे।

यद्यपि गांधार देश इस्लाम को स्वीकार करके अफ़ग़ानिस्तान बन गया, किन्तु तो भी वह अकबर तथा औरंगजेब जैसे मुग़ल सम्राटों के समय तक भारत का अंग ही बना रहा।

समय ने पलटा खाया और मुग़ल शासन के स्थान पर भारत पर अँग्रेजों का प्रभुत्व हुआ। किन्तु अँग्रेज विदेशी थे। वह अनेक प्रकार के अत्याचारों द्वारा यहां के धन को एकत्रित कर २ के सात समुद्र पार अपने देश इंगलैंड भेज देते थे। इनके इस व्यवहार के कारण भारत में उग्र राजनैतिक आन्दोलन

आरम्भ होगया। यद्यपि अँग्रेजों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का अत्यन्त निर्दयता से दमन किया, किन्तु वह यह समझ गए कि उनको एक न एक दिन भारत को पूर्णतया खाली करके जाना ही होगा। अँग्रेज यह भी समझते थे कि भारत का राष्ट्रवादी आन्दोलन प्रायः हिन्दुओं का चलाया हुआ है। अतएव उन्होंने मन में विचार किया कि देश में हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष को भड़का कर भारत में अधिक दिनों तक टिका जा सकता है। उन्होंने यह भी अपने मन ही मन निश्चय कर लिया कि भारत के जितने ही अधिक से अधिक भाग किये जावेंगे उतनी ही हिन्दू राष्ट्रीयता निर्बल बन जावेगी और अँग्रेजों के भारत छोड़ देने पर भी भारत से कटे हुए प्रदेश उनको आश्रय देते रहेंगे।

अँग्रेजों के समय भारतीय साम्राज्य पश्चिम में अरब समुद्र के पार अदन तक फैला हुआ था। अरब सागर के लक्ष द्वीप (Lacadiv) तथा माल द्वीप (Maldiv) भी भारतीय साम्राज्य के ही अंग थे। भारत के दक्षिण में भारतीय महासागर में लंका भी भारत का अंग था। बंगाल की खाड़ीमें ऐंडमन तथा निकोबर द्वीप समूह भी भारत के अंग थे। पूर्व में भारतीय सीमा में ब्रह्मदेश सम्मिलित था। भारतीय सीमा ब्रह्मदेश के पूर्व में सिंगापुर के प्रसिद्ध नौसैनिक अड्डे तक मानी जाती थी।

अंग्रेजों ने प्रथम लंका को भारत से पृथक् करके, फिर ब्रह्मदेश को भी भारत से पृथक् कर दिया। फिर उन्होंने अदन, लक्षद्वीप तथा मालद्वीप को भी भारत से अलग करके भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का भीषणता से दमन करना आरम्भ किया। किन्तु भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का जितना ही अधिक दमन किया जाता था, वह उतना ही अधिक प्रचंड रूप

धारण करता जाता था। इसी बीच सन् १९४७ आगया और अँग्रेजों ने भारत में भीषण हिन्दू-मुस्लिम दंगे कराए। अन्त में जब अँग्रेजों से भारत छोड़ने को कहा गया तो उन्होंने फिर देश को हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान इन दो भागों में बांटने का प्रस्ताव किया। भारतीय नेताओं ने

'जो धन जाता जानिये, आधा दीजे बांट'

वाली नीति के अनुसार देश विभाजन को स्वीकार कर १५ अगस्त १९४७ को भारत से अँग्रेजों को बिदा कर दिया।

पूज्य महाराज श्री सोहनलाल जी का जीवन चरित्र लिखते २ हम इतनी बातें कह गये, जो प्रत्यक्षतः देखने में अप्रासंगिक लगती हुई भी अप्रासंगिक नहीं हैं।

किसी महापुरुष का जीवन चरित्र लिखते समय प्रथम उसके जन्म स्थान का वर्णन करना आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना जीवन चरित्र अधूरा ही कहलाता है। किन्तु पूज्य महाराज सोहनलाल जी का जन्म जिस स्थान में हुआ था, वह आज भारत का अंग न होकर पाकिस्तान का अंग बना हुआ है। अतएव देश विभाजन की कहानी को भी यहां प्रसंग के अनुसार देकर भारतीय सीमाओं के इतिहास पर एक दृष्टि डालनी पड़ी है।

हमारे चरित्र नायक का जन्म उस देश में हुआ था, जिसे पांच महानदियों—सतलज, रावी, व्यास, चिनाब और जेहलम—के कारण पञ्चनद अथवा पञ्जाब प्रदेश कहा जाता है। इन पांचों नदियों के पश्चिम में सिन्धु नदी तथा पूर्व में प्राचीन काल में सरस्वती नदी बहती थी। इसलिए प्राचीन वैदिक कालमें इस प्रदेश को 'सप्त सिन्धु' अथवा 'सप्त नदियों वाला देश' कहा जाता था। इन नदियों ने अपनी शीतल जलधारा से इस

देश को अत्यन्त उपजाऊ, सुन्दर तथा मनोहर बना रक्खा है। पाकिस्तान बनने से पूर्व यह प्रदेश गेहूँ तथा चावल के लिए इतना अधिक प्रसिद्ध था कि उसके इस माल की दूर २ विदेशों तक में मांग थी। काश्मीर पंजाब के उत्तर में है। इस प्रदेश के स्वर्गीय सौंदर्य ने पञ्जाब की शोभा में और भी चार चांद लगा दिये हैं। पाकिस्तान बन जाने से पञ्जाब के दो भाग होगए। पश्चिमी पञ्जाब पाकिस्तान में चला गया और पूर्वी पञ्जाब भारत में रहा। पूर्वी पञ्जाब में हांसी, हिसार के प्रदेश को हरियाना कहते है। यहां की गौएँ तथा भैंसें अत्यन्त बलवान् तथा अपने अधिक दूध के लिए प्रसिद्ध हैं। यहां के बैल बोझ उठाने तथा दौड़ लगाने में बहुत अच्छे होते हैं। अतएव यहां के पशुओं की मांग भी भारत भर में है। भगवान ऋषभदेव के अद्वितीय शक्तिशाली पुत्र बाहुबली की राजधानी भी इसी प्रांत में तक्षशिला के समीप थी। पञ्जाब के रहने वाले अत्यन्त गौर वर्ण, लम्बे तथा बलिष्ठ शरीर वाले होते हैं। अतएव प्राचीन काल से ही देश की सेनाओं में पञ्जाबियों को अधिक संख्या में भर्ती किया जाता रहा है। इस प्रकार देश की रक्षा का प्रधान साधन सैनिक शक्ति का महत्वपूर्ण भाग भी इसी पञ्जाब से पूरा किया जाता रहा है। पञ्जाब के मनुष्य हृष्ट-पुष्ट, साहसी, परिश्रमी, दिये हुए वचन का पालन करने वाले तथा विलासप्रिय होते हैं। वह अतिथियों तथा त्यागी महात्माओं की मन लगा कर सेवा किया करते हैं। पञ्जाब भारत की पश्चिमी सीमा पर है। अतएव उसका ऐतिहासिक तथा धार्मिक महत्व के अतिरिक्त सामरिक महत्व भी कम नहीं है।

पञ्जाब में स्यालकोट नामक एक सुन्दर नगर है। यहां इतिहास प्रसिद्ध तथा प्रतापशाली वही सम्राट् शालिवाहन राज्य

करते थे, जिनका चलाया हुआ शक संवत् आज भारत के प्रत्येक पञ्चांग का एक दृढ़ आधार है। राजा शालिवाहन के प्रतापी पुत्र उस भक्त पूर्णमल का निर्मल चरित्र आज भारत के प्रत्येक गांव में गाया जाता है, जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी होते हुए भी विमाता द्वारा लांछित होकर पिता द्वारा मरवाया गया, किन्तु पिछले जन्म के पुण्यके कारण उसके प्राण नहीं निकले और उसने पुनः स्वस्थ होकर न केवल अपनी आत्मा का कल्याण किया, वरन् अपनी विमाता तथा पिता का भी उद्धार किया।

धर्म की रक्षा के लिए अपने मस्तक को कटाने वाले वीर हक़ीकतराय धर्मी भी पञ्जाब के ही निवासी थे।

सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्दसिंह के दोनों लाडले पुत्रों को इसी नगर के पास सरहिंद में जीवित ही दीवार में चिनवा दिया गया था। उन्होंने प्राण देना स्वीकार किया, किन्तु अपने धर्म को न छोड़ा। सिक्खों के दसों गुरुओं ने पञ्जाब में जन्म लेकर अपने साहस तथा पुण्य के प्रभाव से समस्त संसार को आश्चर्यचकित कर दिया।

महाराज रणजीतसिंह ने भी पञ्जाब में जन्म लेकर अपने जीते जी न तो काबुल के पठानों को सिर उठाने दिया और न अँग्रेजों को पञ्जाब की भूमि पर पैर रखने दिया।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के साथ साथ भारत को स्वराज्य के मंत्र से दीक्षित करने वाले पञ्जाबकेसरी लाला लाजपतराय भी पञ्जाब के ही निवासी थे। लाला जी ने अपने निर्वासित जीवन में अमरीका में इतनी अधिक ख्याति प्राप्त कर ली थी कि कुछ क्षेत्रों में उनको अमरीका के राष्ट्रपति पद के चुनाव में खड़ा करने तक के सम्बन्ध में चर्चा की जाने लगी

थी। यह बात स्मरण रखने योग्य है कि लाला लाजपतराय का जन्म जैन कुल में होने पर भी वह संगति दोष के कारण आर्य समाजी होगए थे। बाद में तो उनका आर्य समाज से भी मन फिर गया था।

अपने बुद्धिबल से भारत के मस्तक को संसार भर में ऊँचा करके उसके गौरव को बढ़ाने वाले प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल भी पञ्जाब के ही निवासी थे। लाला हरदयाल की बुद्धि इतनी तीव्र थी कि वह जिस ग्रन्थ को एक बार देख लेते थे वह उनको कण्ठ याद हो जाता था।

अपनी वीरता के प्रभाव से पराक्रमी ब्रिटिश सरकार को कंपा देने वाले तथा हँसते हँसते फांसी के तख्ते पर झूल कर बलिदान हो जाने वाले वीर शिरोमणि भगतसिंह का जन्म भी पञ्जाब में ही हुआ था।

अँग्रेजों के समय में हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश बनने वाले प्रथम भारतीय सर शादीलाल भी इसी प्रान्त के निवासी थे। अपने दान से अनेक अनाथों की रक्षा करने वाले, अनेक अस्पताल बनाने वाले तथा संसार भर को दानवीरता का पाठ पढ़ाने वाले सर गंगाराम भी इसी प्रान्त की रज में खेल कर बड़े हुए थे।

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय वहां के गवर्नर सर माइकेल ओडायर ने न केवल पञ्जाब में अत्यधिक अत्याचार किये, वरन् सैनिक शासन की घोषणा करके अमृतसर के जलियांवाला बाग में होने वाली एक सम्पूर्ण सभा को जेनेरल डायर की गोलियों से भुनवा दिया। इसी पञ्जाब के एक वीर ऊधमसिंह ने लंदन की एक भरी सभा में जाकर सर माइकेल

ओडायर तथा जेनेरल डायर दोनों को उनकी करनी का अपनी बुद्धि के अनुसार ऐसा फल चखाया कि सारा संसार भारत-वासियों के साहस की प्रशंसा करने लगा।

हमारे चरित्रनायक का जन्म भी ऐसे ऐसे महान् नर रत्नों को जन्म देने वाले पञ्जाब प्रान्त के स्यालकोट जिले के सम्बडियाल नामक नगर में हुआ था, जो आजकल पाकिस्तान का अंग बना हुआ है।

सम्बडियाल एक अच्छा व्यापारिक केन्द्र था वहां अनेक धनी, मानी एवं दानी सज्जन निवास करते थे। सम्बडियाल ही हमारे चरित्र नायक की जन्मभूमि था। उन्होंने अपनी अमूल्य शिक्षाप्रद बाल्यावस्था के दिन इसी नगर में व्यतीत किये थे।

२

वंश परिचय

जैनधर्मः प्रकटविभवः सङ्गतिः साधुलोकैः,
विद्वद्गोष्ठी वचनपटुता कौशलं सत्कलासु ।
साध्वी लक्ष्मी चरणकमलोपासनं सद्गुरूणां,
शुद्धशीलं मतिरमलिना प्राप्यते नाल्पपुण्यैः ॥

जैन धर्म, संसार प्रसिद्ध वैभव, साधु पुरुषों की संगति, विद्वानों से वार्तालाप, वचन में चतुरता, उत्तम कलाओं में निपुणता, पतिव्रता स्त्री, गुरु के चरणों में भक्ति, शुद्ध आचरण, निर्मल तथा शुद्ध बुद्धि, यह दस विशेषताएं किसी जीव को कम पुण्य से प्राप्त नहीं होतीं। इनके लिए भारी पुण्य होना चाहिए। एक उर्दू की कहावत है कि

'तुख्म तासीर सोहबत का असर'।

अर्थात् माता पिता का गुण संतान में जिस प्रकार अवश्य आता है उसी प्रकार संगति का प्रभाव भी अवश्य होता है।

यह नियम अनादि काल से चला आता है कि माता पिता में जैसे संस्कार होते हैं वैसे ही संस्कार उनकी संतान में भी होते हैं। यद्यपि इस नियम के कुछ अपवाद भी देखने में आते हैं, किन्तु वह बहुत कम हैं और उनका कारण प्रायः संगति ही होता है। श्रेष्ठ संस्कारों वाले माता पिता की संतान प्रायः

आचारहीन नहीं होती और न आचारहीन माता पिता की संतान उत्तम संस्कारों वाली होती है। जिस प्रकार धन की प्राप्ति धनवानों से होती है, विद्या की प्राप्ति विद्वानों से होती है, अथवा अन्तःकरण के दाह को शान्त करने वाला जल निर्मल जल से भरे हुए सरोवर, कूप, तालाब अथवा पहाड़ी झरने आदि से ही प्राप्त होता है उसी प्रकार महापुरुषों का जन्म भी श्रेष्ठ सदाचार वाले उत्तम कुल में ही होता है, अपूर्ण पुण्य वाले परिवार में नहीं होता। इसका एक उत्तम उदाहरण देवानन्दा ब्राह्मणी है। उसका पुण्य पूर्ण न होने के कारण ही भगवान् महावीर स्वामी उसके उदर में आकर भी वहां से स्थानान्तरित किए गए। उनका वहां से अपहरण किया गया, जिससे वह देवानन्दा पुत्र न कहलाकर त्रिशलानन्दन सिद्धार्थ-कुलदीपक, त्रिशलाकुमार तथा ज्ञातृपुत्र आदि नामों से ही जगत् में विख्यात हुए। इसी प्रकार देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए छै पुत्र देवकीपुत्र न कहला कर सुलसा सुत कहलाए। इस प्रकार यह निश्चय है कि महापुरुषों का जन्म ऐसे ही महानुभावों के घर होता है, जिनका पुण्य परिपूर्ण होता है। उत्तराध्ययन सूत्र में भी इसी बात को बतलाया गया है—

> खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दासपोरुसं।
> चत्तारि कामखंधाणि तत्थ से उववज्जई॥
>
> उत्तराध्ययन ३ - १७

> मित्तवं नायवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं।
> अप्पायंके महापन्ने अभिजाए जसोबले॥
>
> उत्तराध्ययन ३ - १८

महान् पुण्यात्मा जीवों के उत्पन्न होने के स्थान में इस

विशेषताएँ होती हैं, जिन्हें दस अंग कहते हैं। वह दस अंग यह हैं —क्षेत्र (ग्राम आदि), वास्तु (घर), सुवर्ण (उत्तम धातुएं), पशु, दास (नौकर)। इन चार कायस्कंध वाले स्थानों में वह जन्म लेते हैं, और वह मित्रवान्, शक्तिमान्, उच्चगोत्र वाले, कांतिमान्, अल्परोगी, महा बुद्धिमान्, कुलीन, यशस्वी तथा बलिष्ठ होते हैं।

महान् पुरुष मनुष्य जन्म लेकर प्राय: ऐसे कुल में उत्पन्न होते हैं, जो सदाचार सम्पन्न तथा वैभवशाली श्रेष्ठ कुल हो। इसी लिये उन्हें जातिवान् तथा कुलवान् माना गया है। जैन शास्त्रों में जातिवान् तथा कुलवान् उसे माना गया है, जिसके माता तथा पिता दोनों का कुल पूर्णतया सदाचार सम्पन्न हो। माता के कुल का उच्च होना पिता के कुल की अपेक्षा कम आवश्यक नहीं है। यदि देवकी उच्च कुलोत्पन्न न होती तो वह अपनी आठवीं सन्तान की रक्षा के लिये अपने छै छै पुत्रों का बलिदान न कर देती। ऐसी अवस्था में वह कृष्ण जैसे प्रतापी पुत्र को कदापि जन्म नहीं दे सकती थी। महासती अञ्जनादेवी ने जब धर्म की रक्षा के लिये अनेक कष्ट सहे तभी उसकी कोख से हनुमान् जैसे कर्मठ योद्धा ने जन्म लिया। महाभारत के चक्रव्यूह में बालवीर अभिमन्यु द्वारा बड़े बड़े महारथियों के पराजित किये जाने का प्रधान कारण यही था कि उसके अर्जुन जैसे वीर पिता तथा शत्रुमर्दिनी सुभद्रा जैसी उसकी वीरमाता थी। हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी ने बाल्यावस्था में ही असाधारण कार्य किये थे। उनका कारण भी उनके माता-पिता का उत्तम तथा उच्चवंशीय होना ही था।

हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी के पिता का शुभ नाम शाह मथुरादास जी था। वह ओसवाल वंश के आभूषण थे और अपनी जाति में सर्वप्रमुख माने जाते थे। उनका मूल निवासस्थान स्यालकोट नगर था। किन्तु एक बार स्यालकोट

में ऐसी भारी महामारी फैली कि उसके भय से लोग भाग २ कर अन्य स्थानों में चले गए। नगर को खाली होता हुआ देख कर शाह मथुरादास जी भी स्यालकोट से चलकर उसके समीप सम्बडियाल नामक नगर में आगए। यह स्थान उनको इतना अधिक पसन्द आया कि बाद में स्यालकोट में महामारी का जोर कम हो जाने पर भी उन्होंने वहां न जाकर सम्बडियाल को ही अपना स्थायी निवासस्थान बना लिया। धन वैभव की आपके पास कोई कमी न थी, किन्तु इतने बड़े धनी होने पर भी अभिमान उनको छू तक न गया था। वह स्वभाव से अत्यन्त नम्र एवं विनयी थे। सभी को आदर सत्कार देना तथा तन, मन और धन से दूसरों की सहायता के लिये कटिबद्ध रहना आप अपना प्रधान कर्तव्य मानते थे। इस सम्बन्ध में जनता भी आपत्ति के समय आप को ही याद करती थी। जहां किसी पर लेशमात्र भी आपत्ति आती तो जनता शाह मथुरादासजी को उसके मुकाबले के लिये खड़ा कर दिया करती थी। विद्वानों का आप बहुत आदर करते थे। नगर के सभी विद्वानों की आप सहायता किया करते थे। इसके अतिरिक्त यदि कभी कोई विदेशी अथवा अन्य स्थान का विद्वान् सम्बडियाल आ जाता तो आप उसके आदर सत्कार में किसी प्रकार भी त्रुटि नहीं होने देते थे। किसी के यहां किसी भी प्रकार का क्लेश कष्ट अथवा झगड़ा होता तो आप उसको अपने तीव्र बुद्धि बल द्वारा इस प्रकार दूर कर देते थे कि वादी तथा प्रतिवादी दोनों ही उनके न्याय की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे। आपकी राजदरबार में भी विशेष प्रतिष्ठा थी। राज्याधिकारी सार्वजनिक महत्ता के कार्यों में आपकी सम्मति अवश्य लिया करते थे। इससे साधारण जनता को अधिक से अधिक लाभ पहुँचता था। अपने इन्हीं गुणों के कारण आपने सबके हृदय

पर अपना प्रेम राज्य स्थापित कर लिया था। सारी जनता आपको चौधरी के नाम से पुकारती थी। यह घटना अब से लगभग सौ सवा सौ वर्ष पूर्व की है। उस समय के चौधरी आज के जैसे स्वार्थी तथा दलबन्दी करने वाले न होकर पूर्णतया परोपकारी होते थे। इसीलिये उस समय चौधरियों का महत्व इतना अधिक था कि जनता चौधरी की आज्ञा को राजाज्ञा की अपेक्षा भी विशेष महत्व देती थीं। चौधरी होने के अतिरिक्त आप एक अत्यन्त कुशल तथा सफल व्यापारी भी थे। आप सोने चांदी का व्यापार करते थे। इसीलिये आपके यहां बड़ी भारी विशाल सम्पत्ति थी। किन्तु सम्पत्ति पाकर भी आप कंजूस नहीं थे। आप उसका उपयोग बराबर दान आदि सत्कार्यों में करते रहते थे। आपके पास विशाल सम्पत्ति के अतिरिक्त ऐसा मनोहर रूप था, जो राजा महाराजाओं के रूप को भी तिरस्कृत करता था। अधिकार, धन, रूप तथा युवावस्था होने पर भी आप पूर्ण सदाचारी थे। आपके सदाचार की प्रशंसा चारों ओर सुनने में आती रहती थी।

आप की धर्मपत्नी का शुभ नाम लक्ष्मी देवी था। उनका रूप वास्तव में ही लक्ष्मी के समान था। वह शील आदि गुणों की भंडार थी। लक्ष्मी देवी के भाई लाला गंडामलजी जिला स्यालकोट स्थित पसरूर नामक नगर के निवासी थे। जनता उनको प्रायः गंडेशाह कहा करती थी। वह पंजाब प्रान्तीय जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी कान्फ्रेंस के प्रधान थे। वह म्युनिसिपल कमैटी के प्रधान भी कुछ समय तक रहे थे। गंडामल जी का कुल पंजाब में अत्यंत प्रतिष्ठित तथा ऊंचा माना जाता था। आप भी सोने चाँदी का व्यापार करते थे और अत्यन्त धनाढ्य तथा प्रभुतासम्पन्न थे। लक्ष्मीदेवी की आत्मा उनके शरीर से भी अधिक सुन्दर थी। उनके सम्बन्ध में जनता का यह विश्वास

था कि वह दूसरों को सुखी बनाने के लिये अपने सुख का भी बलिदान कर देती थीं। वह अपने पिता तथा पति दोनों कुलों की कीर्ति को उज्वल करती हुई मन, वचन तथा काय से सदा ही पति की सेवा में लगी रहती थीं। उनको निर्धनों की सेवा करने में भारी आनन्द आता था। अपने इसी स्वभाव के कारण आप सम्बडियाल आते ही अनेक अनाथ बालकों की माता बन गईं। आप आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त उनके जीवन को सुधारने का यत्न भी करती रहती थीं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह उन अनाथ बच्चों को प्रेम सहित ऐसी ऐसी कथाएँ सुनाया करती थीं, जिससे उनके हृदय के दुर्गुण दूर होकर वह गुणवान् बन सकें।

शाह मथुरादास तथा श्रीमती लक्ष्मीदेवी दोनों में धर्म के प्रति उत्कट रुचि थी। आप लोगों को आचार्य श्री १००८ श्री अमरसिंह जी महाराज का उपदेश सुनने का अवसर प्रायः मिल जाता था। अतएव आप दोनों उनको गुरु मान कर उनमें दृढ़ गुरुभक्ति रखते थे। आप दोनों में गुरुभक्ति का उद्रेक इतना बढ़ा कि आप दोनों ने युवावस्था में ही गुरु महाराज से श्रावक के द्वादश व्रतों को ग्रहण करके अपने मनुष्य जीवन को सफल बना लिया। आप दोनों एकांत में बैठने पर भी प्रायः धर्मचर्चा ही किया करते थे। आप दोनों ने अपने सुन्दर स्वभाव से घर को स्वर्ग के समान बना रक्खा था। यह दोनों अपने मन में दुर्भावना को न लाते हुए अपने द्वादश व्रतों का इस प्रकार पालन करते थे कि उनमें अतिचार लगने की सम्भावना भी नहीं होती थी। इस प्रकार आप दोनों का जीवन जनता के लिये एक आदर्श गृहस्थ के जीवन का दृश्य उपस्थित करता था। इस प्रकार दोनों न केवल सम्बडियाल नगर के वरन् समस्त जैन समाज के शृंगार थे।

३

भावीसूचक स्वप्न

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥

भक्तामर २२

सैकड़ों स्त्रियां सैकड़ों पुत्रों को जन्म दिया करती हैं, किन्तु तुम्हारे जैसे पुत्र को अन्य किसी स्त्री ने जन्म नहीं दिया। चमकदार तारों को सभी दिशाएँ धारण करती हैं, किन्तु प्रकाशित किरणों वाले सहस्ररश्मि को केवल पूर्व दिशा ही जन्म देती है।

रात्रि का अन्तिम प्रहर व्यतीत होरहा है। धर्मात्मा पुरुष आलस्य निद्रा त्याग कर भगवद्भजन तथा आत्म चिन्तवन में लगे हुए हैं। चोर जार आदि अपने २ कार्य को समाप्त कर घरों में जाग हो जाने के भय से अपने २ घर में जाकर दुराचार की भावना को त्यागकर विश्राम कर रहे हैं। निशापति चन्द्रदेव ने अपनी अद्भुत शान्त तथा श्वेत चांदनी को समस्त पृथ्वी पर फैला कर उसको रजतमय बना रक्खा है। उसके सामने अनेक कोटि तारागण का प्रकाश फीका हो रहा है। उसको देख कर ऐसा

प्रतीत होता है कि अपने स्वामी निशापति के पधारने की प्रसन्नता में अपने प्रकाशमय जीवन को स्वामी के प्रकाश रूप जीवन में मिला कर वह अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। कहीं कहीं से किसी किसी प्रभुभक्त की भक्तिरस में पगी हुई स्वरलहरी कानों में अमृत उँडेल रही है। ऐसे समय में सम्बडियाल नगर के एक विश्राम भवन में हम एक अत्यन्त सुन्दर तथा लावण्यमयी तरुणी महिला को अनमने भाव से शय्या त्यागते देखते हैं। उसके शरीर पर बहुमूल्य वस्त्र तथा रत्नजटित आभूषण हैं, जो उसके सम्पन्न घराने को सूचित कर रहे हैं। वह शय्या को त्यागते समय अत्यन्त प्रसन्न दिखलाई दे रही है, जो उसके मुख की हास्य रेखा से प्रकट है। उसने शय्या त्यागकर प्रथम णमोकार मंत्र का उच्चारण किया। इसके बाद वह पञ्च परमेष्ठि का ध्यान करते हुए कुछ बुदबुदाने लगी।

"हैं ! वह मेरा स्वप्न था या मेरा भ्रम है ? नहीं, नहीं, वह निश्चय से स्वप्न ही था। स्वप्न ही नहीं, वह महान् कल्याणकारी मंगलमय भावीसूचक तथा सौभाग्यवर्धक स्वप्न था। सिंह कैसा भयंकर प्राणी होता है ? किन्तु स्वप्न में मुझको दिखलाई देने वाला सिंह स्वप्न में कैसा प्यारा लगता था ? सफेद सिंह तो कहीं सुनने में भी नहीं आते, किन्तु उसका रंग तो मोती के समान ऐसा श्वेत था कि उसमें से श्वेत ज्योति निकल रही थी। फिर जब उसने मेरे मुख में प्रवेश किया तो मुझे वह और भी प्यारा लगने लगा। निश्चय से यह स्वप्न किसी भावी कल्याण का सूचक है। अब इसके सम्बन्ध में अभी जाकर प्राणनाथ प्राणेश्वर से परामर्श करना चाहिये, क्योंकि बराबर शास्त्र श्रवण करने से उनको स्वप्न शास्त्र का भी

अनुभव हो गया है। उत्तम स्वप्न के बाद सो जाने से उस स्वप्न का प्रभाव नष्ट हो सकता है। अस्तु अब शेष रात्रि जाग कर उनके साथ वार्तालाप करते हुए बितानी चाहिये।"

इस प्रकार मन ही मन विचार करके लक्ष्मीदेवी ने शय्या का त्यागन किया। उन्होंने नित्य कर्मों से निवृत्त होकर उत्तम वस्त्र धारण किये। फिर वह अपने पतिदेव शाह मथुरादास जी के कमरे की ओर आईं। शाह मथुरादास जी भी इस समय शय्या त्याग करके उठे ही थे। वह शौचादि नित्य कर्मों से निपट कर सामायिक में बैठने वाले थे कि लक्ष्मीदेवी ने उनके द्वार के कुंडे को खड़काया। द्वार का शब्द सुनकर शाह मथुरादास जी ने कुंडा खोला तो लक्ष्मीदेवी ने अत्यन्त प्रेम-पूर्वक उनका अभिवादन किया। शाह मथुरादास उनको इस असमय आते देखकर आश्चर्य में पड़ कर बोले—

"अरे! तुम इस समय कैसे आगईं! आज तुम्हारा मुख प्रसन्न है। तुम्हारे रोम रोम से प्रसन्नता टपकी पड़ती है। तुमको ऐसा कौन सा लाभ हो गया है? अच्छा प्रथम अन्दर आकर बैठो।"

इस पर लक्ष्मी देवी ने अन्दर आकर एक आसन पर बैठते हुए उनसे कहा—

"प्राणनाथ! आज मैंने अभी अभी एक उत्तम स्वप्न देखा है। यद्यपि मैं स्वप्न के फल को नहीं जानती, किन्तु मेरा मन उस स्वप्न के कारण अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है। आप स्वप्न शास्त्र के अनुभवी हैं। अतएव मैं उसका फलादेश जानने के लिए आपके पास आई हूं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपना स्वप्न आपके सम्मुख निवेदन करूं।"

यह सुनकर शाह मथुरादास जी बोले—

"तुम अपने स्वप्न को अवश्य कहो। आज मैं सामायिक में कुछ शीघ्र बैठने वाला था। अब तुम्हारे साथ वार्तालाप करने के उपरान्त ही सामायिक में बैठूंगा।"

शाह मथुरादास जी के यह शब्द सुनकर लक्ष्मी देवी बोलीं

"भगवन्! अभी अभी मैं निद्रा में पड़ी हुई सो रही थी कि मैंने स्वप्न में एक ऐसा सिंह देखा, जो महान् कल्याणकारी, उपद्रवरहित, मंगलमय, सौभाग्यवर्धक तथा किसी भावी कल्याण का सूचक था। उसका रंग सच्चे मोतियों के समान श्वेत था। उसके शरीर में से वज्र तथा हीरे के समान श्वेत ज्योति निकल रही थी। उसके शरीर का श्वेत रंग इतना सुन्दर था कि उसकी उपमा उस मक्खन से ही दी जा सकती है, जिसे कार्तिक मास में कच्चे दूध से निकाला गया हो अथवा वह रजत महाशैल वैताढ्य पर्वत के समान श्वेत था। मैं तो यह कहूंगी कि वह चन्द्रमा की किरणों से भी अधिक श्वेत था। उसका कटिभाग अत्यन्त विस्तीर्ण होते हुए भी मर्यादित, रमणीय, मनोहर, दर्शनीय तथा कृश था। उसका मुख खुला हुआ था, जिस में उसकी गोल २ स्थूल तथा तीक्ष्ण दाढ़ें एक दूसरी से अत्यधिक सटी हुई स्पष्ट दिखलाई पड़ती थीं। उसके तालु तथा उसकी जिह्वा का रंग उत्तम जाति के कमल के समान रक्तवर्ण था। फिर भी वह दोनों कोमल तथा यथाप्रमाण थे। उसकी दोनों आंखें विद्युत् के समान चमक रही थीं। उसकी जांघें स्थूल, दृढ़ तथा मांसल थीं। उसका स्कन्ध भाग पूर्णतया ऊपर को उठा हुआ था। उसकी गर्दन के चारों ओर बड़े कोमल लम्बे २ बाल थे, जो आक की रुई से भी मुलायम थे। उनका रंग खिले हुए केशर के फूल के समान होने के कारण दूर से ही चमक रहा था।

वास्तव में उसकी केशराजी अथवा केसर छटा बहुत सुन्दर दिखलाई दे रही थी। उसकी पूंछ बहुत लम्बी थी, जिसको उसने प्रथम पृथ्वी पर फटकार कर फिर ऊपर को करके झुका लिया था। वह क्रीड़ा करते समय जंभाई लेता जाता था और आकाश से नीचे को उतरता जाता था। नीचे आकर वह सिंह मेरे मुख में घुस कर मेरे पेट में चला गया। उसके पेट में आते ही मेरी आंखें एक दम खुल गईं। हे नाथ! अब आप कृपाकर यह बतलावें कि मुझे इस स्वप्न का क्या फल मिलेगा?"

अपनी धर्मपत्नी के इस महान् कल्याणकारी स्वप्न को सुन कर मथुरादास जी को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। उनका एक एक रोम खिल उठा। उनके हृदय में हर्ष का ऐसा उद्रेक हुआ कि कुछ देर तक तो उनके मुख से वचन तक भी नहीं निकला। कुछ समय के उपरान्त स्वस्थ होने पर वह अपनी पत्नी से बोले—

"हे देवी! तुमने महान् स्वप्न देखा है। मैंने गुरुओं से सुना है कि स्वप्न असंख्य होते हैं, किन्तु जिस प्रकार दूध में से मक्खन निकाल लिया जाता है उसी प्रकार विद्वानों ने उन असंख्य स्वप्नों में से बयालीस सर्व श्रेष्ठ स्वप्न छांट लिये हैं, जिनको अत्यन्त उत्तम माना जाता है। उनमें से चौदह स्वप्न तीर्थंकर भगवान् अथवा चक्रवर्ती की माता देखती है। उनमें से सात स्वप्न नौ नारायणों की माताएं देखती हैं। चार स्वप्न बलभद्रनारायण की माता देखती है, तथा एक स्पप्न मांडलिक राजा अथवा स्वपरकल्याण करने वाले अपने समय के सर्वश्रेष्ठ मोक्षमार्ग के साधक की माता देखती है। इसलिये हे देवि! इस उत्तम स्वप्न के प्रभाव से तुमको ऐसे श्रेष्ठ तथा गुणी पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी, जिससे घर में सुख, सौभाग्य, भोगोपभोग के साधनों, यश, कीर्ति, धन, धान्य तथा आभूषणों आदि की वृद्धि

होगी। यह पुत्र भविष्य में हमारे कुल को अत्यधिक प्रसिद्ध तथा उज्वल करेगा। वह हमारे कुल में मुकुटमणि के समान चमकेगा। तुम्हारा यह पुत्र संसार में ऐसे कार्य करेगा, जिनके कारण संसार उसको सैकड़ों वर्ष तक स्मरण रक्खेगा। यह पुत्र चतुर्विध संघ का परम हितैषी होगा। वह चतुर्विध संघ के कल्याणार्थ अनेक ऐसें कार्य करेगा, जिनसे उनका अभ्युदय हो और उसकी कीर्ति अजर अमर रहेगी। यह पुत्र सिंह के समान निर्भीक होगा। जिस प्रकार सिंह मृगेन्द्र कहलाता है उसी प्रकार तेरा यह पुत्र भी अपने सत्कर्मों तथा पराक्रम से मनुष्येन्द्र कहलावेगा। इस प्रकार हे देवी! तुमने अत्यन्त कल्याणकारी एवं मंगलकारक स्वप्न देखा है।"

अपने पति से इस प्रकार स्वप्न का उत्तम फल सुनकर लक्ष्मी देवी को ऐसा अधिक आनन्द हुआ, जैसा किसी रंक को असीम लक्ष्मी मिल जाने से होता है। उसका मुख विकसित कमल पुष्प के समान खिल उठा। फिर वह प्रफुल्लित तथा अनिमेष दृष्टि से अपने पति की ओर देखती हुई अपने दोनों हाथ जोड़ कर उनसे कहने लगी—

"हे नाथ! आपने जो कुछ भी इस स्वप्न का फल बतलाया है ऐसा ही होने में हमारा कल्याण है और मैं भी ऐसे ही फल की कामना करती हूँ। मेरे मन में बारबार इसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न हो रही है।"

लक्ष्मी देवी यह कहकर तथा अपने पति को बार बार प्रेमपूर्वक नमस्कार करके अपने कमरे में वापिस आगई।

४

जन्म

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य ।
तस्याम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम ॥

गुणियों की गिनती आरम्भ करने पर जिसके नाम पर अचानक ही गिनने वाली अंगुली न आ पड़े यदि उसकी माता को पुत्रवती कहा जावेगा तो फिर वन्ध्या की क्या परिभाषा की जावेगी ? तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति की गणना सभा में गुणियों में न की आवे, उसकी माता को वन्ध्या ही समझना चाहिये। पुत्रवती माता वही है, जिसके पुत्र की गणना सब कहीं गुणियों में की जावे ।

ज्येष्ठ मास समाप्त होने वाला है, किन्तु वर्षा आने के लक्षण अब भी दिखलाई नहीं देते। मध्यान्ह होने के कारण सूर्यदेव अपनी सहस्रों किरणों से संसार को तपा रहे हैं। बाहिर निकलना कठिन हो रहा है। कोई तहखानों में तो कोई अपनी अपनी दूकानों के अन्दरूनी भाग में ताप से दुबके बैठे हुए हैं। नगर के बाहिर जोहड़ों का जल इतना उष्ण हो गया है कि भैंसों के लिये भी उसमें बैठना असम्भव हो गया है। गौवें तथा भैंसें धूप की तीव्रता के कारण चरना बन्द करके सायेदार वृक्षों के नीचे खड़ी २ जुगाली कर रही हैं। चिड़ियें भी भीषण ताप के कारण चुग्गे के लिये बाहिर न जाकर वृक्षों के साए में

टहनियों के पत्तों में छुपी बैठी हैं कि अचानक पश्चिम की ओर से एक काली २ घटा आती हुई दिखलाई दी। बात की बात में बादलों ने सूर्य को ढक लिया और सम्पूर्ण आकाश में मेघ छा गए। पहिले रिमझिम रिमझिम बून्दें पड़ीं और शीघ्र ही मूसलाधार वर्षा पड़ने लगी। भयंकर उष्णता के बाद इस आकस्मिक वर्षा से समस्त लोक प्रफुल्लित हो उठा। वृद्ध, युवा, बालक, बालिकाएं, युवतियां, वृद्धाएं, पशु, पक्षी तथा वृक्ष सभी आनन्द में विभोर होकर नृत्य करने लगे। चिरकाल के बाद तप्त शरीर का दाह शान्त करने वाला जल बरसता देखकर छोटे छोटे बालक नग्न होकर तुरन्त वर्षा में निकल गए और इधर उधर कूदते हुए भाग २ कर जल में कल्लोल करने तथा हर्ष के गीत गाने लगे। अब तो सारी वायु ठण्डी हो गई और शीतल तथा मन्द पवन चलने लगी। अढ़ाई तीन घंटे तक भारी वर्षा होने के उपरान्त वर्षा का वेग कम हुआ। इस समय आकाश में अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य का कुछ भाग दिखलाई दिया। उधर आकाश में दूसरी ओर सात रंग का इन्द्र धनुष दिखलाई देने लगा। सूर्य की किरणों के तिरछे प्रकाश से आकाश के बादल भी अनेक रंगों में रंगे हुए दिखलाई देने लगे। इस दृश्य को देखकर नर नारी और भी आनन्दित हुए। अनेक स्थानों पर लोग अपने २ प्रेमियों तथा बच्चों को बुला २ कर इन्द्र धनुष को दिखला रहे हैं। मोर हर्ष में विभोर होकर अपने केका रव से आकाश को गुञ्जारित करते हुए पंख ऊपर उठा कर नाचते हुए अपनी अपूर्व कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। ऐसे समय में एक महिला अपने विशाल भवन के एक कमरे में एक आसन पर बैठी हुई आत्मचिन्तवन तथा धार्मिक विचारों में लीन है। वह अपने विचारों में इतनी तन्मय है कि उसके हृदय पटल पर इस प्राकृतिक परिवर्तन का

लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। यद्यपि उसके शरीर पर कोई बहुमूल्य वस्त्राभरण नहीं है, किन्तु उसके शरीर की अपूर्व शोभा तथा मुख पर छाई हुई शान्त रस की आभा उसे देखने वाले के मन को मुग्ध कर देती है। वह युवती अपनी उस मुद्रा में बैठी थी कि एक युवक उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसके वस्त्र बहुमूल्य थे। सौंदर्य उसके अंग २ से प्रकट हो रहा था, जो उसके प्रतिष्ठित वंश में उत्पन्न होने की साक्षी दे रहा था। युवक को उस महिला को इस प्रकार ध्यानमग्न देखकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ। महिला को युवक के आने का लेशमात्र भी ध्यान नहीं हुआ, यह देखकर तो युवक और भी अधिक आश्चर्य में पड़ गया। अन्त में उससे न रहा गया और वह उस महिला से बोला।

"देवि! यह क्या हो रहा है?"

युवक के यह शब्द सुनते ही महिला ने उसकी ओर को देखा। वह उसे देखते ही खिल उठी और मुस्करा कर बोली

"पतिदेव! कुछ भी तो नहीं।"

"कुछ कैसे नही? मैं कई दिन से बराबर देख रहा हूँ कि न तो तुमको वस्त्राभूषणों से प्रेम है और न ही खानपान से। आश्चर्य तो यह है कि ऐसे सुहावने समय में भी तुम एकांत में बैठकर अपने विचारों में इतनी तल्लीन थीं कि तुमको मेरे आकर खड़ा हो जाने तक का पता न चला। क्या तुम्हारा किसी से झगड़ा हुआ है?"

"नाथ! न तो मेरा किसी से झगड़ा हुआ है, न ही अन्य कोई दुःखद घटना ही घटी है। किन्तु नाथ! आपको स्मरण होगा कि मैंने आपके श्री चरणारविंद में अपना एक स्वप्न

सुनाया था, जिस में एक श्वेत वर्ण तेजस्वी सिंह के मेरे मुख में प्रवेश करने की घटना थी।"

"हां, हां, भला वह भी कोई भूलने की बात है ? ऐसा कौन मूर्ख है जो ऐसे असाधारण सौभाग्यवर्द्धक स्वप्न को भूल जावे।"

"नाथ ! मेरा तो ज्यों ज्यों यह गर्भ बढ़ता जा रहा है त्यों त्यों मेरे विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन होता जा रहा है। पतिदेव ! आज मैं यह विचार कर रही थी कि मनुष्य जीवन का क्या ध्येय है। क्या सुन्दर वस्त्राभूषणों को पहिनना, उत्तम सुस्वादु पौष्ठिक पदार्थों का भोग लगाना अथवा सुन्दर यानों पर बैठ कर संसार को अपना वैभव दिखलाना ही मनुष्य जीवन का ध्येय है ? नहीं, कदापि नहीं। मनुष्य जीवन का ध्येय यह नहीं हो सकता। यदि मनुष्य जीवन का ध्येय यह होता तो बड़े बड़े उत्तम पुरुष तथा ऐसे महात्मा जिनको हम अपना आदर्श गुरु मानते हैं तथा जिनके वचन पर विश्वास कर हम अपने सर्वस्व तक का बलिदान कर देने को सदा तत्पर रहते हैं वह त्यागी निर्ग्रन्थ मुनि इन पदार्थों का त्याग क्यों करते ? अतएव कुछ दिनों से मेरे मन में अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ उत्पन्न होती रहती हैं।"

"अपनी उन अभिलाषाओं के विषय में मुझको भी तो कुछ बतलाओ।"

"मैं कई दिनों से अपनी इन इच्छाओं को मन में दबा कर रखती रही। आज आपकी आज्ञा है तो मैं आपके सामने उनके विषय में कुछ निवेदन करती हूं। मेरी प्रथम इच्छा तो यह है कि मैं सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनने की अपेक्षा यथाशक्ति

ऐसे दीन दुखियों की सहायता किया करूं, जो अपनी दरिद्रा-वस्था से अत्यन्त पीड़ित होकर भूख की ज्वाला बुझाने के लिये विधर्मी तक बनने को तय्यार हैं। यदि हमारा वैभव ऐसे दीन हीन जनों की सहायता करने में काम न आया तो इस धन को पाने से क्या लाभ? मेरे मन में दूसरी अभिलाषा यह बनी रहती है कि मैं अत्यधिक धार्मिक विद्या प्राप्त करूं, जिससे न केवल मुझे अपने आत्मिक गुणों का भान हो, वरन् मेरा मन पौद्गलिक पदार्थों से विरक्त होकर निवृत्ति मार्ग में इस प्रकार लीन हो जावे कि मुझे जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पाप और पुण्य इन नव पदार्थों का ज्ञान होकर मेरा आत्मा स्वपर कल्याण का साधन कर सके। मेरे मन में बनी रहने वाली तीसरी अभिलाषा यह है कि मैं मनुष्य जीवन को सफल बनाने के लिये दोनों समय सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाओं को अधिक से अधिक करती रहूं। आजकल मेरे हृदय में यह तीन अभिलाषाएँ ही अधिक बनी रहती हैं।"

पाठक इस वार्तालाप से यह समझ गए होंगे कि यह शब्द लक्ष्मी देवी ने अपने पति शाह मथुरादास जी से कहे हैं। अपनी पत्नी के इन वचनों को सुन कर मथुरादास जी बोले

"हे भद्रे! इस प्रकार की उत्तम इच्छाएँ गर्भावस्था में किसी किसी ही सौभाग्यशालिनी गर्भिणी को हुआ करती हैं। हे देवी! तुम अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अपनी इन शुभ इच्छाओं को पूर्ण कर सकती हो। ज्ञान सम्पादन करने तथा धार्मिक क्रियाओं के करने की तुमको आरम्भ से ही पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। अब तुमको मेरी ओर से भी इन कार्यों में अधिक से अधिक सहायता मिला करेगी। तुम चाहे जितना दान दे सकती हो।

मेरी ओर से तुम्हारे इस कार्य में कभी बाधा न डाली जावेगी। हे देवी! यह हमारे महान् पुण्य का उदय है कि कोई ऐसा पवित्र तथा पुण्यशाली जीव तुम्हारे गर्भ में आया है कि उसने आते ही तुम्हारे विचारों में ऐसा परिवर्तन कर दिया। जिस आत्मा ने जन्म लेने के पूर्व ही ऐसा अद्भुत चमत्कार दिखला दिया तो जन्म लेने के उपरान्त तो भविष्य में न जाने वह कैसे कैसे श्रेष्ठ कार्य करके हमारे कुल की कीर्ति को दिग्दिगन्त में फैलावेगा।"

पति के इस प्रकार दौहृदपूर्तिकर उत्साहजनक वचनों को सुनकर लक्ष्मी देवी को अत्यन्त हर्ष हुआ। अब वह निश्चिन्त होकर रात दिन धार्मिक क्रियाओं का पालन दत्तचित्त होकर करने लगी। वह अनेक दीन हीन जनों को सप्रेम उनकी इच्छित वस्तुओं का यथाशक्ति दान दिया करती तथा अपने शेष समय को पठन पाठन, सामायिक तथा प्रति-क्रमण आदि करने में लगाया करती। अनेक अवसरों पर शाह मथुराप्रसादजी भी उसके इन कार्यों में योग दिया करते थे, जिससे उसके मन का उत्साह और भी बढ़ जाया करता था।

इस प्रकार उसके मन का दौहृद पूर्ण होने से उसका गर्भ शीघ्रता से पुष्ट होने लगा। देखते २ नौ मास निकल गए और दसवें मास में श्रीमती लक्ष्मी देवी उस महापुरुष को जन्म देने की तयारी करने लगीं, जिसका उपदेश सुनने की न जाने कितने संतप्त आत्मा बिना जाने ही प्रतीक्षा कर रहे थे।

श्रीमद् भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

हे अर्जुन ! जब २ धर्म का ह्रास होकर अधर्म बढ़ता है तो मैं अपने आप को निर्माण करता हूं ।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि ऐसे अवसर पर कोई भगवान् पृथ्वी पर आकर अवतार लेता है, वरन् इसका आशय यही है कि प्रायः महापुरुषों का जन्म किसी विशेष परिस्थिति के उत्पन्न होने पर ही होता है। जिस समय चारों ओर अशान्ति का साम्राज्य हो, प्राकृतिक नियमों में अस्तव्यस्तता आ गई हो, जनता में धार्मिक भावना इतनी कम हो जावें कि वह नहीं के बराबर हो जावे, धर्मात्माओं की संख्या घटते घटते अत्यन्त कम हो जावे, आपस में ऐसी फूट फैल जावे कि वह एक दूसरे के नाश का प्रयत्न विदेशियों के हाथ में खेल कर करने लगें तो ऐसी परिस्थिति में किसी महापुरुष का जन्म अवश्य होता है।

आज से डेढ़ दो सौ वर्ष पूर्व भारत की परिस्थिति बहुत कुछ इसी प्रकार की थी। उस समय भारतवासियों के स्वत्वों को विदेशियों द्वारा पूर्णतया रौंदा जा रहा था। उनमें फूट देवी का ऐसा अखण्ड साम्राज्य था कि वह अंग्रेजों के हाथ में खेल कर देश की परतन्त्रता की बेड़ियों को दृढ़ बना रहे थे। यद्यपि उन दिनों कई ऐसे महानुभाव भी थे जो भारत का गौरव बढ़ाने का यत्न किया करते थे, किन्तु उनको सर्वप्रथम अपने स्वदेश बन्धुओं के ही विरोध को सहन करना पड़ता था। इस प्रकार के सत्व सम्पन्न भारतीय अपने स्वत्व का बलिदान करने पर भी देशद्रोहियों की आंखों में कांटे के समान चुभा करते थे। इस विकट समय में पञ्जाब में वह पञ्जाबकेसरी महाराजा रणजीतसिंह राज्य करते थे, जिन्होंने अपने कार्यों से भारत के गौरव को बढ़ाया था। उनका राजमुकुट संसार प्रसिद्ध कोहनूर हीरे से सुशोभित था। उनके राज्यकाल में सम्बड़ियाल

का सौभाग्य सिन्दूर विशेष रूप से चमक रहा था। उस समय विक्रम संवत् १६०६ अथवा ईस्वी सन् १८४६ के मार्गशीर्ष मास में मेरठ निवासी सुप्रसिद्ध दैवज्ञरत्न पण्डितप्रवर गौरीशंकर जी अपनी ज्योतिष विद्या का जनता को पञ्जाब में स्थान स्थान पर चमत्कार दिखला रहे थे। वह अपने चमत्कारों से यश और कीर्ति का सम्पादन करते हुए तथा विपुल स्वागत, सन्मान एवं धन रत्न आदि प्राप्त करते हुए सम्बडियाल भी आए। उनकी कीर्ति तो उनके आगे सम्बडियाल पहुंच ही चुकी थी, अतएव यहां की जनता ने उनका खूब सत्कार किया। शाह मथुरादास जी ने इनका अभूतपूर्व स्वागत करके उनको अपने ही प्रासाद में ठहराया। पंडित जी सम्बडियाल पौष मास की पूर्णिमा को आए थे। शाह मथुरादास जी के स्वागत से प्रसन्न होकर वह रात को बड़े आनन्द से सोए, किन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही पंडित गौरीशंकरजी ने शाह मथुरादास जी से कहा—

"शाह जी, रात्रि के समय मैंने एक अत्यन्त ही विचित्र स्वप्न देखा है। मैं उस स्वप्न के प्रभाव से यह कह सकता हूँ कि आपको तीन दिन के अन्दर २ एक ऐसे अमूल्य रत्न की प्राप्ति होगी, जिसके निमित्त से मुझे भी आपसे विशेष आर्थिक लाभ होगा।"

वास्तव में पंडित गौरीशंकर जी आज कल के पंडितों के समान न होकर अपने कार्य में अत्यन्त चतुर थे। वह एक सफल भविष्यवक्ता थे। उनके इस वचन को सुनकर शाह मथुरादास जी को भी भारी प्रसन्नता हुई। वह मन में सोचने लगे कि

'देखें, तीन दिन के अन्दर किस वस्तु की प्राप्ति होती है।'

किन्तु उसके ठीक दूसरे दिन ही रविवार माघ बदि १ संवत् १६०६ विक्रमी को अनुकूल ग्रहस्थिति में आपकी धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया। उस समय आकाश में ग्रहों के गण ने उत्तम योग बनाया हुआ था। पुत्र जन्म होते ही सारे परिवार में हर्ष की लहर दौड़ गई। चारों ओर आनन्द छा गया। वास्तव में संसार में माताएं तो अनेक होती हैं, किन्तु लक्ष्मीदेवी के समान कितनी माताएं हैं, जिन्हें आचार्य सम्राट् की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। साधारण पुत्रों को तो अनेक माताएं जन्म देती हैं, किन्तु आचार्य सम्राट् जैसे महान् पुत्र को जन्म देने वाली माता केवल आप ही हैं। एक कवि ने कहा है कि—

माता जने तो भक्त जन, या दाता या शूर ।
नहि तर बिरथा बापड़ी, काहि गमावे नूर ॥

हे माता तू या तो भक्त पुत्र या दानी पुत्र अथवा शूरवीर पुत्र को ही जन्म दे। यदि तू ऐसा नहीं करती तो हे बावली, तू अपने स्वास्थ्य तथा सौंदर्य को व्यर्थ क्यों नष्ट करती है ?

वास्तव में आज माता लक्ष्मीदेवी ने अनुपम लाल पाया, जैन समाज ने धर्म दिवाकर पाया, साधुओं ने भावी साधु सरताज पाया, धर्म ने आधार पाया, अज्ञानियों ने ज्ञान का पवित्र झरना पाया, अशान्त आत्मा ने शान्ति का स्थान पाया, निर्धनों ने बन्धु पाया, रोगपीड़ितों ने धन्वन्तरी पाया, अनाथों ने नाथ पाया, पथभ्रष्ट पथिकों ने प्रकाश पाया, मोक्षमार्ग के पथिकों ने पथप्रदर्शक तथा एक योग्य नेता पाया। इस प्रकार आज सारे नगर में प्रसन्नता ही प्रसन्नता छा गई।

बालक के जन्म के उपरांत उसका नाल काटा गया, किन्तु जिस समय धाय उस बालक के नाल को गाड़ने के लिये भूमि खोदने लगी तो उसके अन्दर से अशर्फियों से भरा हुआ एक लोटा निकला, जिस में सोने की पांच सौ मुहरें थीं। धाय पहिले तो उन मुहरों को देखकर एकदम घबरा गई। उसने सुना था कि भूमि के अन्दर रहने वाले धन की रक्षा नाग किया करते हैं। अतएव वह सोचने लगी कि ऐसा न हो कि कहीं से कोई नाग आकर उसपर आक्रमण कर बैठे। किन्तु जब उसको निश्चय हो गया कि इस लोटे के साथ कोई नाग नहीं है तो प्रथम तो उसने नाल को उस गड्ढे में दाब दिया और फिर वह प्रसन्न होती हुई उस लोटे को लेकर शाह मथुरादास जी के पास आई। उसने उनको लोटा देते हुए कहा—

"शाह जी, आपको दुगनी बधाई है।"

शाह जी—दुगनी बधाई कैसी ?

धाय—प्रथम बधाई तो पुत्र जन्मोत्सव की और दूसरी उसके ऊंचे भाग्य की है। बच्चे ने जन्म लेते ही यह सिद्ध कर दिया कि वह मुंह में सोने का चम्मच लेकर पैदा हुआ है। जब मैं नाल गाड़ने के लिये गड्ढा खोद रही थी तो उसमें से अशर्फियों से भरा हुआ यह लोटा निकला। यह लोटा इस बच्चे का है। अतएव यह मैं आपको सौंपती हूं। अब आप जैसा उचित समझें इसका प्रयोग करें।

शाह जी—"तेरी दोनों बधाइयां स्वीकार हैं। इसीलिए कवियों ने कहा है कि—

'वृक्ष की छाया तथा पुण्यात्मा की माया साथ ही आती और साथ ही जाती है।' अच्छा अपने पारिश्रमिक की यह पांच स्वर्ण मुद्राएं लेजा।"

यह कह कर शाह मथुरादास जी ने धायको पांच अशर्फियां दे दीं। धाय अशर्फियां लेकर बच्चे को सैकड़ों आशीर्वाद देती हुई चली गई। धाय के जाने के बाद शाह मथुरादास जी अपने मन में सोचने लगे।

"जो बालक जन्म से पूर्व ही शुभ स्वप्न तथा शुभ दोहला देकर रोग को शान्त कर सकता है तो वह जन्म के बाद तो कितना अधिक भाग्यशाली सिद्ध होगा। इसका प्रमाण उसके जन्म के साथ ही धन का प्रकट होना है। इस प्रकार तो भविष्य में न जाने यह बालक क्या क्या कार्य करेगा? वास्तव में यह सब इस बालक के पुण्य का ही प्रभाव है। अतएव इस सारे के सारे धन को बालक के जन्म महोत्सव में लगा देना चाहिये।"

ऐसा निश्चय करके उन्होंने बालक के जन्म का उत्सव इतने अधिक समारोह के साथ मनाया कि उसमें उन्होंने उस समस्त धन को लगा दिया। शाह मथुरादास जी ने पंडित गौरीशंकर जी से ही बालक की जन्म पत्री बनवाई। जन्मपत्री बन जाने पर शाहजी ने उनको भारी पारितोषिक देकर विशेष रूप से सम्मानित किया। इस प्रकार ज्योतिषीजी की भविष्यवाणी पूर्णतया सत्य प्रमाणित हुई।

जब बच्चा ग्यारह दिन का हुआ तो अत्यन्त समारोहपूर्वक उसका नाम करण संस्कार कराके उसका नाम 'सोहनलाल' रखा गया। अब बालक सोहनलाल द्वितीया के चन्द्रमा के समान दैनिक उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। पंडित गौरीशंकर द्वारा बनाई हुई उक्त जन्म पत्री की नकल अगले पृष्ठ पर दी जाती है।

श्री शुभ संवत् १६०६ विक्रमाब्दे माघ कृष्ण प्रतिपदि धनार्कप्रतिष्ठायां १८ रविवासरे ऐन्द्र योगे पुनर्वसुनक्षत्रे वृश्चिक लग्नोदये ओसवालवंशे जन्म।

५
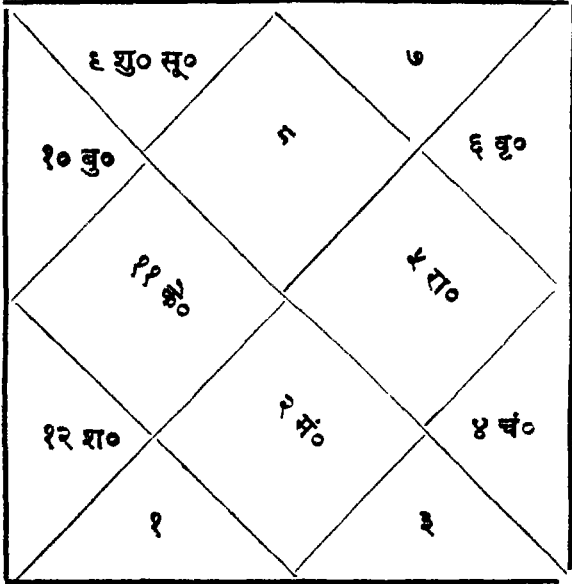
सर्प द्वारा छत्र करना

भीमं वनं भवति तस्य पुरः प्रधान,
सर्वे जनाः स्वजनतामुपयान्ति तस्य ।
कृत्स्ना च भू भवति तं निधिरत्नपूर्णा,
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥

जिस मनुष्य का पूर्व पुण्य भारी होता है उसके लिये वन प्रधान निवासस्थान हो जाता है, सभी मनुष्य उसके अपने जन बन जाते हैं और उसके लिए समस्त पृथ्वी कोष तथा रत्नों से भरी पूरी बन जाती है।

मध्यान ढल चुका है। लगभग तीन बजे का समय है। सहस्रांशु सूर्य अपनी प्रखर किरणों से संसार को जलाने में असमर्थ होकर निराश भाव से अस्ताचल की ओर जाने लगे हैं। सम्बडियाल निवासी अपने अपने कार्यों में लग गये हैं। नगर में अच्छी चहल पहल है। ऐसे समय एक तीन मंजिल वाले विशाल भवन के एक सजे सजाए कमरे में एक सुन्दर पलंग पर एक एक वर्ष की आयु का बालक आनन्द से पड़ा सो रहा है। उसके ऊपर भारत की सर्व श्रेष्ठ चित्रकला वाला एक बहुमूल्य काश्मीरी दुशाला पड़ा हुआ अपूर्व शोभा दे रहा है।

इस कमरे में चारों ओर महान् पुरुषों के चित्र लगे हुए हैं। अनेक उत्तम सूक्तियां भी बड़े बड़े काग़ज़ों पर चित्रकारी के ढंग पर छपी हुई तथा लिखी हुई उस कमरे में लगी हुई हैं। इससे पता चलता है कि गृह स्वामी अत्यन्त पवित्र धार्मिक आचार विचार वाला व्यक्ति है। कमरे में नीचे ज़री के काम वाला गलीचा बिछा हुआ है। एक ओर उसमें छोटी सी मेज़ के चारों ओर सोफ़ा सेट तथा आराम कुर्सी पड़ी हुई है। छत में झाड़ फानूस तथा अनेक प्रकार की कांच की हांडियां अत्यधिक शोभा देती हुई गृहस्वामी के वैभव को प्रकट कर रही हैं। एक ओर दो तीन शीशे की अलमारियां रक्खी हैं, जिनमें वेष्टन में बँधे हुए कुछ धार्मिक ग्रन्थ रखे हैं। एक अलमारी में छपे हुए राजनीतिक तथा सामाजिक ग्रन्थ भी रखे हुए गृहस्वामी के विशाल ज्ञान तथा साहित्य प्रेम का परिचय दे रहे हैं। मेज़ के ऊपर एक सुन्दर मेज़पोश बिछा हुआ है, जिसके ऊपर ताजे फूलों का एक गुलदस्ता अपनी भीनी तथा मीठी सुगन्धि से उस सारे कमरे को सुगन्धित कर रहा है। इस समय उस कमरे में बालक के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं हैं। बालक गहरी नींद में सो रहा है, किन्तु हाथ पैर हिलाने के कारण दुशाला उसके मुख पर से उतर गया है। खिड़की की ओर से सूर्य की किरणें आकर बालक के ऊपर पड़ रही हैं, जिनके ताप से बालक की नींद बीच बीच में उचट जाया करती है। इसी समय एक काले रंग का सर्प कमरे में आता हुआ दिखलाई दिया। सर्प मणिबंध के जैसा स्थूलकाय था। सर्प ने आकर एक बार उस कमरे में फन फैला कर चारों ओर देखा। जब उसको कमरे के निर्जन होने का विश्वास हो गया तो वह धीरे धीरे पलंग पर चढ़ कर धीरे से सिरहाने की ओर इस प्रकार कुण्डली मारकर बैठ गया कि उसकी आहट से बालक जाग न जावे। अब उसने बालक के

सिरके ऊपर अपने फण को ऊंचा खड़ा करके इस प्रकार फैलाया कि वह छतरी जैसा बनकर सूर्य के ताप से बालक की रक्षा करने लगा। इस प्रकार मुख पर पड़ते हुए सूर्य ताप के हट जाने से बालक की निद्रा और भी गाढ़ी हो गई। इस प्रकार भयंकर विष-धर सर्प बालक के शिर पर छत्र कर रहा था और बालक आनन्द में पड़ा हुआ सो रहा था।

इसी समय अचानक माता कमरे की ओर आई। उसने दूर से ही इस दृश्य को देखा। इस दृश्य को देखकर एक बार तो उस माता का कोमल हृदय वात्सल्यभाव से परिपूर्ण होकर कांप उठा। वह अत्यधिक आश्चर्यचकित होकर मन में विचार करने लगी—

"हे भगवन्! मैं यह क्या देख रही हूं! मेरा एकवर्षीय बालक सोहनलाल और इस सर्प के वश में! ऐसा न हो कि यह नाग बालक को दश ले। तब तो मैं कहीं की भी न रहूंगी। फिर मैं इस नाग को यहां से हटाऊं भी तो किस प्रकार? यदि इसको हटाने का लेशमात्र भी प्रयत्न किया गया तो सम्भव है कि काटने की इच्छा न होते हुए भी यह चिढ़कर बच्चे को काट ले। अस्तु इस समय तो सिवा इसके और कुछ उपाय नहीं है कि मैं यहीं खड़ी खड़ी इस सर्प के हटने की प्रतीक्षा करूं।"

इस प्रकार माता लक्ष्मीदेवी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वहीं खड़ी खड़ी उस सर्प के हटने की प्रतीक्षा करने लगी। उसको यह देखकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि जिस प्रकार बीन बजने पर सर्प प्रसन्न होकर खड़ा २ झूमने लगता है और जिधर जिधर बीन घूमती जाती है उधर उधर ही वह अपने फन को फैलाता

जाता है, उसी प्रकार जिधर जिधर बालक का मुख घूमता है उधर उधर ही सर्प अपने फण को फैलाए हुए बालक के सिर पर अपना साया करता जाता है। इस दृश्य को देखकर माता लक्ष्मीदेवी अपने मन में फिर इस प्रकार विचार करने लगी—

"सुना जाता है कि जिस किसी के शिर पर विषधर सर्प अपना फण फैलाकर छत्र करता है, वह अवश्य सम्राट् बनता है। इस बालक के गर्भ में आते समय जो मुझे स्वप्न हुआ था अथवा गर्भावस्था में जो मुझे दोहला हुआ था वह सब इस बालक के अलौकिक प्रभाव को प्रकट करते हैं। उस गर्भ के प्रभाव से महामारी हट गई थी। उन दिनों मेरे मन में सदा यह भावना रहती थी कि मैं अलौकिक प्राणीमात्र के हितकारी कुछ अद्भुत नूतन कार्य करूं। इन सब घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि यह बालक एक महान् पुरुष बनेगा। नूरजहां तथा मल्हारराव होल्कर के शिर पर भी इसी प्रकार सर्प ने छत्र किया था, जिससे नूरजहां एक भिखमंगे पथिक की कन्या होकर भी भारत की ऐसी सम्राज्ञी बनी जो सारे साम्राज्य का संचालन करती थी। उसी के प्रभाव से मल्हारराव होल्कर एक गडरिये का पुत्र होते हुए भी इन्दौर का महाराजाधिराज बन गया। फिर भी सर्प सर्प ही है। इसका क्या विश्वास ! न जाने कब उसके पूर्व संस्कार जाग उठें और वह बालक का अहित कर बैठे। अस्तु हे नागराज ! मैंने बालक के प्रत्यक्ष पुण्य को देख लिया, जिसके प्रभाव से तुम्हारे जैसा जन्मजात क्रूर स्वभाव वाला प्राणी भी उसका अनुचर बन कर सौम्य भाव से उसके ऊपर सजीव छत्र बन रहा है। इस समय बालक के कुन्दनमय सुडौल तेजस्वी मुख पर आपके कृष्ण वर्ण फण का छत्र ऐसी शोभा उत्पन्न कर रहा है कि उसे देख कर मेरा मन विशेष रूप से

मुग्ध हो रहा है। फिर भी नागराज ! इस दृश्य से मेरे कोमल हृदय में भयजनित विह्वलता बढ़ती जाती है। इसलिये कृपा कर अब आप इस फण रूपी छत्र को दूर हटा कर मेरे हृदय की व्याकुलता को दूर करो और यहां से चले जाओ।"

माता लक्ष्मी देवी इस प्रकार मन ही मन प्रार्थना करके चुपचाप इस दृश्य को फिर देखने लगीं। अचानक सांप ने अपने फण को समेट कर अपनी कुण्डली में रख लिया। फिर उसने धीरे धीरे पलंग से नीचे उतरना आरम्भ किया। माता लक्ष्मी देवी ने उसे पलंग से उतर कर नीचे आते हुए तो देखा, किन्तु फिर वह सर्प ऐसा अदृश्य हुआ कि वह यह बिल्कुल न जान सकीं कि सर्प किधर गया। वह तो उस विशाल भवन के अन्दर अदृश्य होकर एकदम ग़ायब हो गया।

सर्प के चले जाने से माता के हृदय में ऐसा भारी हर्ष हुआ कि उसका वर्णन लेखनी द्वारा नहीं किया जा सकता। वह तुरन्त दौड़ कर बालक के पास आई और उसे प्रफुल्लित नेत्र द्वारा अनिमेष दृष्टि से देखने लगीं। उन्होंने बालक के जागने की भी प्रतीक्षा न की और उस सोते हुए को ही उन्होंने उठा कर अपनी गोद में ले लिया। फिर वह उसको गोद में लिये २ शाह मथुरादास जी के पास आई और इस प्रकार कहने लगीं

"आज तो मैं ने एक ग़जब का दृश्य देखा। आज वास्तव में मैं ने इस बालक का ऐसा भारी चमत्कार देखा कि एक अत्यन्त भयंकर तथा स्थूलकाय कृष्ण सर्प इसके शिर पर छत्र कर रहा था। मैं प्रथम तो इस दृश्य को देखकर एक दम घबरा गई, किन्तु फिर मैं तुरन्त यह समझ गई कि वह बच्चे को हानि पहुँचाने वाला नहीं है। फिर मैंने मन ही मन नागदेव से

चले जाने की प्रार्थना की। थोड़ी देर में ही नाग इसके ऊपर से अपने फण को हटा कर तथा चारपाई से नीचे उतर कर कमरे में अदृश्य हो गया।"

इस बात को सुनकर शाह मथुरादासजी हर्ष में विभोर हो गए। उन्होंने बालक को गोद में लेकर उसको खूब प्यार किया। फिर वह गदगद कण्ठ से अपनी धर्मपत्नी से बोले।

"हे देवी ! वास्तव में यह बालक अत्यन्त पुण्यशाली है। यह बड़ा होकर संसार में अद्वितीय विद्वान् तथा शूरवीर बनेगा और हमारे कुल के नाम को उज्वल करेगा। यह अपने भुजबल से ऐसा सम्राट् भी कहलायेगा, जिसके चरणों में बड़े बड़े राजा महाराजा भी मुकुट सहित अपने मस्तक को झुकाने में अपना सौभाग्य समझेंगे। हे देवी ! ऐसा कौन सा पिता है जो प्रत्यक्ष चमत्कार दिखलाने वाले ऐसे बालक को देखकर भी अपने आप को सौभाग्यशाली न समझे।"

६

मातृ शिक्षा

मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् वा पुरुषा वेद ।

बालक को प्रथम शिक्षा माता से मिलती है, जिससे वह मातृवान् कहलाता है। फिर कुछ समझदार होने पर उसे पिता से शिक्षा मिलती है, जिससे वह पितृवान् कहलाता है। फिर अन्त में उसको आचार्य से शिक्षा मिलती है, जिससे वह आचार्यवान् कहला कर पूर्ण ज्ञानी बनता है।

संगति का प्रभाव संसार में व्यापक रूप में पड़ता हुआ देखा जाता है। बालकों पर तो यह प्रभाव और भी अधिक मात्रा में पड़ता है। यदि माता विदुषी हो तो वह अपने बालक को योग्य से योग्य बना सकती है, किन्तु यदि वह अयोग्य तथा मूर्ख हो तो वह अपने पुत्र को अधम से अधम भी बना सकती है। वास्तव में माता का प्रभाव पुत्र पर पिता की अपेक्षा भी अधिक पड़ता है, क्योंकि बालक की आरम्भिक गुरु माता ही होती है।

महाभारत में एक आख्यान मन्दालसा नामक एक महिला का आता है। मन्दालसा एक बहुत बड़े राजा की रानी थी। दोनों पति पत्नी बड़े अच्छे विद्वान् थे। एक बार मन्दालसा के

पति ने मन्दालसा को गर्भवती देखकर कहा कि
"मैं इस संतान को उत्तम क्षात्रधर्म युक्त वीर पुत्र बनाऊंगा।"

मन्दालसा को अपने पति के इस कथन में अभिमान की गन्ध आई। उसने अपने पति से कहा कि—

"नहीं, मैं तो इस संतान को संसार त्यागी ब्राह्मण बनाऊंगी।"

इस पर उसके पति ने कहा—

"नहीं, संतान वैसी ही बनेगी, जैसी मैं चाहूंगा।"

इसपर मन्दालसा बोली—

"नहीं, संतान मेरी इच्छा के अनुसार बनेगी।"

इस प्रकार दोनों पति-पत्नी अपने २ निश्चय की एक दूसरे को सूचना देकर चुप हो गए।

मन्दालसा ने उसी दिन से त्यागी महात्माओं के चरित्र पढ़ना तथा ज्ञान वैराग्य में समय व्यतीत करना आरम्भ किया। जब नौ मास बीतने पर मन्दालसा के पुत्र हुआ तो उसने उसको और भी त्यागमय जीवन तथा ज्ञान ध्यान की लोरियां देनी आरम्भ कीं। वह अपने पुत्र से प्रायः कहा करती थी—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि,
संसारमायापरिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं तज मोहनिद्रां,
मन्दालसा वाचमुवाच पुत्रम्॥

हे पुत्र! तू शुद्ध है, तू स्वभाव से ही ज्ञानवान् है, तू अलिप्त है और संसार की माया से रहित है। अतएव तू इस संसार को स्वप्न के समान छोड़कर मोह निद्रा से जाग जा।

मन्दालसा की इस शिक्षा का प्रभाव पुत्र पर ऐसा पड़ा कि उसका पुत्र बारह वर्ष की आयु में ही घर को छोड़कर बैरागी बन गया और उसके पिता का उसको क्षत्रिय बनाने का संकल्प धरा ही रह गया।

इसके पश्चात् मन्दालसा के पति ने फिर दूसरे पुत्र पर अपना प्रयोग करना आरम्भ किया। किन्तु जीत इस बार भी मन्दालसा की ही हुई और उसका यह पुत्र भी बारह वर्ष की आयु में सन्यासी बन गया। इस प्रकार उसने अपने छै पुत्रों को उच्चकोटि का त्यागी तथा ज्ञानी बना दिया।

जब मन्दालसा को सातवां गर्भ रहा तो उसके पति पर शत्रुओं ने चढ़ाई की, जिससे उसको राज्यवंचित होकर देश-निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। अब उसने पत्नी से हार मानकर उससे कहा—

"भद्रे ! तुम जीतीं और मैं हारा। अबकी बार तुम इस सन्तान को इतना अधिक वीर बनादो कि वह बड़ा होकर हमारे खोए हुए राज्य को शत्रुओं से फिर छीन सके।"

मन्दालसा ने अपने पति की बात स्वीकार करली और अब उसने क्षात्रधर्म तथा वीरतासम्बन्धी पुस्तकें पढ़ना तथा कार्य करना आरम्भ किया। पुत्र के जन्म लेने के उपरान्त भी वह उसको क्षात्रधर्म तथा वीरता के ही विचार देती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि उसके उस पुत्र ने बड़ा होकर शत्रुओं से युद्ध करके अपने राज्य को वापिस छीन लिया और अपने माता पिता के संकट को दूर कर दिया। इसी प्रकार जैन रामायण में भी एक कथा आती है कि पाताल लंका के राजा चन्द्रोदय की गर्भिणी विधवा महारानी अनुराधा ने किसी अन्य की सहायता

न लेकर अपने गर्भस्थ बालक को क्षात्रधर्म की ऐसी शिक्षा दी कि उसने अपने पराक्रम से अपने पितृहन्ता खरदूषण से युद्ध की तैयारी की और बाद में राम लक्ष्मण की सहायता से अपने पिता के राज्य को फिर प्राप्त किया। उस राजकुमार का नाम वीर विराध था।

इस प्रकार संतान पर माता का प्रभाव पिता की अपेक्षा भी अधिक पड़ता है। किन्तु प्रायः माताएं अपने इस गुरुतर कर्तव्य को न जानकर उसकी अवहेलना करती हुई लाड़ प्यार में बालकों में ऐसे २ कुसंस्कार भर देती हैं, कि भविष्य में वह बालक अपने जीवन से समाज तथा देश को कलंकित करने का प्रधान कारण बन जाते हैं। बालक का हृदय स्फटिक के समान स्वच्छ, श्वेत वस्त्र के समान निर्मल तथा उष्ण लाख के समान ग्रहणशील होता है। उसे जैसा भी चाहे रंगा जा सकता है तथा जैसा चाहे आकार दिया जा सकता है। इसी प्रकार बालक के कोमल तथा सरल हृदय में चाहे जैसी श्रद्धा के पाठ भरे जा सकते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर शास्त्रकारों ने माता को बच्चे का प्रथम गुरु माना है। अनेक विदेशी विद्वानों का तो यहां तक कहना है कि बालक जितनी शिक्षा माता की गोद में पाता है उतनी समस्त आयु भर में भी नहीं प्राप्त कर सकता। बालक माताका एक प्रतीक होता है। विदुषी माता का समागम किसी २ सौभाग्यशाली बालक को ही प्राप्त होता है। लोक में उसी माता को प्रशंसनीय दृष्टि से देखा जाता है जो अपने बालक को व्यवहारदक्ष बनाती है। किन्तु जो माता अपने बच्चों के अन्तःकरण में धर्म के बीज बोए, उसे आत्मा तथा परमात्मा का भान कराए, उसको पुण्य पाप के भेद को बतलाकर उसके हृदयमें अपने आत्मा तथा समाज का कल्याण

करने की भावना भरे, वह तो लौकिक तथा लोकोत्तर दोनों ही दृष्टियों से अत्यधिक प्रशंसनीय मानी जाती है। माता लक्ष्मी-देवी भी एक इसी प्रकार की माता थी। वह अपने पुत्र सोहनलाल को बीमारी की अवस्था में भी अनेक प्रकार की उत्तम शिक्षाएं दिया करती थी, जिनके प्रभाव से उस बालक की भावनाएं दिन प्रति दिन पवित्र से पवित्रतर बनती जाती थीं।

आश्विन मास में वर्षा की समाप्ति पर प्रायः मच्छर बढ़ जाते हैं। इससे प्रायः सभी स्थानों में मलेरिया ज्वर का प्रकोप बढ़ जाया करता है। इस समय हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी की आयु छै वर्ष की हो गई है। मच्छरों के कारण वह भी मलेरिया ज्वर से पीड़ित हैं और अपने विशाल भवन में ज्वर के कारण एक पलंग पर लेटे हुए हैं। उनकी माता उनके पास बैठी हुई उनकी सुश्रूषा में लीन है। अचानक माता ने पुत्र से पूछा—

माता—बेटा सोहन, अब तुम्हारी तबियत कैसी है ?

सोहनलाल—माता जी, कल से तो अच्छी है, किन्तु सारे शरीर में दर्द हो रहा है।

माता—बेटा, क्या तुम यह जानते हो कि मनुष्य रोगी क्यों होता है ?

सोहनलाल—माता जी ! जो समय पर भोजन न करे, ऋतु के प्रतिकूल भोजन करे, दुर्गन्धमय स्थान में निवास करे, विषैले जन्तुओं वाले जीवों के बीच में रहे, बिना भूख के गरिष्ट पदार्थों का सेवन करे तथा स्वाद के कारण मर्यादा से अधिक भोजन करे वह अवश्य ही बीमार पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ और भी छोटे मोटे कारण हैं, जिन से मनुष्य रोगग्रस्त होकर दुःसह वेदना पाता है।

माता—बेटा, तुमने रोग के जो जो कारण बतलाए हैं वह केवल उसके निमित्त कारण हैं। अपने रोग का वास्तविक कारण यह मनुष्य स्वयं ही है।

सोहनलाल—वह किस प्रकार माता जी ?

माता—बेटा, जो व्यक्ति बारह कारणों में से किसी एक कारण का भी सेवन करता है उसे रोग आदि भयंकर दुःखों का सामना करना पड़ता है।

सोहन—माता जी, वह बारह कारण कौन २ से हैं ?

माता—बेटा, सुनो, मैं तुमको वह बारह कारण बतलाती हूं—

(१) दूसरों को दुख देना, (२) दूसरे के अन्तःकरण में शोक अथवा चिन्ता उत्पन्न करना, (३) दूसरे के जी को जलाने के लिये कोई कार्य करना, (४) दूसरे को सताना, (५) दूसरे की ताड़ना करना, (६) दूसरे को परिताप देना, अर्थात् उसे मानसिक उद्वेग आदि उत्पन्न करना, (७) दूसरे को अत्यन्त दुख देना, (८) दूसरे के अन्तःकरण में अत्यन्त शोक तथा चिन्ता उत्पन्न करना, (९) हमेशा दूसरों को जलाने के लिये ही कार्य करना, (१०) दूसरे को अत्यन्त सताना, (११) दूसरे की अत्यधिक ताड़ना करना तथा (१२) दूसरे को अत्यधिक परिताप उत्पन्न करना। इन बारह कारणों में से किसी एक का सेवन करने से आत्मा को इस जन्म में तथा जन्म जन्मान्तरों में मृगालोढ़े के समान दुःख उठाना पड़ता है।

सोहन—माता जी, मृगालोढ़े ने तो मनुष्य जन्म में भी नरक से अधिक दुःख उठाया था। किन्तु माता पिता भी तो पुत्र को मारते ताड़ते तथा रुलाते हैं, तो क्या उनको भी

ऐसे ही पाप कर्मों का बन्ध होता है ? इसके अतिरिक्त वैद्य डाक्टर भी रोगी के फोड़े आदि की चीर फाड़ करते समय उसको बहुत रुलाते हैं तो क्या उनको भी अशुभ कर्म का बंध होता है ?

माता—नहीं, उनको ऐसे अशुभ कर्म का बंध नहीं होता।

सोहन—यह किस प्रकार हो सकता है ?

माता—बेटा, जो व्यक्ति बुरी भावना से किसी का अपकार करने के लिये बारह कारणों में से किसी एक का सेवन करता है वह अशुभ कर्म का बंध करता है। किन्तु माता, पिता तथा वैद्य डाक्टर की भावना बुरी नहीं होती और वह बालक अथवा रोगी का हित ही चाहते हैं। इसलिये उनको इस विषय में अशुभ कर्म का बंध नहीं होता।

सोहन—माता जी, यह बात तो समझ में आ गई। किन्तु जो व्यक्ति हंसी मखौल में इन बारह कारणों में से किसी एक का सेवन करे तो क्या उसको भी महा पाप का बंध होता है ?

माता—हां पुत्र, उसको अवश्य महा पाप का बंध होता है। भगवान् महावीर नें कहा है कि मनुष्य हंसी में आठों कर्म भी बांधता है और सात भी।

सोहन—माता जी, ऐसा भी सुनने में आया है कि हंसी मखौल में बांधे हुए कर्म का बहुत बुरा फल मिलता है।

माता—हां, बेटा, तुम्हारी यह बात ठीक है। श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणीजी ने अपने पिछले जन्म में हँसी मखौल में एक मोरनी के अंडे रंग दिये थे, जिससे मोरनी सोलह घड़ी तक बहुत रोई। उसके फलस्वरूप रुक्मिणीजी को अपने प्रद्युम्न जैसे गुणवान् तथा भाग्यशाली पुत्र का जन्म से लेकर सोलह वर्ष

तक वियोग सहना पड़ा। अंजना सती ने अपने एक पिछले जन्म में अपनी सौत के लड़के को बारह घड़ी तक छिपा कर रक्खा था, जिससे उसे बारह वर्ष तक महा दुःख उठाना पड़ा।

सोहनलाल—माताजी, हम बालक कभी तो हँसी मखौल में एक दूसरे को बहुत रुलाते तथा कभी हैरान करते हैं, कभी किसी अन्धे की लकड़ी छिपा कर उसे दिक करते हैं, कभी किसी अपाहिज की नकल उतारते हैं तो क्या उसके लिये भी हमको महादुःख उठाना पड़ेगा।

माता— हां पुत्र, कर्म किसी का भी लिहाज़ नहीं करते। उनका फल तो सभी को भोगना पड़ता है।

सोहन—अच्छा माताजी! मैं आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं हँसी मखौल में भी कभी किसी को दुःख नहीं दूंगा और न किसी को हैरान करूंगा।

माता—शाबाश बेटा, तुमको ऐसा ही बनना चाहिये। यदि तुम अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहोगे तो अत्यधिक सुख पाओगे।

इस प्रकार माता लक्ष्मी देवी अपने पुत्र सोहनलाल के ऊपर अपने धार्मिक जीवन का अमिट प्रभाव डालती जाती थी। उन्होंने अन्य मूर्ख माताओं के समान अपने लाल को केवल स्नान कराने, उसको सुन्दर वस्त्राभूषण पहिराने तथा नज़र से बचने के लिये काजर मुँह पर लगाने, भूख न होते हुए भी पौष्टिक पदार्थों को खिलाने आदि में ही अपने मातृकर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ ली थी, किन्तु वह बालक को शिशु अवस्था से ही स्थानक ले जातीं, उससे सभी साधु साध्वियों की वंदना करातीं, उसे मंगलीक सुनवातीं, घर में साधु साध्वियों के आने

पर सहर्ष उनका आदर सत्कार करवा कर उसको अपने हाथ से उनको आहार आदि दिलवाती थी। इससे सोहनलाल साधुओं के चरणारविन्द में एकाग्र चित्त से सविनय बैठ कर ज्ञान आदि सीखता था। इस प्रकार लक्ष्मी देवी ने अपने पुत्र को सभी कार्यों में पूर्ण चतुर बना दिया था।

लक्ष्मी देवी स्वयं भी बालक को धर्मात्मा पुरुषों तथा धर्म पर बलिदान होने वाली सतियों की कथाएं सुनाया करती थीं। कभी कभी वह देश, जाति तथा समाज पर सर्वस्व न्योछावर करने वाले कर्मवीर नौनिहालों की कथाएं सुनातीं तथा कभी कभी वह उसको पुण्य-पाप का फल दर्शाने वाली कथाओं को सरस तथा सरल बालभाषा में सुना सुना कर बालक की ज्ञान पिपासा को जागृत किया करती थीं।

इन्हीं सब कारणों से बालक सोहनलाल की प्रतिभा शक्ति ऐसी विशाल बन गई थी कि उसने सात वर्ष की आयु के पूर्व ही सामायिक के सम्पूर्ण पाठ, प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल तथा दोधामि आदि स्तवनों को कण्ठ याद करके सभी साधु साध्वियों तथा सम्पूर्ण श्रावक वर्ग को आश्चर्य में डाल दिया था। इससे वह सभी अपने २ हृदय में बालक की प्रशंसा किया करते थे।

बालक सोहनलाल की बाल क्रीड़ाओं में भी धार्मिक वृत्ति ही प्रकट होती थी। वह पांच वर्ष की आयु में ही अपने मुख पर साधुओं के समान मुखवस्त्रिका बांध कर तथा सभी मुहल्ले के बालकों को एकत्रित कर उनके मुख पर भी मुखवस्त्रिका बंधवाते थे। फिर स्वयं साधुओं के समान एक चौकी पर बैठ कर माता से सुनी हुई कथाएं-उन बालकों को सुनाया करते थे। सोहनलाल के मुख से उन कथाओं को सुन कर बालक अत्यंत प्रसन्न हो कर अपने अपने घर जाकर अपनी अपनी माताओं

से सोहनलाल की अत्यधिक प्रशंसा करके उनके द्वारा सुनी हुई कथाओं को अपनी माताओं तथा बहिनों को सुनाया करते थे। इस प्रकार उनके बाल-श्रोताओं की दिन प्रति दिन वृद्धि होती जाती थी।

माता लक्ष्मी देवी इस प्रकार अपने पुत्र की धार्मिक बाल लीला देख देख कर अपने हृदय में फूली न समाती थीं। पास पड़ौस की स्त्रियां भी प्राय: उनके पास आ आ कर उनको बधाई देती हुई कहा करती थीं—

"हे लक्ष्मी ! तू बड़ी भाग्यवती है कि तुझको ऐसा अनमोल लाल मिला है। भगवान् सभी को ऐसा लड़का दे। लड़का क्या है, साक्षात् ऋषि का अवतार है।"

अपने पुत्र के सम्बन्ध में ऐसी ऐसी बातें सुनकर तथा उसकी चतुर्मुखी प्रशंसात्मक बातें सुन कर उनका हृदय अत्यन्त पुलकित हो उठता था। इससे वह दुगने उत्साह से रात दिन बालक के हृदय में सदाचार के बीज बोती रहती थीं। उधर उनके द्वारा बोया हुआ बीज अनुकूल भूमि तथा वातावरण में अंकुरित होकर एक अत्यंत विशाल वृक्ष का रूप धारण करने की तय्यारी कर रहा था।

वास्तव में हमारे चरित्रनायक ने जो अपने जीवन में अपना निर्माण करके अन्य सहस्त्रों जीवों का कल्याण किया, उसका आदि कारण उनकी माता लक्ष्मीदेवी द्वारा आरम्भिक जीवन में दी हुई शिक्षा ही थी। प्रत्येक माता का यह कर्तव्य है कि वह अपने बालक का उसी प्रकार निर्माण करे, जिस प्रकार माता लक्ष्मीदेवी ने सोहनलाल को बनाया था।

७

विद्यारम्भ

संपइसुहकारण कम्मवियारण,
भवसमुद्दतारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्सभि सत्तपयस्सभि,
सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥

जो सम्पत्ति तथा सुख की कारण, कर्मों को नष्ट करने वाली, संसार रूपी समुद्र से तार कर इस योग्य बना देती है कि वह औरों को भी तार सके, स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाली सत्व की प्रकाशक उस जिनवाणी को मैं नमस्कार करता हूं।

आत्मा अनन्त ज्ञान का भंडार है, किन्तु इसका वह ज्ञान ज्ञानावरणी नामक कर्म के आवरण से ढका रहता है। इस संसार में आकर यह जीव जो कुछ धन, सम्पत्ति, बल, सामर्थ्य आदि सत् तथा असत् उपायों द्वारा प्राप्त करता है वह सब शरीर छूटने पर यहीं पड़े रह जाते हैं। दूसरे जन्म में साथ नहीं जाते। किन्तु इस जन्म में प्राप्त की हुई विद्या अगले जन्म में साथ जाती है और प्रकट होने का निमित्त प्राप्त होते ही प्रकट हो जाती है। इसी लिये विद्वानों ने विद्या प्राप्त करने को धन प्राप्त करने से कम महत्वपूर्ण नहीं माना है। जैसा कि पञ्चतंत्र में कहा गया है—

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थश्च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत ॥

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह विद्या तथा धन को प्राप्त करने के लिये अपने को कभी वृद्ध न होने वाला तथा अमर मान ले। (क्योंकि ऐसा मान लेने से विद्या तथा धन प्राप्त करने में उत्साह बना रहेगा)। किन्तु धर्म का आचरण यह समझ कर करे कि मृत्यु ने आकर मेरे केशों को पकड़ लिया है। (क्योंकि पुरुष अन्त समय में अवश्य ही धर्माचरण करना चाहता है)।

यह पीछे बतला दिया गया है कि बालक के गर्भ में आते ही माता की शिक्षा आरम्भ हो जाती है, जो पांच वर्ष की आयु तक चलती है। उसके पश्चात् दो तीन वर्ष तक पिता की शिक्षा चलती है। प्राचीन काल में पिता की शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता था और वह सात वर्ष की आयु तक चलती थी। अक्षरारम्भ कराना तथा अपनी मातृभाषा का लिखने पढ़ने योग्य ज्ञान करा देना पितृ शिक्षा के अन्तर्गत था। किन्तु उस प्राचीन काल में भी हम अक्षरारम्भ के कार्य को पिता के द्वारा न किया जाकर अन्य गुरुओं द्वारा कराया जाता हुआ पाते हैं। तौ भी यह शिक्षा पिता की देख रेख में होती थी। इस लिये भी इसे पितृ शिक्षा कहा जाता था। इसके पश्चात् बालक को विशेष अध्ययन के लिये किसी गुरुकुल अथवा तक्षशिला जैसे विश्व विद्यालय में भेज दिया जाता था। प्राचीन भारत में कभी २ योग्य गुरु स्वयं भी योग्य शिष्यों की तलाश में घूमा करते थे। जैसे कि चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त को उसके माता पिता से मांगने आदि की अनेक कथाएं हमारे शास्त्रों में भरी पड़ी हैं। अस्तु उसी परिपाटी का अनुसरण करके हमारे चरित्र नायक श्री सोहनलाल जी का सातवें वर्ष में अक्षरारम्भ किया गया।

यह संवत् १६१३ विक्रमी अथवा सन् १८५६ की घटना है। इस समय ग़दर नाम वाले भारतीय स्वतंत्रता के प्रथम युद्ध में एक वर्ष की देर थी। महाराजा रणजीत सिंह का जून १८३६ में स्वर्गवास हो जाने पर प्रथम सिक्ख युद्ध के बाद पंजाब के शासन में मार्च १८४६ से अंग्रेजों का प्रवेश हो गया था। किन्तु जनवरी १८४८ में लार्ड डलहौजी के भारत का गवर्नर जेनेरल बन कर भारत आने पर द्वितीय सिक्ख युद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद लार्ड डलहौजी ने २६ मार्च सन् १८४६ को पंजाब से अल्पवयस्क दलीपसिंह के शासन को समाप्त करके उसे ब्रिटिश भारत में मिला लिया। इसी वर्ष सन् १८४६ ईस्वी अथवा संवत् १६०६ में हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी का जन्म हुआ था। इस घटना के सात वर्ष बाद सन् १८५६ ईस्वी अथवा संवत् १६१३ में कथित ग़दर से एक वर्ष पूर्व उनका अक्षरारम्भ संस्कार किया गया। सम्बडियाल पर तो इस राज्य-परिवर्तन का जैसे कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा।

आज शाह मथुरादास जी के यहां खूब चहल पहल है। घर में चारों ओर आनन्द का समुद्र उमड़ा पड़ रहा है। नौकर चाकर आदि सभी हर्ष में भरे हुए गृहस्वामी की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। घर का एक सातवर्षीय बालक सभी के हर्ष का केन्द्र बन रहा है। इस बालक का बड़ा भाई शिवदयाल भी आज अत्यधिक प्रसन्न है। बालक सोहनलाल के शरीर का रंग कुन्दन के समान चमक रहा है। उसके मुख पर आनन्द की आभा छा रही है। उसके हृदय में अपार उत्साह है। उसके शरीर पर बहुमूल्य नूतन वस्त्र हैं। उसके एक हाथ में लकड़ी की पट्टी तथा दूसरे में दवात तथा कलम है। उसकी बगल में हिन्दी की 'बाल शिक्षा' नामक पुस्तक है। बालक ने अपने इसी रूप में

आकर माता तथा पिता को नमस्कार किया। माता ने उसको आशीर्वाद देकर प्रेम सहित उसके माथे पर विजयसूचक तिलक लगाया और उससे कहा

"हे बेटा सोहनलाल ! तुम खूब मन लगाकर ऐसी विद्या पढ़ो कि जिससे तुम देश, समाज तथा जाति में नवजीवन एवं नवीन उत्साह उत्पन्न करके अपना तथा दूसरों का कल्याण कर सको।"

यह आशीर्वाद देते समय उस माता को यह क्या पता था कि आज मैं बालक को जो कुछ आशीर्वाद दे रही हूं यह बालक भविष्य में उससे भी अधिक उन्नति करेगा।

बालक को अत्यन्त समारोहपूर्वक गाजे बाजे के साथ पाठशाला लाया गया। यहां उसकी पट्टी का पोतन किया गया और उसके साथियों को मिष्टान्न दिया गया। इस प्रकार बालक सोहनलाल अपने जीवन में प्रथम वार पाठशाला आया। उसने सोत्साह पाठशाला में प्रवेश कर अध्यापक के चरणों में अपना मस्तक झुकाया और कहा

सोहन—गुरु जी प्रणाम।

अपने नवीन शिष्य का इतना सरल तथा विनयपूर्ण व्यवहार देख कर गुरु जी का हृदय आनन्द से भर गया। उन्होंने अपने नवीन छात्र की प्रेम सहित पीठ थपथपा कर उस से कहा

गुरु जी—वत्स ! तुम शीघ्र विद्या सम्पादन करके यशस्वी बनो।

गुरु जी ने इस प्रकार शुभ आशीर्वाद देकर बच्चे को अ आ इ ई आदि पट्टी पर लिख कर दे दिये। किन्तु नवीन

छात्र ने कुछ मिनटों में ही उनकी सुन्दर सुन्दर अक्षरों में नकल करके पट्टी फिर गुरु जी को दिखलाते हुए कहा

"गुरु जी, यह तो मुझे याद हो गए। अब आप मुझे अगले अक्षर बतला दें।"

गुरु जी को बालक की ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसकी तख्ती पर अगले अक्षर लिख दिए और उसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक सावधानी से पढ़ाने लगे।

बालक ने अपनी तीव्र बुद्धि के बल पर कुछ ही दिनों में वर्णमाला को समाप्त कर लिया, जिस से गुरु जी अत्यन्त प्रसन्न होकर बालक की तीक्ष्ण बुद्धि की प्रशंसा करने लगे तथा अन्य छात्रों से बोले

"लड़कों, तुमको भी इस सोहनलाल के समान होशियार बनना चाहिये।"

बालक सोहनलाल केवल बुद्धिमान् ही नहीं, वरन् महान् विशाल हृदय भी था। वह अपने कमजोर सहपाठियों को पढ़ाया भी करता था और उनके पठन कार्य में पूरी सहायता दिया करता था।

उसके सहपाठियों में जो दरिद्र होते उनको तथा पीड़ित विद्यार्थियों को वह समय समय पर कापियां, पुस्तकें, स्लेट, कलम, दवात तथा वस्त्र आदि प्रसन्नतापूर्वक दे दिया करता था। खान पान की वस्तुएं जो कुछ वह घर से पाठशाला ले जाता अपने सहपाठियों में बांट कर खाया करता था। माता पिता से समय समय पर उसे खर्च के लिये जो पैसे मिला करते थे, उन्हें वह स्वयं खर्च न करके अपने सहपाठियों को दे दिया करता था।

अपने इन्हीं गुणों के कारण बालक सोहनलाल कुछ ही मास में अपने अध्यापक तथा सभी सहपाठियों का प्रियपात्र बन बैठा। साथ ही वह अपने बुद्धिबल तथा अनेक सद्गुणों के कारण सफलता पर सफलता प्राप्त करने लगा।

बालक सोहनलाल ने शीघ्र ही 'हिन्दी बाल शिक्षा' को समाप्त करके दूसरी पुस्तक पढ़नी आरम्भ की। कुछ ही वर्षों के परिश्रम के बाद उसकी हिन्दी तथा हिसाब में बहुत अच्छी गति हो गई।

८

पितृ शिक्षा

माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये, हंसमध्ये बको यथा ॥

जो माता पिता अपनी संतान को शिक्षा नहीं देते, वह अपनी संतान के शत्रु होते हैं। वह सभा में उसी प्रकार अच्छे नहीं लगते, जिस प्रकार हंसों में बगुला।

संसार में पिता पुत्र का वार्तालाप तो नित्य होता ही रहता है, किन्तु उन बातों में प्रायः सारभूत तत्त्व कुछ भी नहीं होता। यदि बालक छोटा हो तो पिता उसको खिलौना समझ कर उससे अपना मन बहलाते हैं अथवा उसका मन बहलाते हैं। अतएव इस प्रकार के वार्तालाप में उपहास, छल कपट तथा लोभ की वृद्धि करने वाली बातें ही अधिक होती हैं। यदि बालक बड़ा हो जाता है तो पिता पुत्र के वार्तालाप का विषय प्रायः गृहस्थ सम्बन्धी चर्चा होती है। प्रायः पिता पुत्र के वार्तालाप में अनुकरण करने योग्य तथा प्रत्येक व्यक्ति के शिक्षा ग्रहण करने योग्य बातों का अभाव ही होता है।

वैसे प्रत्येक बालक में स्वाभाविक उत्सुकता तथा जिज्ञासा होती है। वह चाहता है कि मुझे संसार भर की वस्तुओं का

ज्ञान प्राप्त हो जावे। सभी बालक प्रथम अपने पिता को सर्वज्ञ समझ कर उनसे अनेक प्रकार के ऐसे प्रश्न किया करते हैं, जिनसे उनका ज्ञान बढ़े। किन्तु प्रायः पिता या तो ज्ञान सम्पन्न नहीं होते अथवा यदि वह पढ़े लिखे भी होते हैं तो अपने निजी कार्यों के कारण बच्चों के प्रश्नों की ओर ध्यान नहीं देते। प्रायः पिता तो अनपढ़ अथवा कम पढ़े ही होते हैं और वह अपने पुत्र के प्रश्नों पर अपनी अज्ञता को छिपाते हुए उसे झिड़क दिया करते हैं। बहुत से विद्वान् पिता भी अपने बच्चों के साथ वार्तालाप करने को समय का अपव्यय समझ कर उसे धमका कर चुप करा देते हैं। इस से बच्चे के आत्मा को भारी धक्का लगता है और अपने प्रश्नों का उत्तर न पाने से क्रमशः उसकी स्मरण शक्ति भी क्षीण हो जाती है तथा उसकी भावी उन्नति रुक जाती है। किन्तु शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् पिता अपने मंद बुद्धि बालक को भी सरल भाषा में नई नई बातें बतला कर उसकी स्मरण शक्ति बढ़ाते रहते हैं। किन्तु इस कार्य के लिये यह आवश्यक है कि पिता अपने पुत्र को सुधारने के पूर्व प्रथम स्वयं सुधरे।

नीचे की पंक्तियों में एक ऐसे ही पिता के अपने पुत्र के साथ संवाद को दिया जाता है, जिसने अपने पुत्र के मन में अत्यन्त छोटी आयु में ही ऐसी शिक्षा हृदयंगम कर दी थी, जिससे बाद में वह बालक आगे चलकर एक महान् पुरुष बन कर अमर कीर्ति का सम्पादन कर सका। वास्तव में जिस पितृ शिक्षा का वर्णन इस ग्रंथ के पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है, उसका यही वास्तविक रूप था।

लगभग एक प्रहर रात्रि जा चुकी है। लोग बाग अपने अपने कार्यों से निवृत्त होकर अपने अपने घरों को जा रहे हैं। जैन

गृहणियां अपने चक्की चूल्हे के कार्य को समाप्त कर चुकी है। अजैन गृहणियां भी कुछ तो अपने अपने परिवार वालों को भोजन करा चुकी हैं और कुछ भोजन कराने की तयारी में हैं। शाह मथुरादासजी तो दिवाभोजी थे हीं। अतएव वह तो भोजन कभी का समाप्त कर एक बार अपनी दूकान पर और भी हो आए हैं। इस समय वह अपने सजे सजाये कमरे में एक आरामकुर्सी पर बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं। उनके चेहरे से गम्भीरता तथा बुद्धिमत्ता प्रकट हो रही है। इसी समय एक बालक ने कमरे में प्रवेश किया। बालक अत्यन्त स्वस्थ, सुडौल तथा सुन्दर था। उसकी आयु लगभग सात वर्ष की थी। उसने आते ही पिता मथुरादास जी के चरणों में अपना मस्तक झुका कर प्रणाम किया। पिता ने भी प्रेमपूर्वक उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुये उसे उठाकर अपनी गोद में बिठला लिया। इसके पश्चात् उन्होंने उससे पूछा—

पिता—बेटा सोहन! तुम्हारा अपनी पाठशाला में मन तो लगता है?

सोहन—हां, पिताजी! मेरा तो वहां खूब मन लगता है?

पिता—बेटा, तुम्हारे शिक्षक कौन हैं?

सोहन—एक विद्वान्, गुणी, सच्चरित्र तथा बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं।

पिता—उनके बोलने की शैली तथा उनका चाल चलन कैसा है?

सोहन— उनकी वाणी अत्यन्त मधुर तथा सरस है। वह किसी के साथ भी बिना विचारे अविवेक से नहीं बोलते। वह स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर हैं। वह किसी को नीचा दिखलाने

की इच्छा नहीं रखते। जब वह बोलते हैं तो सुनने वाले का हृदय उनके प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण हो जाता है। वह किसी का भी न तो अपमान करते हैं और न उपहास। वह इस प्रकार की सुन्दर नीतिमय शिक्षा देते हैं, जिसे हम भली प्रकार समझ सकें।

पिता—बेटा, क्या तुम यह बतला सकते हो कि तुम वहां किस लिए जाते हो ?

सोहन—क्यों नहीं पिताजी ! आप मुझे वहां विद्वान् बनाने तथा व्यवहार नीति का सम्यक् प्रकार से ज्ञान कराने के लिये भेजते हैं।

पिता—यदि तुम्हारे शिक्षक सदाचाररहित होते तो क्या होता ?

सोहन—तब तो बहुत ही बुरा होता। हम व्यवहारकुशल तथा सदाचारी बनने के स्थान पर अविवेकी, सदाचारहीन, उद्दण्ड तथा उच्छृंखल बनते।

पिता—अच्छा बेटा ! इस दृष्टांत से हम तुमको एक उत्तम शिक्षा देते हैं। यह बात स्मरण रखो कि जिस प्रकार संसार में सफलता प्राप्त करने के लिये व्यवहार नीति का ज्ञान आवश्यक है उसी प्रकार अगले जन्म में उत्तम गति प्राप्त करने के लिये धर्म तत्व तथा धर्म नीति का ज्ञान प्राप्त करना भी परम आवश्यक है। जिस प्रकार सदाचार की शिक्षा से व्यवहार नीति का ज्ञान होता है, उसी प्रकार परभव श्रेयस्कर धर्म नीति का सम्यक् ज्ञान सर्वश्रेष्ठ गुरु से ही प्राप्त होता है।

सोहन—पिता जी ! इन दोनों में कितना अन्तर है ?

पिता—व्यवहार की शिक्षा तथा धर्म शिक्षा इन दोनों में बड़ा भारी अन्तर है। व्यवहार शिक्षा बिल्लौर तथा कांच के टुकड़े के समान है, किन्तु धर्म शिक्षा अमूल्य कौस्तुभमणि के समान है।

सोहनलाल—पिताजी! आपका कथन यथार्थ हैं। धर्म शिक्षा वास्तव में व्यवहार शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण होती है। आपने मुझे अनेक बार संसार के अनन्त दुःखों के विषय में बतलाया है। उनसे पार पाने से लिये तो केवल धर्म शिक्षा ही सहायक हो सकती हैं। पिताजी! आप मुझे कृपा कर यह बतलावें कि वह श्रेयस्कर धर्म शिक्षा किस प्रकार के गुरु से मिल सकती है?

पिता—धर्म गुरु तीन प्रकार के होते हैं—

एक पत्थर के समान, दूसरे कागज़ के समान तथा तीसरे काठ के समान।

सोहन—पिताजी, कृपा कर मुझे तीनों के लक्षण पृथक् २ बतलाइये।

पिता—जो गुरु अविवेकी, दंभी, धूर्त, गुप्त रूप से पाप कार्य में लगे रहने वाला, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये खोटी शिक्षा देने वाला, त्यागी होते हुए भी गृहस्थ के समान कार्य करने वाला, आपस में फूट डलवा कर बड़ा बनने वाला तथा स्वयं को ही गुणज्ञ तथा धर्म का ठेकेदार समझता हो उस गुरु को पत्थर के समान कहते हैं। ऐसा गुरु न तो अपना कल्याण कर सकता है और न शिष्य का। वह संसार रूपी समुद्र में स्वयं डूबते हुए अपने शिष्यों तथा सहायकों को भी ले डूबते हैं।

जो गुरु ग्रहण किये हुए व्रतों को बारबार भंग करता हो, अनुकूल तथा प्रतिकूल परिषहों से चलायमान हो जाता हो, खानपान में आसक्त हो तथा भगवत् आज्ञा का बारबार उल्लंघन करता हो वह कागज के समान कहलाता है। ऐसा व्यक्ति थोड़े बहुत पुण्य का उपार्जन करके देवगति को तो प्राप्त कर सकता है, किन्तु वह अपने अथवा दूसरे के आत्मा का कल्याण साधन नहीं कर सकता। वास्तव में पत्थर तथा कागज के समान दोनों ही प्रकार के गुरु कर्मावरण की वृद्धि ही करते हैं।

जो गुरु संसार रूपी समुद्र में स्वयं नाविक बन कर शिष्यों को सद्धर्म रूपी नाव में बिठला कर भक्तजनों को पार करते हैं वह काष्ठ के समान कहलाते हैं। वह तत्व ज्ञान का भेद, स्व तथा पर का भेद, लोकालोक विचार, संसार के स्वरूप, कर्म बंध के कारण तथा उससे बचने तथा मुक्त होने के उपाय अपने आचरण द्वारा दूसरों को बतलाया करते हैं। जिस प्रकार काठ की नाव स्वयं पार होती हुई अपने अन्दर बैठे हुए पथिकों को भी सुरक्षित रूप से पार कर देती है, उसी प्रकार यह गुरु भी करते हैं। जिस प्रकार हम प्रत्येक वस्तु उत्तम से उत्तम चाहते हैं, उसी प्रकार हमको गुरु भी उत्तम से उत्तम बनाना चाहिये।

सोहनलाल—पिता जी! काष्ठ के समान उत्तम गुरु के लक्षण मुझे और भी समझा कर बतलाइये, जिससे मेरे जैसा अबोध बालक उनको अच्छी तरह समझ सके।

पिता—जिनेश्वर भगवान् की आज्ञानुसार पूर्ण रूप से स्वयं चलने तथा दूसरों को चलाने वाले, कनक तथा कामिनी से सब प्रकार से द्रव्य तथा भाव से बचने वाले, त्यागी, विशुद्ध तथा

निर्दोष आहार लेने वाले, बाईस परीषहों के विजेता, क्षमाशील, इन्द्रियों का दमन करने वाले, निरारंभी, जितेन्द्रिय, रातदिन सिद्धान्तों के ज्ञान कार्यों में लगे रहने वाले, नियम तथा धर्म की रक्षा के लिये शरीर का निर्वाह करने वाले, प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने वाले, रात्रि को आहार तो क्या जल तक ग्रहण न करने वाले, सब पर समान भाव रखने वाले, बिना किसी में राग रखे सत्य मार्ग का उपदेश देने वाले, प्राणि मात्र की रक्षा करने वाले, मुखवस्त्रिका को मुख पर धारण करने वाले, कष्टों को सहन करने वाले गुरु ही सर्व श्रेष्ठ होते हैं। बेटा! गुरुओं के यह गुण तुमको संक्षिप्त रूप में बतलाए गए है। आगम ग्रंथों में इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। जब तुम को भविष्य में उनका ज्ञान होगा तो तुमको विशेष तत्व का बोध होगा।

सोहनलाल—पिता जी! आपने संक्षेप में भी जो अत्यन्त उपयोगी तथा कल्याणकारी ज्ञान मुझे दिया है उस पर मैं निरन्तर मनन करता रहूंगा।

९

सत्य में निष्ठा

पुरिसा सच्चमेव समभिजाणाहि
सच्चेसणाए से उवट्ठिए से।
मेहावी मारं तरति सहिते
धम्ममादाय सेयं समणुपस्सति ॥

आचारांग, दूसरा अध्ययन, उद्देश्य ३

हे पुरुष ! सत्य को भली भांति जान। उसकी प्राप्ति के लिये शोध कर प्रयत्न कर। सत्य के प्राप्त होने पर उस में अपने आत्मा को उपस्थित कर अर्थात् उस पर पूर्णतया आचरण कर। जो बुद्धिमान् ऐसा करता है वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है तथा धर्म को साथ लेकर श्रेय तथा कल्याणकारी गति को प्राप्त करता है।

इस पाठ में कितना गंभीर रहस्य है। इस से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि सत्य के बिना आत्मा का कल्याण होना असम्भव है। धर्म की उत्पत्ति सत्य से होती है।

'सत्याद्धर्मो उत्पद्यते'

सत्य से धर्म उत्पन्न होता है।

जैनागमों में सत्य को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि यदि आचार्य उपाध्याय आदि अपने जीवन में एक बार भी

असत्य बोल दें तो वह आयु पर्यंत उस पद के लिये अयोग्य माने जाते हैं। सारांश यह है कि जिस जीव ने सत्य की पूर्णतया आराधना कर ली उसका आत्मकल्याण स्वयमेव हो जाता है। भर्तृहरि ने भी यही कहा है कि

सत्यं चेत्तपसा किं।

जो सत्यवादी है उसे अन्य किसी तप की आवश्यकता नहीं है।

जैनियों के आभ्यन्तर छै तपों में भी सत्य को पृथक् तप माना गया है। संसार के सभी कार्य सत्य के आधार पर चल रहे हैं। जिसके जीवन में सत्य नहीं होगा वह कभी भी महापुरुष नहीं बन सकता। आगमों तथा इतिहास का अध्ययन करने से तो यहां तक का पता चलता है कि सभी महापुरुषों का जीवन बाल्यावस्था से ही सत्य के रंग में रंगा होता है। हमारे चरित्रनायक की बाल्यावस्था से भी इसी बात का समर्थन होता है। उन्हें बाल्यावस्था में ही सत्य से अत्यधिक प्रेम था। सत्य के प्रति उनका प्रेम उनकी बाल्यावस्था से लेकर उनके आत्मा में अन्त तक चिर-स्थायी रहा, वरन् आयु के साथ साथ उसमें दिन प्रति दिन वृद्धि ही होती गई।

श्री सोहनलाल जी का अक्षरारम्भ हुए कठिनता से एक वर्ष बीता था कि संवत् १६१४ को आश्विन शुक्ल पक्ष में एक दिन सोहनलाल जी अपने बाल सखाओं के साथ कुछ खेल खेल रहे थे। खेल खेल में गेंद की आवश्यकता पड़ी। सोहनलाल ने अपने बाल सखाओं से कहा—

"तुम तनिक बाहिर ठहरो। मैं घर के अन्दर से गेंद लेकर अभी आता हूं।"

अस्तु वह बाल सखाओं को बाहिर खड़ा करके घर में गेंद लाने चले गए। सोहनलालजी बालक तो थे ही, अतएव बाल सुलभ

चंचलता उनमें कम नहीं थी। बालसखाओं के बाहिर खड़े होने के कारण उनके मन में कुछ जल्दीबाजी भी थी। फिर उनको स्वयं भी खेल की उमंग कम नहीं थी। अतएव ऐसी अवस्था में किसी भी बालक द्वारा व्यवस्थित ढंग से कार्य नहीं किया जा सकता। बालसखाओं से छूट कर वह दौड़ते हुए घर के अन्दर पहुंचे। उस समय कमरे में कोई भी नहीं था और गेंद अलमारी में रक्खी हुई थी। अतएव अलमारी में से शीघ्रतापूर्वक गेंद निकालते हुए उनके हाथ से अलमारी में से निकल कर एक ऐसा अमूल्य दर्पण गिर कर टूट गया, जिस से पक्षाघात अथवा अधरंग रोग ठीक हो जाता था। इसीलिये उस शीशे को पक्षाघात दर्पण (Paralysis Glass) कहा जाता था। यदि किसी पक्षाघात वाले रोगी का मुख टेढ़ा हो जाता था तो उस दर्पण को दिखलाने से उनका मुख ठीक हो जाता था। वह गेंद के पास उसी अल्मारी में रक्खा हुआ था। शीशा जल्दीबाजी में उन से भूमि पर गिर पड़ा और गिरते ही टूट गया। सोहनलाल जी उस शीशे के टुकड़ों को वहीं एकत्रित करके बिना किसी से कुछ भी कहे हुए अपने बालसखाओं के पास चले आए और खेल में लग गए।

कुछ समय के उपरांत जब शाह मथुरादास जी कमरे में आए तो उन्होंने उस दर्पण के टूटे हुए टुकड़ों को देखा। इस घटना से उनको अत्यधिक खेद हुआ।

दर्पण वास्तव में इतना मूल्यवान् था कि इस महान् वैज्ञानिक युग में भी वैसा दर्पण मिलना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। फिर यह तो अब से लगभग सौ वर्ष पूर्व की घटना है। उस समय तो ऐसी वस्तु का प्राप्त होना अत्यन्त ही कठिन समझा जाता था। वह दर्पण भी उनको किसी अंग्रेज

कैप्टेन से मिला था, जिसे उन्होंने सेना सहित किसी भारी आपत्ति में पड़ जाने पर सहायता दी थी। उसी से प्रसन्न होकर उस कैप्टेन ने शाह मथुरादासजी को वह शीशा दिया था। शाह मथुरादासजी ने दर्पण टूटने के विषय में घर के सभी नौकर चाकरों से पूछा कि दर्पण किसने तोड़ा है। किन्तु बेचारे नौकर क्या उत्तर देते? उन्हें तो उसके विषय में कुछ भी पता नहीं था। उन्होंने शाह मथुरादास जी से केवल यही कहा कि इस विषय में उनको कुछ भी पता नहीं। उन्होंने दर्पण के विषय में सब प्रकार से अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। यद्यपि शाह मथुरादास जी का स्वभाव अत्यन्त हँसमुख था और वह सदा प्रसन्न रहा करते थे, किन्तु नौकरों के उस उत्तर से उनके नित्य प्रसन्न रहने वाले मुख पर तनिक क्रोध की झलक आ गई, जिससे उनका मुखमण्डल क्रोध से लाल हो गया। उनके नेत्र भी क्रोध से लाल हो गए, जिन्हें देखकर घर के नौकर चाकर सब थर थर कांपने लगे और वह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर दीनताभरी दृष्टि से मथुरादासजी की ओर देखने लगे।

शाह मथुरादासजी नौकरों से शीशे के विषय में पूछताछ कर ही रहे थे कि तब तक बाहिर से सोहनलालजी ने भी आकर कमरे में प्रवेश किया। इस दृश्य को देखकर उस बुद्धिमान बालक को यह समझने में तनिक भी देर नहीं लगी कि यह सारा कांड उसी दर्पण के कारण हो रहा है। सोहनलालजी मन में सोचने लगे "कि पिताजी इस समय क्रोध में हैं। यदि मैं इन से इस समय सही सही घटना कहूंगा तो निश्चय से वह मेरे ऊपर अधिक कुपित होंगे और यह भी सम्भव हैं कि क्रोध के वेग में मेरे दो चार थप्पड़ भी लगा दें। किन्तु यदि मैं चुप रहा तो न

जाने इन निर्दोष नौकरों को किस आपत्ति का सामना करना पड़े। यदि मैं अपने अपराध के कारण उनको दण्ड मिलते देखूं तो यह महान् अन्याय होगा, वरन् महा पाप होगा। पूज-नीय माताजी तथा परम पूजनीय गुरुजी ने भी मुझे बार बार यही शिक्षा दी है कि "वत्स! भूल कर भी अपने अपराध को दूसरे पर मत डालो। जो व्यक्ति भय के वशीभूत होकर अपना अपराध दूसरों पर डालता है उसे शुद्धाचरण होते हुए भी उसी प्रकार मिथ्या कलंक लग कर तीव्र अपमानित होते हुए दुःख उठाना उड़ता है, जैसा परम सती सीता तथा अञ्जना देवी को उठाना पड़ा था।"

इस प्रकार विचार करके उनका पापभीरु आत्मा अपने पिता जी को उसी समय सत्य घटना सुनाने के लिये व्याकुल हो उठा। उन्होंने आगे बढ़कर नम्रतापूर्वक मन्द स्वर से अपने पिता जी से कहा।

"पिता जी! आप इन निर्दोष नौकरों को कुछ भी न कहें। इसमें इनका लेशमात्र भी दोष नहीं है।"

पिता—सोहनलाल! क्या तुम बतला सकते हो कि यह किसका अपराध है?

सोहन—जी, मैं बतला सकता हूं। अपराधी आपके सामने खड़ा है। आप उसे जो चाहें कठोर से कठोर दंड दें।

यह सुनकर शाह मथुरादास जी ने आश्चर्यचकित होकर सोहनलाल जी से कहा—

पिता—मैं तो यहां नौकरों के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं देखता।

सोहन—पिता जी, क्या नौकर ही सदा अपराध करते हैं?

क्या हमसे कभी भूल नहीं होती ? आज मैं अलमारी में से गेंद निकाल रहा था कि शीघ्रता के कारण दर्पण मुझसे गिर गया और गिरते ही टूट गया। आप इस अपराध का जो चाहें मुझे दंड दें, जिससे मैं भविष्य में ऐसा अपराध न करूं।

पुत्र की इस प्रकार की निर्भीकता, सत्यप्रियता तथा दृढ़ता देखकर शाह मथुरादास जी का क्रोध पानी पानी होगया और उनको क्रोध के स्थान पर ऐसी भारी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने सोहनलाल को गोद में उठा कर उसे प्यार करते हुए कहा—

"बेटा, यदि तुममें यह गुण सदा इसी प्रकार बने रहे तो ऐसे २ सहस्र दर्पणों के टूट जाने पर भी मुझे दु:ख न होगा। मुझे तो दर्पण की अपेक्षा सत्यनिष्ठ बेटा अधिक प्यारा है।"

नौकर चाकर तो सोहनलाल जी के इस व्यवहार से एक दम अवाक् रह गए।

१०

पवित्र हास्य

तुलसी निज मन की बिथा, कबहूं कहिये नांहि ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लेहैं ताहि ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि अपने मन का कष्ट किसी को भी नहीं बतलाना चाहिये, क्योंकि उसको सुनकर सब लोग हँसी उड़ाते हैं, उसमें भाग लेकर बांटता कोई नहीं ।

किन्तु नीचे एक ऐसी घटना दी जाती है, जिसमें किसी के कष्ट को बिना सुने ही उसके साथ पवित्र हास्य करके उसके कष्ट को दूर किया गया है ।

बसन्त पञ्चमी का दिन है । सरदी कड़ाके की पड़ रही है, जिससे दांत कट-कट बोलने लगते हैं । किन्तु बसन्त के कारण लोग सरदी पर ध्यान न देकर अत्यन्त प्रसन्न दिखलाई दे रहे हैं । इस लिये बाजार में आज जिधर देखो, उधर अद्भुत शोभा दिखलाई दे रही है । बालिकाएं तथा युवतियां बसंती साड़ी पहिने तथा गले में बसंती दुपट्टे डाले, सरसों के पुष्पहार गले में पहिने प्रमुदित मन से इधर उधर घूम रही हैं । पुरुषों में भी जिधर देखो उधर बसंती पगड़ी दिखलाई दे रही है । बालक भी सिर पर बसंती टोपी पहिने उछल कूद मचा रहे हैं । अनेक

बालक बसंती कुरते भी पहिने हुए हैं। विदेशी सभ्यता के सामने स्वदेशी सभ्यता को तुच्छ समझने वाले जेंटिलमैनों के हाथ में भी बसंती रूमाल स्थान स्थान पर दिखलाई दे रहे हैं। नगर के बाहिर तो प्रकृति देवी का सौंदर्य अपने सम्पूर्ण रूप में खिल उठा है। गेहूँ तथा चने की फ़सिलें अपने भरपूर यौवन में होने के कारण कृषकों के अतिरिक्त दर्शकों के मन को भी मुग्ध कर रही हैं। वास्तव में कृषि प्रधान भारतवर्ष का इस पूरे वर्ष का भविष्य इन्हीं फ़सिलों पर निर्भर करता है। खेतों में फूली हुई सर्सों दर्शकों के मन को सब से अधिक आकर्षित करके अपनी सुगन्धि से सब के मन को मोह रही है। शिशिर ऋतु में जिन वृक्षों के पुष्प पत्र झड़ गए थे वह भी बसंतराज के आगमन के उपलक्ष में नवीन रस, नवीन पत्तों तथा नवीन पुष्पों से सुसज्जित होकर ऋतुराज बसंत का स्वागत करने को तैयार खड़े हैं। स्कूल के बालकों की तो प्रसन्नता के क्या कहने। उनको तो आज बसंत की छुट्टी के कारण खेतों की सैर करने का अवसर मिल गया है। सभी लड़के दो दो चार चार की टोलियां बना कर खेतों में घूम रहे हैं। इन में से कोई सरसों के फूल तोड़ रहा है तो कोई आम की मंजरी को कान में लगाए हुए है। कोई कोई बालक वृक्ष के पत्तों को व्यर्थ ही तोड़ तोड़ कर फेंकता हुआ अपने बाल सुलभ अज्ञान का परिचय दे रहा है। ऐसे समय दो बालक एक कृषक के खेत में कुएं के पास खड़े हैं। दोनों के शिर पर बसंती टोपी चमक रही है। शरीर पर भी बसंती रंग की कमीज होने के कारण उनकी सुन्दरता और भी खिल उठी है। दोनों बालक प्रकृति का सौंदर्य देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं। पास में कृषक का एक कंबल पड़ा हुआ है, जो फटा हुआ तथा कई स्थानों पर सिला हुआ है। उस में भिन्न-जातीय वस्त्रों की अनेक थिकलियां भी लगी हुई अपने स्वामी की

दरिद्रता का गला फाड़ फाड़ कर बखान कर रही हैं। कंबल के पास एक जोड़ा जूता भी रखा हुआ है, जो उस कंबल की पूर्णतया समानता कर रहा है। कारण कि जूता भी पर्याप्त टूटा होने के कारण अनेक स्थानों पर सिला हुआ है। कृषक वहां से कहीं बहुत दूर खेत में भ्रमण करता हुआ फसिल को देख देख कर प्रसन्न हो रहा है और शेखचिल्ली के समान व्यर्थ के मनसूबे बांधता जाता है। वह लड़कों के नेत्रों से बहुत दूर है, जिससे न तो लड़के उसे देख पाते हैं और न उसको ही लड़कों की उपस्थिति का कोई भान है। उस समय एक लड़के ने दूसरे से कहा—

"मित्र सोहनलाल ! मेरी सम्मति में तो कृषक के साथ कुछ हास्य करना चाहिये। यदि तू कहे तो मैं यह कंबल या जूता कहीं छिपा दूं और छिप कर देखें कि यह क्या कहता है तथा क्या करता है।"

सोहनलाल—"मित्र धारी ! मुझे तुम्हारा प्रस्ताव इस रूप में पसंद नहीं है। मैं ने अपनी माता जी तथा पूज्य पुरुषों से सुना है कि दूसरे की हानि करके अथवा उसे परेशानी में डाल कर उसे आश्चर्यचकित करके हंसना बड़ा भारी पाप कर्म है तथा इस कार्य से अशुभ कर्म का बंध होता है। इस प्रकार हंसी हंसी में बांधे हुए कर्म रोते रोते हुए भी छुटने कठिन पड़ जाते हैं। यदि तुम को किसी का उपहास ही करने का शौक हो तो तुम उसको इस प्रकार लाभ पहुंचाओ कि उसको लाभ पहुंचाने वाले का किसी प्रकार भी पता न लग सके। इस प्रकार तुम उसको आश्चर्य में डाल कर फिर उस पर चाहे जितना हंसो। यदि तुम उसका कंबल या जूता छिपा दोगे तो प्रथम तो तुम को यहीं प्रत्यक्ष रूप से गालियां तथा अपशब्द सुनने पड़ेंगे, किन्तु

यदि तुम उसका लाभ करोगे तो तुमको सच्चे अन्तःकरण से उसका शुभ आशीर्वाद सुनने को मिलेगा। यदि तुम्हारे मन में किसान को आश्चर्य में डालने की बहुत इच्छा हो तो लो मैं तुमको यह पांच रुपये देता हूं। तुम उनको लेकर किसान के जूतों के अन्दरूनी अंतिम भाग में इस प्रकार रख दो कि एक में दो रुपये तथा दूसरे जूते में तीन रुपये रखे जावें। फिर छिप कर देखो कि क्या तमाशा होता है।"

मित्र की यह बात सुन कर धारी खुशी से उछल पड़ा और कहने लगा

"भाई, तुम्हारी यह बात बिल्कुल ठीक है। अच्छा यही करके देखें।"

यह कह कर धारी ने सोहनलाल के हाथ से वह पांच रुपये लेकर जूते में इस प्रकार रखे कि एक में दो तथा दूसरे जूते में तीन रुपये आ गए। इस के पश्चात् दोनों मित्र कृषक की हैरानी देखने के लिए पास की झाड़ियों में छिप गए।

धीरे धीरे दोपहर ढला और कृषक को भूख सताने लगी। वह खेत से लौट कर कुएं पर आया और खाली पेट ही जल पीकर घर जाने की तय्यारी करने लगा। उसने उस फटे हुए कंबल को कंधे पर डाल लिया और जूता पहिनने के लिये जूते में पैर डाला। किन्तु जूते में पैर डालने पर उसे किसी कठोर वस्तु का स्पर्श हुआ। उसने उसे कोई ठीकरी समझ कर पैर के अंगूठे से जूते को पकड़ कर झाड़ा तो कंकर के स्थान पर उस में से छनछनाते हुए दो रुपये निकल कर पृथ्वी पर गिर पड़े। इस से उसे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। उसका शरीर हर्ष से पुलकित हो उठा। उसने शीघ्रतापूर्वक उन रुपयों को उठा कर मस्तक से लगाया तथा हर्षपूरित नेत्रों से दूसरे जूते में पैर

डाला तो उसके अंदर से तीन रुपये निकल कर पृथ्वी पर गिर पड़े। अब तो उसे और भी अधिक आश्चर्य हुआ। वह आश्चर्यचकित नेत्रों से चारों ओर देखने लगा कि उसे कोई दिखलाई दे जावे, किन्तु उसे कोई भी नजर न आया। जब उसे कोई भी दिखलाई न दिया तो उसने उच्च स्वर से यह आवाज दी—

'अरे भाई, जिसने मेरे साथ हंसी की हो वह आकर अपने रुपये ले जावे'। जब तीन बार बुलाने पर भी कोई न आया तो वह हर्ष में विभोर होकर इस कार्य को साक्षात् ईश्वर की लीला समझ कर हर्ष से नाचने लगा। उसने आकाश की ओर दोनों हाथ जोड़ कर उच्च स्वर से कहा

"हे भगवान् ! मुझ जैसे पापी के परिवार की रक्षा करने के लिए तुम्हें स्वयं यहां तक आना पड़ा। हे प्रभो ! मैं तुम्हारे इस उपकार का बदला किस प्रकार दूंगा। भगवन् ! इन पांच रुपयों से मेरा आनन्द से दो मास तक गुजारा चल जायेगा। तब तक मेरे अपने खेत का अनाज भी तय्यार हो जावेगा।"

इस प्रकार कहते कहते कृषक के नेत्रों से हर्ष के आंसू बहने लगे। इसके बाद वह किसान सच्चा बसंत मनाता हुआ अपने सारे परिवार को यह सुसंवाद सुना कर सुखी बनाने के लिए लम्बे लम्बे पैर रखता हुआ घर की ओर चल पड़ा। घर पहुंच कर जब उसने अपने परिवार को यह समाचार सुनाया तो उसका वह सारा सरल परिवार इसको ईश्वर का कार्य समझ कर भक्तिरस में डूबकर ईश्वर का गुणानुवाद करके सच्चा बसन्त मनाने लगा।

रामधारी के मन पर तो इस घटना का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने मित्र से कहा—

रामधारी—"मित्र धन्य है तेरी बुद्धि को ! तेरे बतलाये हुये कार्य से आज हम कृषक तथा उसके परिवार के लिए तो सचमुच ही ईश्वर बन बैठे।"

यह सुनकर सोहनलाल ने उत्तर दिया।

सोहनलाल—धारी ! एक कृषक परिवार के लिए तो क्या, यदि हम सदा इसी प्रकार के कार्य करते रहेंगे तो वह दिन दूर नहीं है जब एक दिन हम सारे संसार के लिए भगवान बन जावेंगे। इसलिये मित्र, इस बात का ध्यान रखो कि किसी की हानि हँसी में भी नहीं करनी चाहिये, फिर उसको हैरान करना तो और भी बुरी बात है।

इस पर धारी बोला।

धारी—"हां मित्र, अब ऐसा ही होगा।"

इस प्रकार दोनों मित्र आपस में वार्तालाप करते हुए तथा जंगल में सच्चा बसन्त मना कर प्रसन्न मन से घर की ओर चले।

११

अद्भुत न्याय

न्यायात्पथात् प्रविचलन्ति पदं न धीराः

धीर पुरुष न्याय के मार्ग से एक पग भी नहीं हटते।

न्याय शान्ति का आधार है। न्याय के बिना देश एवं समाज में शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। जब कोई व्यक्ति अपने से अधिक बल वाले अथवा अधिक संघ शक्ति वाले व्यक्ति द्वारा पीड़ित होता है तो वह न्यायालय की शरण लेता है। किन्तु आजकल के न्यायालयों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। सब जगह घूसखोरी, पक्षपात तथा भ्रष्टाचार का बोल बाला है, जिससे अत्याचारी तथा साधनसम्पन्न व्यक्ति ही वहाँ भी सफलता प्राप्त करते हैं तथा निर्धन लोग अत्याचारों की चक्की में इस प्रकार पीसे जाते हैं कि वह फिर सदा के लिये शिर उठाना भूल जाते हैं। उनका यहां तक पतन होता है कि वह अत्याचार की धधकती भट्टी में जलते रहने में ही अपनी रक्षा समझते हैं। निर्धन का कोई साथी नहीं होता। यदि कोई उसका कभी साथ देता भी है तो साधनसम्पन्न व्यक्ति उसको निर्धन की सहायता करने से रोक देता है। न्यायालयों की दशा यह है कि वहां तथ्य का अप्रत्यक्ष निर्णय करने का अधिकार न्यायाधीशों को नहीं दिया जाता। जो कोई

भी अधिक गवाहों द्वारा बढ़िया सबूत देकर कागज का पेट भर देता है वही जीतता है। आज देश तथा समाज के लिये एक ही शैली से काम लिया जाता है कि—

'सचाई गई भाड़ में।'

वास्तव में यह दशा अत्यन्त भयंकर है। इस समय अत्याचारों के कारण चारों ओर त्राहि त्राहि मची हुई है। प्राचीन काल में न्यायालयों की शैली यह थी कि वह गुप्तचरों द्वारा असलियत का पता लगाया करते थे। कभी कभी तो न्यायाधीश लोग स्वयं रूप बदल कर जनता में जाकर असलियत का पता लगा कर न्याय किया करते थे। फिर जब वह न्याय करते थे तो वह ठीक ठीक तथा वास्तविक न्याय होता था। किन्तु आजकल केवल न्यायालय के कागजों के आधार पर ही निर्णय किया जाता है, जिन्हें प्राय: झूठे गवाहों द्वारा तय्यार किया जाता है। अनेक बार तो केवल वादी तथा प्रतिवादी के कथन मात्र से न्याय कर दिया जाता है। उस समय यह विचार नहीं किया जाता कि वादी अथवा प्रतिवादी तो केवल अपने स्वार्थ की बात ही कहेंगे।

न्यायालयों की एक शैली यह भी है कि पेशियों की तारीखों को बार बार हटा कर निर्धनों का शिकार किया जाता है। इससे अच्छों अच्छों की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है और उनको फिर अनिच्छापूर्वक अत्याचारियों के हाथों पिसना पड़ता है। पेशियां बारबार डलवा कर साधनसम्पन्न अत्याचारी साम, दाम, दंड तथा भेद द्वारा निर्धन व्यक्ति के सबूत को तोड़ देता है। इन्हीं कारणों से आज कल न्यायालयों में न्याय न होकर न्याय के नाम पर प्राय: अन्याय ही होता है। आज सबल के द्वारा पीड़ित दरिद्री न्यायालय में जाने का साहस

नहीं कर सकता। किन्तु न्यायालयों की यह दशा होते हुए भी कुछ व्यक्ति अपनी न्याय बुद्धि द्वारा ऐसा न्याय करते थे कि उनके कार्यों को सुनकर बड़े बड़े न्यायाधीश दांतों तले अंगुली दबा लेते थे। यहां लगभग ६० वर्ष पूर्व की एक ऐसी घटना का वर्णन किया जाता है, जिसमें एक नौ वर्ष के बालक ने न्याय के आदर्श को उपस्थित किया था। उस बालक ने विशेष कार्य यह किया कि उसने अपराध के कारण को ढूंढ कर अपराधी को ही नहीं, वरन् उसके अन्दर वर्तमान अपराध वृत्ति को ही सदा के लिये नष्ट करके उस घर को नरकमय दशा से निकाल कर स्वर्गमय बना दिया। इस प्रकार के बाल न्यायाधीशों की जितनी भी प्रशंसा की जावे थोड़ी है। घटना इस प्रकार है—

सम्बड़ियाल में एक मध्यम श्रेणी के गृहस्थ रहते थे, जिनका नाम गुरुदत्ता मल था। जाति से वह अरोड़ा खत्री थे। उनके चार पुत्र थे, जिनमें से दो का विवाह हो चुका था। उनके यहां कटपीस के कपड़े की दूकान होती थी। उस दूकान की आय से उनका कार्य आनन्दपूर्वक चल जाता था। इन गुरुदत्ता मल के सबसे छोटे पुत्र का नाम रामधारी था, जिसका उल्लेख इस ग्रन्थ में पीछे किया जा चुका है और जो हमारे चरित्रनायक श्री सोहन लाल जी के साथ उसी पाठशाला में पढ़ता था। रामधारी को सारे लड़के धारी नाम से पुकारते थे। धारी का स्वभाव मिलन-सार तथा चेहरा हँसमुख था। वह सीधा सादा होते हुए भी लिखने पढ़ने में खूब परिश्रम करता था, जिससे सोहनलाल जी के साथ उसकी घनिष्टता हो गई थी, जो बढ़ते २ मित्रता के रूप में परिणत हो गई।

एक बार स्कूल लगने पर सब लड़कों के आजाने पर भी रामधारी नहीं आया। बाद में वह दो घंटे बाद स्कूल पहुँचा।

उस समय उसका चेहरा उतरा हुआ था। उसकी ऐसी दशा देखकर सोहनलाल जी ने उसे एकांत में ले जाकर उससे पूछा—

सोहनलाल—धारी, आज तुम्हारा चेहरा क्यों उतरा हुआ है ? और तुम आज इतनी देरी करके स्कूल क्यों आए ?

इस पर धारी ने उत्तर दिया—

धारी—भाई, बात यह है कि आज हमारे घर बहुत झगड़ा हो गया था।

सोहन—झगड़े का कारण क्या था ?

धारी—रात्रि के समय मेरी बहिन के गले का सोने का हार चोरी होगया। हार की चोरी रात्रि के दस बजे बाद की गई है। इससे स्पष्ट है कि कोई बाहिर का आदमी घर में नहीं आया। घर में सभी से पूछ गछ की गई, किन्तु कोई भी हां नहीं भरता। घर में कई एक ने मेरा नाम भी लिया कि धारी ने ही हार की चोरी की है। किन्तु सोहनलाल, मैं तुम्हारी शपथपूर्वक यह बात कहता हूं कि हार मैंने नहीं लिया और न मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ भी पता है। अब भाई तुम्हीं कोई उपाय बतलाओ कि मेरे ऊपर लगा हुआ यह कलंक किस प्रकार दूर हो सकता है।

सोहनलाल—क्या तुम्हारे घर में कभी इससे पहिले भी चोरी हुई है ?

धारी—हां, कई बार हो चुकी है। किन्तु इतनी बड़ी चोरी अभी तक कभी भी नहीं हुई। जब से यह हार चोरी गया है, तब से तो हमारे घर में भोजन भी नहीं बना है।

सोहनलाल—धारी, तुम घबराओ मत। मैं स्कूल के बाद तुम्हारे साथ तुम्हारे घर चलूंगा। यदि हो सका तो मैं ऐसा

प्रबन्ध कर दूंगा कि भविष्य में तुम्हारे घर कभी भी चोरी नहीं होगी।

धारी को इस प्रकार आश्वासन देकर दोनों मित्र पाठशाला में पढ़ने लिखने में लग गए। स्कूल का समय समाप्त होने पर सोहनलाल रामधारी के साथ उसके घर गए। वहां जाकर उन्होंने रामधारी की माता से पूछा—

सोहनलाल—चाची जी! यदि आपको हार मिल जावे तथा भविष्य में आपके घर चोरी होना बन्द हो जावे तो आप चोर का नाम जानने का आग्रह तो न करेंगी?

इस पर धारी की माता ने उत्तर दिया—

"बेटा! ऐसी अवस्था में माल मिल जाने के बाद मुझे चोर का नाम जानने की क्या आवश्यकता है? यदि तू हार दिलवा कर हमारे घर आगे चोरी होना बन्द कर देगा तो मैं तेरे उपकार को जन्म भर नहीं भूलूंगी।

इसके पश्चात् सोहनलाल ने रामधारी की माता के सामने सबको अपने पास बुलवाया। फिर उन्होंने रामधारी की माता से कह कर सींक के कुछ तिनके मंगवाए। तिनकों के आजाने पर सोहनलाल जी ने उनके ऊपर कुछ देर तक णमोकार मंत्र पढ़ा। फिर उनके एक २ बालिश्त के टुकड़े बनाकर उन्होंने घर के प्रत्येक व्यक्ति को एक २ टुकड़ा देकर कहा—

"जिस किसी ने हार चुराया होगा, उसका तिनका एक अंगुल बढ़ जावेगा।"

सोहनलाल जी पर उस घर के सभी लोग पूर्ण श्रद्धा रखते थे। यद्यपि सोहनलाल जी अभी कुल नौ वर्ष के बालक थे, किन्तु रामधारी द्वारा उनके दुर्लभ गुणों का वर्णन सुन सुन कर

सब घर वाले उन पर श्रद्धा करने लगे थे। जिसने हार चुराया था अब उसको भय होगया कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी चोरी का पता सब को लग जावे। उसने एकांत में जाकर तिनके को नापा, किन्तु घबराहट के कारण वह उसको ठीक २ न नाप सकी। वास्तव में किसी ने ठीक ही कहा है कि—

'पापी को उसका पाप ही मार डालता है।'

उसने भय के कारण उस तिनके में से एक अंगुल तिनका तोड़ दिया। अब वह मन में सोचने लगी कि 'अब मेरी चोरी का किसी को भी पता न लगेगा।'

थोड़ी देर बाद सोहनलाल जी ने घर वालों से कहा—

"अच्छा, अब सब के सब तिनके मुझे वापिस कर दिये जावें।"

सबके तिनके मिल जाने पर सोहनलाल जी को यह समझते तनिक भी देर न लगी कि वास्तविक अपराधी कौन है। उन्होंने उसको एकांत में ले जाकर उससे कहा—

सोहनलाल—भाभी! यह बतला कि तूने ऐसा नीच काम क्यों किया? यह निश्चय है कि आज तक जितनी भी चोरियां इस घर में हुई हैं वह भी सब तूने ही की हैं। जरा मैं भी तो सुनूं कि ऐसा करने से तुझे क्या सुख मिलता है?

सोहनलाल जी के मुख से यह वचन सुनकर उस स्त्री का मुख एक दम उतर गया। वह बहुत घबरा गई। अब तो उसे चोरी करने का वास्तव में पश्चात्ताप होने लगा। वह रोते हुए सोहनलाल जी से बोली—

भाभी—मेरी सास छोटी बहू के साथ अत्यन्त प्रेम करती है और मेरे साथ नहीं करती। बस इसी डाह के मारे छोटी बहू को बदनाम करने के लिये मैं चोरियां किया

करती हूं और छोटी बहू के नाम लगवा देती हूं। भाई! यदि तू इस समय मेरी इज्जत को बचा देगा तो मैं जीवन भर तेरे उपकार को नहीं भूलूंगी।

इस पर सोहनलाल जी ने उस से कहा

सोहनलाल—यदि तू यह प्रतिज्ञा करे कि मैं भविष्य में कभी भी चोरी नहीं करूंगी और इस प्रतिज्ञा का सच्चाई से पालन करेगी तो मैं तेरी इज्जत बचा लूंगा।

इस पर स्त्री ने उत्तर दिया—

भाभी—'मैं अपने पुत्र, भाई तथा पति के शिर की शपथ-पूर्वक यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि आगे मैं कभी चोरी नहीं करूंगी।"

सोहनलाल—अच्छा यह याद रखना कि जिस दिन भी तू इस प्रतिज्ञा को तोड़ेगी मैं उसी दिन तेरा भण्डा फोड़ कर दूंगा।

भाभी—हां, यह मुझे स्वीकार है। यदि मैं अपने इस वचन से फिर जाऊं तो तुम मुझे चाहे जितनी बदनाम कर लेना। अच्छा, अब तू मुझे यह बता कि मैं हार तथा चोरी की अन्य वस्तुओं का क्या करूं ?

सोहनलाल—इन सब वस्तुओं को तू आज ही उस बर्तन में रख देना, जिस में आटा रखा जाता है।

भाभी—बहुत अच्छा।

यह कह कर उस स्त्री ने वह सब वस्तुएं लाकर आटे के बर्तन में रख दीं। इस के पश्चात् सोहनलाल ने घर की सब स्त्रियों को बुला कर कहा

"मुझे पता चला है कि आज से तीन दिन के अन्दर तुमको वह सब वस्तुएं मिल जावेंगी, जो चोरी गई हैं और न कभी भविष्य में तुम्हारे घर में चोरी होगी। किन्तु चाची जी! एक काम आप को भी अवश्य करना होगा। आप को दोनों

भाभियों को एक सा समझना होगा।"

इस पर धारी की माता बोली

"बेटा, मैं आगे से ऐसा ही किया करूंगी।"

यह सुन कर रामधारी के सारे परिवार को बड़ा भारी हर्ष हुआ कि अब हमारे घर में लड़ाई झगड़े न होंगे।

सोहनलाल इस प्रकार रामधारी के घर न्याय करके अपने घर आ गए। तब उनकी माता लक्ष्मी देवी ने उनसे पूछा

"बेटा, आज इतनी देर कहां लगी?"

इस पर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

"माता जी, मैं धारी के यहां गया था।"

इस पर माता लक्ष्मी देवी चुप हो गई। उधर रामधारी की माता जब सायंकाल के समय भोजन बनाने के लिये आटा निकालने लगी तो हार आदि चोरी की सभी वस्तुएं उसको मिल गईं। उनको देखकर उसको ऐसी भारी प्रसन्नता हुई कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसने उसी समय सारे परिवार को बुला कर कहा

"सोहनलाल है तो कुल नौ वर्ष का बालक, किन्तु उसकी बात सच्ची निकली। उसके पास निश्चय से कोई इष्ट है।"

इस प्रकार सोहनलाल जी की कीर्ति रामधारी के घर से निकल कर सम्पूर्ण सम्भडियाल नगर में फैल गई। रामधारी की माता ने शाह मथुरादास जी के घर जाकर लक्ष्मी देवी को सारी घटना कह सुनाई तथा उनको बधाई देते हुए कहा

"बहिन लक्ष्मी! तेरा सोहनलाल एक अनमोल रत्न है। उसने मेरे घर को स्वर्ग बना दिया है।"

रामधारी की माता के मुख से यह वचन सुन कर माता लक्ष्मी देवी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई।

१२

सम्यत्त्व प्राप्ति

नादंसणिस्स नाणं,
नाणेण बिना बिणा न हुन्ति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो,
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं॥

उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २६, गाथा ३०

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के बिना आचरण के गुण नहीं होते। बिना गुण के कर्मों से नहीं छूटते, तथा बिना कर्मों से छूटे निर्वाण नहीं होता।

भगवान् महावीर स्वामी ने अपने प्रवचन में कहा है कि

"हे प्राणी! सम्यक्त्व को अंगीकार किये बिना आज तक किसी के आत्मा ने अपना न तो कल्याण किया, न करते हैं और न करेंगे।"

इस पर गौतम गणधर ने भगवान् से प्रश्न किया

"हे भगवन्! बिना सम्यक्त्व के उत्कृष्ट चारित्र का पालन करने वाला व्यक्ति अधिक से कितने भव के बाद मोक्ष जा सकता है?"

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया

"हे गौतम ! बिना सम्यक्त्व के उत्कृष्ट द्रव्य चारित्र का पालन करने वाले अनेक ऐसे जीव हैं, जो कभी भी मोक्ष नहीं जावेंगे।"

इस पर गौतम स्वामी ने भगवान् से फिर प्रश्न किया

"भगवन् ! चारित्र रहित उत्कृष्ट सम्यक्त्व का पालन करने वाला व्यक्ति अधिक से अधिक कितनी बार जन्म लेकर मोक्ष जाता है ?"

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया

"वह अधिक से अधिक तीन बार जन्म मरण करके बाद अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करता है।"

इस पर गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया

"भगवन् ! क्या कोई ऐसा भी जीव है, जिसको सम्यक्त्व की प्राप्ति तो हो गई हो, किन्तु जिसे कभी भी मोक्ष न मिले।"

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया कि—

"ऐसा नहीं हो सकता। जो व्यक्ति एक मिनट के लिये भी सम्यक्त्व को ग्रहण करेगा वह अवश्य मोक्ष को प्राप्त होगा।"

उपरोक्त वर्णन से यह निर्विवाद सिद्ध है कि संसार में सम्यक्त्व रत्न ही सच्चा रत्न है। जिसको इस अमूल्य रत्न की प्राप्ति हो जाती है, सारा संसार उसके वश में हो जाता है। आज संसार के अन्दर अनेक मत मतान्तर फैले हुए हैं। उनके उलट फेर तथा बाह्य आडम्बर को देखकर मनुष्य की बुद्धि चकरा जाती है और वह भूलभुलैयां में पड़ कर अपने ध्येय तक पहुंचने में असमर्थ हो जाता है। इसलिये भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है कि

"हे प्राणी ! यदि तुझे अनन्त सुख प्राप्त करने की इच्छा है तो मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को अंगीकर कर।"

बुद्धि पाने का यही फल है कि मनुष्य तत्वों के ऊपर सम्यक्तया विचार करे। यह प्रायः देखने में आता है कि तत्व से अनभिज्ञ नर नारी अपने अज्ञान के कारण बाह्य आडम्बर से आकर्षित होकर आत्म कल्याण के सच्चे सिद्धान्त को त्याग कर मिथ्यात्व में फंस जाते हैं। वह एक ओर तो आत्म कल्याण की क्रिया करते हैं तथा दूसरी ओर कपोलकल्पित देवी देवताओं, माता, मसानी, मंदिर, मस्जिद, पीर, पैगम्बर आदि को देव मानते हुए ऐसे व्यक्तियों को गुरु मान कर उनकी सेवा करते हैं, जो सदाचारहीन, सांसारिक काम भोगों में आसक्त, कामी, लम्पट तथा रात दिन मांस मदिरा आदि दुर्व्यसनों का सेवन करते रहते हैं। मूर्ख लोग ऐसे देवताओं तथा गुरुओं की सेवा में भी आत्मकल्याण समझ कर अपने तथा दूसरे के आत्मा के पतन का कारण बनते हैं। ऐसे व्यक्तियों को ही शास्त्रों में मिश्र दृष्टि कहा गया है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति का कहीं ठिकाना नहीं होता। वह दो नावों में पैर रखने वाले के समान धर्म रूपी नदी को कभी भी पार नहीं कर सकता। इस प्रकार के व्यक्ति चांदी और सीप, रेत तथा खांड, सोना तथा पीतल और हाथी एवं गधा इन सब को एक सा ही समझते हैं। किन्तु वास्तव में यह उनकी बुद्धि का भ्रम है। ऐसा कभी नहीं हुआ। सत्य सदा सत्य ही रहता है। जो व्यक्ति इस बात को समझता है वह कभी भी भूलभुलैयां में फंस कर नहीं भटकता। इसी बात को ध्यान में रखते हुए यहां आचार्य सम्राट् श्री सोहनलाल जी महाराज की सम्यक्त्व प्राप्ति की घटना का वर्णन किया जाता है। इस वर्णन को पढ़कर इस बात

का पता लगेगा कि सम्यक्त्व का लक्षण वास्तव में क्या है ? इसे क्यों ग्रहण करना चाहिये तथा उस से क्या क्या लाभ होते हैं ?

पूज्य प्रवर श्री अमरसिंह महाराज ने अपना संवत् १६१४ का चातुर्मास अमृतसर में किया था। वह वहां अमृत की सरिता बहा कर भव्य प्राणियों को अनादिकालीन विषय वासना के ताप को शान्त करते हुए अमृतसर से लौटते हुए सम्बडियाल पधारे। अमरसिंह जी महाराज इस बार सम्बडियाल ग्यारह वर्ष के बाद आए थे। उस समय ११ वर्ष पूर्व शाह मथुरादास जी तथा उनकी धर्म पत्नी लक्ष्मी देवी दोनों ने ही पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज से श्रावक के द्वादश व्रतों के पालन करने का नियम लिया था। इसके तीन वर्ष बाद हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी का जन्म हुआ। आचार्य प्रवर श्री अमरसिंह जी महाराज के सम्बडियाल पधारने का समाचार सुन कर शाह मथुरादास जी तथा लक्ष्मी देवी आदि सभी को भारी प्रसन्नता हुई।

लक्ष्मी देवी अपने दोनों पुत्रों—शिवदयाल तथा सोहनलाल को लेकर उनके दर्शन करने गई। पूज्य श्री ने सोहनलाल जी को देख कर माता लक्ष्मी देवी से पूछा

"यह तुम्हारा पुत्र है ? यह तो बड़ा भाग्यशाली दिखलाई देता है।"

आचार्य महाराज के यह वचन सुन कर लक्ष्मी देवी बोली

"श्री महाराज ! यह आपका ही छोटा शिष्य है। जब आप श्री की इस पर अभी से इतनी अधिक कृपा दृष्टि है तो यह अवश्य ही भविष्य में महान् पुरुष बनेगा। इसने अभी से प्रतिक्रमण, पच्चीस बोल, नव तत्व, छब्बीस द्वार तथा अनेक

स्तोत्र कण्ठ याद कर लिए हैं। दूसरों की सेवा करने में इसकी ऐसी लगन है कि सेवा के सामने इसे खानपान की सुध भी नहीं रहती। बाल्यावस्था में ही इसके ऐसे ऐसे कार्यों को देखकर बड़े बड़े बुद्धिमान् भी चकित हो जाते हैं।"

माता द्वारा पुत्र की इस प्रकार प्रशंसा सुनकर आचार्य महाराज ने सोहनलाल से प्रश्न किया

"सोहनलाल ! क्या तुम ने सम्यक्त्व ग्रहण किया है ?"

सोहनलाल—गुरु महाराज ! अपनी माता जी तथा साधु साध्वियों से मैं ने सम्यक्त्व के स्वरूप को कुछ कुछ समझा तो अवश्य है, किन्तु मेरी यह अभिलाषा है कि उसको विस्तारपूर्वक समझ कर ग्रहण करूं। माता जी ने कहा था कि पूज्य श्री के पधारने पर उनसे अवश्य ही सम्यक्त्व का स्वरूप समझ कर उसे ग्रहण कर लेना। सो अब मुझे वह स्वर्ण अवसर अनायास ही प्राप्त हो गया है। आप कृपा कर मुझे सम्यक्त्व का स्वरूप विस्तारपूर्वक समझा दें।

इस पर पूज्य श्री ने उत्तर दिया

"वत्स ! यदि तुम सम्यक्त्व का लक्षण समझना चाहते हो तो आहार पानी के बाद दिन में इस विषय पर वार्तालाप किया जा सकता है।"

पूज्य श्री का यह उत्तर सुन कर सोहनलाल जी को यह सोच कर बड़ा भारी हर्ष हुआ कि आज मुझे नई नई बातें सुनने को मिलेंगी। सोहनलाल मन में यह सोच कर आचार्य महाराज की वन्दना करके अपने घर चले गए।

जब महाराज आहार पानी से निवृत्त हो गए तो सोहनलाल अपने बाल मित्रों को अपने साथ लेकर पूज्य श्री की सेवा में

उपस्थित हुए। सोहनलाल जी के साथ उनके बाल मित्रों ने भी आकर आचार्य श्री के चरणों में अपना अपना मस्तक झुका दिया। इस के पश्चात् उन्होंने पूज्य श्री के सन्मुख बैठ कर हाथ जोड़ कर उन से कहा

"गुरु देव ! हम ने सोहनलाल से सुना है कि सम्यक्त्व सुख का दाता तथा मिथ्यात्व दुःख का कारण है। क्या आप कृपा कर हम अबोध बालकों को उसे विस्तारपूर्वक बतला कर समझाने की कृपा करेंगे ? जिस से हम आप के उपदेश को सुन कर मिथ्यात्व को त्याग कर तथा सम्यक्त्व को अंगीकार कर अपने आत्मा का कल्याण कर सकें।

इस पर आचार्य महाराज ने उत्तर दिया—

"क्यों नहीं ? हम तुमको अवश्य बतलावेंगे। तुम ध्यान देकर सुनो। यह बात स्मरण रखो कि यथार्थ तथा सत्य वस्तुतत्व का ग्रहण करना सम्यक्त्व है तथा अयथार्थ एवं विपरीत का ग्रहण करना मिथ्यात्व है। अब हम तुमको प्रथम मिथ्यात्व का लक्षण विस्तारपूर्वक समझाते हैं।

विपरीत देव, विपरीत गुरु तथा विपरीत धर्म को यथार्थ देव, यथार्थ गुरु तथा यथार्थ धर्म मानना मिथ्यात्व है। अर्थात् जिसमें देव के गुण न हों ऐसे कुदेव में देव की बुद्धि रखना, जिसमें गुरु के गुण न हों उसमें उसी प्रकार गुरु की बुद्धि रखना जिस प्रकार नीम को आम मान लेना तथा जीव हिंसा आदि पाप कर्मों में धर्म की बुद्धि रखना उसी प्रकार मिथ्यात्व है जिस प्रकार सर्प को फूलों की माला समझना। इसके विपरीत यथार्थ देव, यथार्थ गुरु तथा यथार्थ धर्म में श्रद्धा रखना सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व में तीन दोषों से बचना आवश्यक है।

संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय।

वीतराग देव, निर्ग्रन्थ मुनि तथा धर्म में संदेह रखना संशय है। सत्यदेव वीतराग भगवान् को अदेव समझना विपर्यय है। जिस प्रकार उल्लू को सूर्य अन्धकारपूर्ण दिखलाई देता है, उसी प्रकार विपर्यय में जीव सच्चे देव को अदेव समझता है। इसी विपर्यय के प्रभाव से यह अज्ञानी जीव गुणयुक्त गुरु में अगुरु की बुद्धि उसी प्रकार रखता है, जिस प्रकार पुष्प माला को सर्प मान लिया जावे। इस विपर्यय के कारण जीव सत्य धर्म को उसी प्रकार अधर्म मान लेता है, जिस प्रकार कमल रोग वाले को श्वेत शंख पीला दिखलाई देता है। किसी बात को जानने की परवाह न करना अनध्यवसाय है। जैसे पैर में कुछ चुभ जाने पर भी यह जानने का यत्न न करना कि पैर में कंकर चुभी है अथवा कांटा अथवा सुई।

मिथ्यात्व पांच प्रकार का है—

आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, अभिनिवेशिक, सांशयिक तथा अनाभोगिक।

१—आभिग्रहिक मिथ्यात्व

मिथ्या शास्त्रों के पढ़ने से जो कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म में दृढ़ श्रद्धा हो जाती है उसे एकान्तवाद से ठीक मानना तथा दूसरों को ग़लत मानना। इस प्रकार के व्यक्ति हिंसा, विषय भोग तथा इन्द्रियों की तृप्ति को धर्म माना करते हैं।

२—अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व

जो सब धर्मों को एकसा मानता हुआ उनमें कोई भेद भाव न रक्खे, इस प्रकार का व्यक्ति किसी भी एक दर्शन को स्वीकार न करने के कारण मूर्ख बालकों के समान धर्म रूपी अमृत तथा अधर्म रूपी विष को एक जैसा मानता है।

३—अभिनिवेशिक

जो व्यक्ति अज्ञानवश सच्चे शास्त्र के अर्थ को भूल से उलटा कह जावे और पीछे जब कोई विद्वान् उसको बतलावे कि 'तुम इस विषय में भूल कर रहे हो' तो अपनी भूल को जानते हुए भी असत्य पक्ष को हठ वश ग्रहण करे और जाति आदि के अभिमानवश सत्य कथन को जान कर भी उसको न माने तथा अपनी कपोलकल्पित कुयुक्तियां बता कर अपने मन माने अर्थ को सिद्ध करे और बाद में शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने पर भी पराजय को न माने। इस प्रकार का मिथ्यात्व प्रायः गोष्ठमहिलादि के समान निन्हवों का होता है।

४—संशयिक मिथ्यात्व

सर्वज्ञ के बतलाए हुए शास्त्रों में इस प्रकार संदेह करना कि आत्मा असंख्यात प्रदेशी है अथवा नहीं; देव, गुरु, धर्म, जीव, काल आदि पदार्थ सत्य हैं अथवा नहीं।

५—अनाभोगिक मिथ्यात्व

जिन देवों को यह भी उपयोग नहीं कि धर्म, अधर्म क्या वस्तु है ऐसे एकेन्द्रिय आदि जीवों को देव मानना अनाभोगिक मिथ्यात्व है। जिस प्रकार पीपल को पूजना अथवा नाग को पूजना आदि।

हमने तुमको सम्यक्त्व को बतलाने के पूर्व मिथ्यात्व को इसलिये बतलाया है कि मिथ्यात्व को छोड़े बिना सम्यक्त्व को ग्रहण नहीं किया जा सकता। वास्तव में सच्चे देव में श्रद्धा करने से सच्चे गुरु तथा सच्चे धर्म में श्रद्धा स्वयमेव हो जाती है। अतएव तुमको प्रथम यथार्थ देव के लक्षण बतलाते हैं—

सर्वज्ञ, इन्द्र आदि देवताओं द्वारा भी पूजनीय, खड्ग चक्र त्रिशूल आदि हिंसा तथा भय के साधनों से रहित, स्त्री आदि कामवासना के साधनों से रहित, विस्मृति चिन्ह रहित, माला आदि से रहित, चार घातिया कर्मों को नष्ट करके अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य इन अनन्तचतुष्टय के धारक वीतराग भगवान् जिन ही सच्चे देव होते हैं।

सच्चे गुरु के अन्दर शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा आदि लक्षण का होना आवश्यक है। अब हम तुमको इन गुणों का वर्णन करके पृथक् २ बतलावेंगे—

शम—जिस गुरु में अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया लोभ का उपशम हो जावे अर्थात् जिसे अपराध करने वाले के ऊपर भी तीव्र कषाय उत्पन्न न हो उसे शम गुण का धारक माना जाता है।

संवेग—संसार से विरक्त होकर अपने आत्म गुणों में लीन रहना संवेग कहलाता है।

निर्वेद—विषय वासना से विरक्त रहते हुए विषयों को विष के समान समझ कर निरन्तर मोक्ष की अभिलाषा करते रहना निर्वेद है।

अनुकम्पा—किसी दुःखी के दुःख को देखकर हृदय में दया उत्पन्न होना अनुकम्पा है। जिस व्यक्ति के मन में अनुकम्पा होती है वह दुःखी जीवों को देखकर उनका दुःख दूर करने का यत्न करता है। वह दुःखी जनों को देखकर स्वयं भी दुःख करता है और अपनी शक्ति के अनुसार दुखियों के दुःख को दूर करता है।

सम्यक्त्व धारण करने के लिये यह आवश्यक है कि जिनेन्द्र भगवान द्वारा बतलाए हुए तत्वों में पूर्ण श्रद्धान किया जावे। यही सम्यक्त्व है। यदि तुम चाहो तो इसे ग्रहण कर सकते हो।

आचार्य महाराज के इस प्रकार उपदेश देकर चुप हो जाने पर सोहनलाल जी का हृदय हर्ष से गद्गद हो गया। उन्होंने आचार्य महाराज के चरण पकड़ कर कहा—

"गुरुदेव ! मैं आपकी कृपा से संसार रूपी समुद्र से पार करने के प्रधान साधन इस सम्यक्त्व को अब बहुत कुछ समझ गया। अब आप मुझे सम्यक्त्व ग्रहण करा दें।"

इस पर आचार्य महाराज ने उत्तर दिया—

"वत्स ! सम्यक्त्व को व्रतों के समान ग्रहण नहीं कराया जाता। यह तो हृदय के अन्दर स्वयमेव ही उत्पन्न होता है। तो भी तुम चाहो तो हमारे समक्ष मिथ्यात्व का पूर्णतया त्याग करने का व्रत ले सकते हो। वास्तव में मिथ्यात्व का त्याग करना ही सम्यक्त्व का ग्रहण करना है।"

इस पर सोहनलाल जी बोले—

"महाराज ! मैं आज आपके चरणों की साक्षीपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूं कि कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म का कभी भी सेवन नहीं करूंगा और सदा वीतराग सर्वज्ञ देव जिनेन्द्र भगवान्, आप सरीखे सच्चे गुरु तथा जैन धर्म में ही श्रद्धा रक्खूंगा।"

सोहनलाल जी के इस प्रकार सम्यक्त्व ग्रहण करने पर गुरु महाराज ने उनकी पीठ थपथपा कर उन्हें शाबाशी देकर बिदा कर दिया।

१३

णमोकार मंत्र का प्रभाव

ऐसो पञ्च णमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥

पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करता है। यह सब मंगलों में सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी मंगल है।

संसार में अनेक प्रकार का चमत्कार दिखलाने वाले करोड़ों मंत्र हैं, किन्तु जिस प्रकार पर्वतों में सुमेरु, नदियों में गंगा नदी, समुद्रों में क्षीर सागर, पुष्पों में कमल, हाथियों में ऐरावत हाथी, राजाओं में चक्रवर्ती, योद्धाओं में वासुदेव, दानों में अभय दान तथा शरीर में मस्तिष्क को सबसे उत्तम माना जाता है उसी प्रकार सब मंत्रों में णमोकार मंत्र सबसे उत्तम मंत्र है। इस मंत्र की आराधना करने वाले व्यक्ति के संकट की रक्षा १४००० देवता करते हैं। इस पञ्च परमेष्ठी मंत्र को चौदह सहस्र कार्यों के लिये चौदह सहस्र प्रकार से पढ़ा जाता है। इन विधियों के विधि-विधान पृथक् २ हैं, जो गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकते हैं। इसी मंत्र के प्रभाव से शिवकुमार का संकट टला था। इसी मंत्र के प्रभाव से कोटिभट श्रीपाल का भाग्योदय हुआ था। इसी के प्रभाव से सोमा सती के गले में पड़ कर सर्प का पुष्पहार बन गया था। इसी मंत्र के प्रभाव से सुभद्रा सती ने कच्चे

धागे की चलनी (छालनी) से शीतल जल निकाल कर राजा तथा प्रजा को चमत्कार दिखलाया था। इसी के प्रभाव से अमर-कुमार ने राजा श्रेणिक द्वारा निर्मित धग-धग करती हुई अग्नि ज्वाला का शान्त कर धर्म का प्रभाव प्रकट किया था। इसी मंत्र पर श्रद्धा करके अञ्जन चोर आपत्तियों से मुक्त होकर अपने परलोक का साधन कर सका था।

यद्यपि यह मंत्र इतना प्रभावशाली है, किन्तु आज जनता की श्रद्धा उसमें बहुत कम होगई है। किन्तु श्री सोहनलाल जी महाराज का चरित्र पढ़ने वालों को इस विषय में शंका करने को स्थान नहीं मिल सकता। सोहनलाल जी की माता लक्ष्मी देवी ने बाल्यावस्था से ही इस मंत्र पर उनका श्रद्धान करा दिया था।

एक दिन सम्बड़ियाल में पसरूर जाने से पूर्व माता लक्ष्मी-देवी ने सोहनलाल जी को अपने पास बुला कर उनसे पूछा—

माता—बेटा, तुम जानते हो कि नमस्कार मंत्र का कितना महत्व है?

सोहनलाल—हां, माता जी! आपने हीं सुनाया था कि इसको पढ़ने से सब प्रकार के संकट टल जाते हैं, शुभ कर्मों का बंध होता है, सभी इच्छाएं पूर्ण होती हैं तथा पाप कर्मों का नाश होकर आत्म तेज प्रकट होता है। इस प्रकार यह मंत्र अनेक प्रकार के लाभ करके अनेक गुणों को उत्पन्न करता है।

माता—बेटा, तुमको उसके प्रभाव का स्मरण ठीक ठीक याद है। तुम इस मंत्र का प्रतिदिन जाप करते हुए इसके महत्व का ध्यान किया करो।

सोहनलाल—माता जी, जब से परम पूज्य आचार्य प्रवर

श्री पूज्य अमरसिंह जी महाराज के समक्ष मैंने सम्यक्त्व ग्रहण किया है तब से मैं इसका प्रतिदिन जाप करता हूं।

माता—बेटा, तुम प्रतिदिन सोने से प्रथम २१ दफा इस मंत्र का जाप अवश्य किया करो।

सोहनलाल—माता जी, इससे किस फल की प्राप्ति होती है ?

माता—बेटा, इससे दुष्ट स्वप्न नहीं आते, विघ्न बाधाएं अपने आप दूर हो जाती हैं और यदि कोई आपत्ति अचानक आ भी जावे तो वह शीघ्र दूर हो जाती है।

सोहनलाल—अच्छा, माता जी ! अब मैं सोने के पूर्व इस मंत्र का जाप प्रतिदिन अवश्य किया करूंगा।

सोहनलाल जी ने उस दिन से णमोकार मंत्र का जाप प्रतिदिन नियमपूर्वक करना आरम्भ कर दिया। सम्बड़ियाल से पसरूर अपने मामा के यहां चले जाने पर भी आपके इस नियम में व्यतिक्रम नहीं पड़ा। इससे एक दिन आपको एक अद्भुत चमत्कार का अनुभव करने का अवसर मिला।

भाद्र पद मास कृष्ण पक्ष की एक अत्यन्त सुहावनी रात्रि थी। एक तो भाद्रपद मास की रात्रि का अन्धकार, दूसरे आकाश में बादलों के कारण उसमें और भी गहनता आगई थी। पर्युषण पर्व का अवसर था। सोहनलाल जी पसरूर में अपने घर की छत पर आराम से सो रहे थे कि अचानक आप की आंख खुली और आपने करवट बदलने का विचार किया। आप करवट बदलने ही वाले थे कि आपके कान में यह शब्द आए—

"सावधान ! करवट मत बदलना ! दूसरी ओर पलंग पर एक स्थूलकाय विषधर सर्प लेटा हुआ है।"

आपने इन शब्दों को कुछ उनींदी दशा में सुना। अतएव आप यह विचार करते हुए बिना करवट बदले फिर सो गए कि यह आवाज़ न होकर एक भ्रम मात्र ही है। किन्तु आपकी करवट दुःखने लगी थी। अतएव करवट बदलने के लिये दुबारा आपकी नींद फिर कुछ हलकी हो गई और आप करवट बदलने ही वाले थे कि आपको दुबारा फिर वही शब्द सुनाई दिये।

"सावधान ! करवट मत बदलना ! दूसरी ओर पलंग पर एक स्थूलकाय विषधर सर्प सोया हुआ है।"

किन्तु आप इन शब्दों पर ध्यान न देकर करवट बदलने ही लगे तो पीछे से आपको कुछ धक्का लगा। इस पर आपने आंख खोलकर पीछे की ओर देखा तो आपको एक स्थूल-काय कृष्ण सर्प अपने पलंग पर अपने ही बराबर सोता हुआ दिखाई दिया। उस समय सोहनलाल जी की आयु कुल ग्यारह वर्ष थी। किन्तु आप में साहस तथा सूझ की कोई कमी न थी। अतएव आप सांप को देख कर घबराए नहीं। आप फुर्ती से पलंग से उतर कर नीचे आ गए। तभी आप ने कुछ क्षण तक विचार करके निर्भीकता से अपने पलंग की चादर को इस प्रकार लपेटा कि उस से न तो लेशमात्र शब्द ही हुआ और न सर्प का बदन ही लेशमात्र हिला। फिर आप ने भुजंगराज को उस चादर में लपेट कर उसको ऊपर से इस प्रकार बांध दिया कि सर्प के उस में से निकल जाने के लिए कोई भी छेद न रहा।

इस प्रकार आप ने नागराज को अपने पलंग की चादर में

बंदी बना कर यह सारा समाचार अपने मामा जी को जाकर सुनाया। सोहनलाल जी के पलंग पर सर्प होने के समाचार से घर भर में शोर मच गया। अब तो सारा परिवार आपके पलंग के पास आया। वह लोग इस दृश्य को देखकर अत्यधिक आश्चर्य करने लगे। सर्प का सोहनलाल जी के पलंग पर चढ़ना, फिर भी उनको हानि न पहुंचाते हुए उनकी बगल में सो जाना और फिर सोहनलाल जी का उसको बंदी बना लेना यह तीनों ही घटनाएं उनके लिए अत्यधिक आश्चर्य का विषय थीं। वह इस दृश्य को चकित नेत्रों से देखने लगे।

उनको जब सोहनलाल जी से यह पता चला कि वह प्रति दिन णमोकार मंत्र का जप बिस्तर पर लेटने से पूर्व किया करते हैं तब तो उनको इस बात का विश्वास हो गया कि यह सारा प्रभाव णमोकार मंत्र का ही है। इस दिन से सारे परिवार को णमोकार मंत्र पर ऐसी श्रद्धा हो गई कि उन में से प्रत्येक व्यक्ति के मुख से णमोकार मंत्र ही सुनाई देता था।

इस के पश्चात् उस सर्प को वहां से उठवा कर जंगल में ले जा कर छुड़वा दिया गया।

१४

मामा के यहां निवास

सेवाधर्मो परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।

सेवा धर्म अत्यन्त गहन है। योगी लोग भी उस में सुगमता से प्रवेश नहीं कर सकते।

दूसरे की सेवा करते हुए यदि उस के मन के अनुसार सेवा न की जावे तो उस का मन अप्रसन्न हो जाता है। यदि अपने स्वजनों का ध्यान न रखा जावे तो वह अप्रसन्न हो जाते हैं। यदि सेवा करने में कोई त्रुटि रह जावे तो कठिनता होती है। इस प्रकार सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है। सोहनलाल स्कूल में पढ़ने जाते थे और अपने सहपाठियों तथा पास पड़ौस वालों के शुद्धाचरण का ध्यान रखते हुए उनके घर से ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई, झगड़ों तथा चोरी जैसे मामलों को भी अपनी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा दूर कर दिया करते थे। इस से जहां एक ओर उस बाल्यावस्था में ही उनकी ख्याति पास पड़ौस में बढ़ती जाती थी वहां उनकी माता के हृदय में उनके भविष्य के सम्बन्ध में चिन्ता बढ़ती जाती थी। वह सोचती थीं कि इस प्रकार दूसरों के मामलों में रात दिन पड़े रह कर वह किस प्रकार अपने अध्ययन कार्य को कर सकेगा? एक दिन तो वह अत्यधिक चिंतित हो गई।

मध्यान्ह का समय था। ज्येष्ठ मास की गर्मी के कारण सूर्य देव अपनी सहस्रों किरणों का उपयोग संसार को जलाने में कर रहे थे। इसीलिए उनके भय के कारण सब कोई दोपहर के समय अपने अपने घर में मुंह छिपाए पड़े हुए थे। बन, जंगल, मैदान तथा नगर सभी में से आग की लपटें सी निकलती हुई दिखलाई दे रही थीं। नदियों तथा तालाबों का जल उष्णता के कारण उबला पड़ता था। गाय भैंसें उष्णता के कारण चरने का विचार छोड़ कर वृक्षों के नीचे खड़ी खड़ी जुगाली कर रही थीं। पक्षी गण दोपहर में चुग्गा खोजने का कार्य छोड़ कर अपने अपने घोंसलों में छिपे बैठे थे। सम्बांडयाल नगर में भी उष्णता के कारण बाजारों में सुनसान सा दिखलाई देता था। सब लोग अपनी अपनी दुकानों के अन्दर के भाग में बैठे हुए दुकानों पर आने जाने वाले ग्राहकों पर दृष्टि गड़ाए थे। ऐसे समय एक तिखण्डे के कमरे में एक युवती चिन्ता में अत्यधिक निमग्न थी। यद्यपि कमरा अत्यधिक सजा हुआ था, किन्तु युवती का ध्यान उस ओर लेशमात्र भी नहीं था। कमरे के बीच में एक बड़ा भारी कपड़े का पंखा लगा हुआ था, जिस में एक मोटी डोरी बंधी हुई थी। एक बूढ़ी दासी कमरे के बाहर बैठी हुई उस पंखे को खींचती खींचती ऊंघ रही थी, जिस से युवती के तन बदन पर पसीना आ रहा था। किन्तु वह अपने ध्यान में इतनी अधिक लीन थी कि उसको अपने शरीर की लेशमात्र भी सुधि नहीं थी।

युवती बहुत देर तक इसी प्रकार अपने विचारों में खोई हुई सी सोचती रही। अंत में वह अपने आप ही कुछ बड़बड़ाने लगी—

"क्या मेरा सोहनलाल दूसरों के मामलों में पड़ा रह कर

अपनी उन्नति कुछ भी नहीं करेगा ? ज्योतिषी तो कहते थे कि यह बड़ा भारी विद्वान बनेगा। किन्तु यह लक्षण तो विद्वान् बनने के नहीं हैं। जब तक बच्चा स्कूल में पढ़े हुए पाठ को घर पर याद नहीं करेगा, तब तक वह किस प्रकार विद्वान् बन सकता है ? मैं उसको बार बार समझा कर हार गई, किन्तु पन्द्रह वर्ष की आयु हो जाने पर भी वह इस विषय में लेशमात्र भी ध्यान नहीं देता। इस में संदेह नहीं कि जब पास पड़ौस की स्त्रियां मेरे पास आकर सोहनलाल के गुणों की प्रशंसा करती हैं तो मैं प्रसन्नता से फूल उठती हूं। किन्तु वास्तव में यह बात तो प्रसन्न होने की अपेक्षा खेद की भी कम नहीं है। मेरा बच्चा दूसरों की उन्नति का अधिक ध्यान रखता हुआ, अपनी उन्नति के मार्ग में बाधा उपस्थित कर रहा है। आज भी वह स्कूल से आकर खाना खाते ही कहीं भाग गया। न जाने किसके यहां पंचायत कर रहा होगा ? मैं देखती हूँ कि सोहन हाथ से निकला जा रहा है। उसे अभी से न संभाला गया तो बाद में तो उसका संभलना और भी कठिन पड़ेगा। इस लिए जिस प्रकार भी हो उसे अभी से संभालना होगा।"

लक्ष्मी देवी इस प्रकार अपने मन में सोच विचार कर रहीं थीं कि सोहनलाल भी कहीं से उस समय आ गया। लक्ष्मी देवी उसको उस समय आते देखकर एक दम तेज होकर बोलीं—

लक्ष्मी देवी—क्या सोहनलाल तू अब भी घर में बैठ कर अपना पाठ याद नहीं कर सकता ?

सोहनलाल—माता जी ! मैं धारी के मामा के यहां गया था। उसकी मामी ने तीन दिन से भोजन नहीं किया था। घर में झगड़ा मचा हुआ था। अब वहां सब खुश होकर हंस खेल रहे हैं।

लक्ष्मी देवी—बेटा ! यह सारी बातें तो मैं नित्य सुनती रहती हूँ। किन्तु क्या उनके यहां वालों के हंसने खेलने से तेरी परीक्षा पूरी हो जावेगी। तू जो सदा ही दूसरों के मामलों में पड़ कर अपनी पढ़ाई का सत्यानाश कर रहा है विद्यार्थियों के लिये क्या यह उचित है ?

लक्ष्मी देवी जब इस प्रकार सोहनलाल को डांट फटकार बता रही थीं तो उसके भाई गंडे शाह भी चुपचाप आकर उस कमरे में इस प्रकार खड़े हो गए कि उनकी उपस्थिति का पता सोहनलाल अथवा लक्ष्मी देवी किसी को भी न लगा। गंडे शाह पसरूर से आज प्रातःकाल ही सोहनलाल को देखने के लिए आए थे। इस समय वह दोनों मां बेटों के वादविवाद का शब्द सुन कर अपने कमरे से निकल कर उनका वार्तालाप सुनने के लिये वहां आ गए थे। लाला गंडा मल जी अपने भानजे सोहनलाल से विशेष प्रेम करते थे। वह समय समय पर उसको देखने के लिये पसरूर से सम्बडियाल आ जाया करते थे। छुट्टियों में तो वह सोहनलाल जी को प्रायः अपने पास पसरूर में ही बुला कर रख लिया करते थे। इस समय माता लक्ष्मी देवी सोहनलाल की डांट डपट करती जाती थीं और सोहनलाल उनको हंसते हुए उत्तर दे रहे थे, जिससे लक्ष्मी देवी का क्रोध और भी बढ़ता जाता था। इस पर लाला गंडेमल उन दोनों के बीच में आकर बोल उठे

गंडे मल—लक्ष्मी ! तू बिना अपराध लड़के को क्यों डांट डपट करती रहती है ? वह तेरा विनय करता जा रहा है और तुझे क्रोध पर क्रोध चढ़ता जा रहा है।

उस पर लक्ष्मी देवी ने उत्तर दिया

लक्ष्मी—"भइया ! इसका अपराध यही है कि यह अपने

भविष्य के सम्बन्ध में लेशमात्र भी विचार नहीं करता, और अपने अध्ययन के समय को व्यर्थ नष्ट करता हुआ सदा लोगों की पंचायत में पड़ कर चौधरी बनता रहता है। न तो इसे भोजन के समय का ध्यान रहता है और न पढ़ने अथवा सोने के समय का। इसके ऊपर यही लोकोक्ति लागू होती है कि

"कल का जोगी गले में जटा"।

इस छोटी सी पन्द्रह साल की आयु में चौधर का शौक इस को तथा इसके जीवन को बरबाद कर रहा है।"

लक्ष्मी देवी के इन वचनों को सुन कर गंडे शाह बोले—

"यह तो इसका कोई अपराध नहीं है। बच्चे में सत्य भाषण, विनयशीलता, पवित्रता, बुद्धिमत्ता सभी गुण हैं। तू कहती है कि यह पढ़ता नहीं है, किन्तु यह अपनी कक्षा में प्रति वर्ष अच्छे नम्बरों से पास होता है। यह तेरी बात ठीक है कि इसको अभी से दूसरों के झगड़ों में नहीं पड़ना चाहिये। यह वास्तव में इस की भारी भूल है।"

यह कह कर लाला गंडा मल ने सोहनलाल को अपने पास खींच कर खूब प्यार किया। फिर वह उससे बोले

"बेटा! तुम अपनी पढ़ाई पर ध्यान रखा करो और अभी इन झमेलों में मत पड़ा करो। इसमें संदेह नहीं कि लोगों के झगड़ों में पड़ कर तुम अपनी भलाई ही करते रहते हो, किन्तु तुम्हारा अभी पढ़ाई का समय है। तुमको उसे इस प्रकार व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिये।"

अपने भाई के यह शब्द सुनकर लक्ष्मी देवी बोलीं—

"भइया! इससे आपका कुछ भी कहना बेकार है। इससे इन पंचायतों में पड़े बिना कभी भी नहीं रहा जावेगा। मैं ने

इसको अनेक बार समझाया, किन्तु यह कभी भी बाज नहीं आता और लोग भी इसको अपने आप खैंच लेते हैं। इस लिये आप इसे पसरूर ले जावें। यहां रह कर यह इन पंचायतों से कभी भी नहीं बच सकेगा।"

लक्ष्मी देवी का यह कथन सुन कर लाला गंडा मल बहुत प्रसन्न हुए, क्यों कि सोहनलाल जी से उनको असाधारण प्रेम था। वह लक्ष्मी देवी से कहने लगे

"लक्ष्मी! आज तो तू ले जाने को कह रही है। किन्तु कुछ दिनों में ही तुझको इसकी याद आवेगी और फिर तू इसकी याद में बेचैन हो जावेगी। जब कभी यह छुट्टियों में पसरूर जाता है तो तुझे कल नहीं पड़ती। किन्तु जब यह पसरूर के स्कूल में पढ़ने लगेगा तो तुझे इसकी बहुत याद आवेगी। बतला, तू इसके वियोग को सहन कर लेगी?"

इस पर लक्ष्मी देवी ने उत्तर दिया

लक्ष्मी—"इसके भविष्य के लिये मैं सब कुछ सहन कर लूंगी। यह छुट्टियों में आकर मुझ से मिल जाया करेगा। जब कभी मुझे बीच में याद आया करेगी तो मैं इसे पसरूर जाकर देख आया करूंगी। इसलिये आपका इसको पसरूर ले जाना ही ठीक है। मेरी इसमें पूर्ण सहमति है।"

इस पर लाला गंडा मल बोले—मेरे लिये तो यह और भी प्रसन्नता की बात है। अच्छा, मैं इसे पसरूर ले जाता हूं। यह ठीक है कि पसरूर जाकर यह यहां की पंचायतों के झमेले से बच जावेगा और तब इसकी पढ़ाई ठीक ठीक हो सकेगी। मैं इस बात का ध्यान रखूंगा कि यह वहां जाकर नई नई पंचायतें न बना ले।

इस प्रकार श्री सोहनलाल जी अपनी पन्द्रह वर्ष की आयु में संवत् १६२१ में सम्बडियाल के स्कूल को छोड़ कर अपने मामा के साथ पसरूर आ गए और वहां के स्कूल में भर्ती होकर पढ़ने लगे।

इस समय के पश्चात् पसरूर ही उनका निवास स्थान बन गया। अब वह स्कूल की छुट्टी होने पर ही अपने माता पिता के पास सम्बडियाल जाया करते थे। आपके मामा लाला गंडा मल पसरूर म्युनिसिपैलिटी के प्रधान थे।

लाला गंडामल का एक विशेष असाधारण गुण यह था कि वह सच्चे अर्थ में दीनबन्धु थे। जिसका कोई नहीं होता था, उसकी सहायता वह किया करते थे। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भी यही कहा कि—

"जिसका कोई नहीं है, उसके तुम बन जाओ।"

सो यह गुण आपमें पूर्णरूप में विद्यमान था।

पसरूर में लाला गंडेमल के अनेक मकान थे। यदि अचानक दो सौ व्यक्ति भी अतिथि रूप में आ जाते तो आपके पास सब प्रकार की इतनी अधिक स्वागत सामग्री थी कि किसी से मांगने की आवश्यकता न रखते हुए वह उनका स्वागत कर सकते थे। लाला गंडामल न केवल पसरूर में, वरन् स्यालकोट जिले भर में यहां तक कि पञ्जाब भर में एक अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति माने जाते थे। वह प्रत्येक अपरिचित, रोगी, निर्धन, असहाय अथवा निराश्रित सभी की आशा पूर्ण कर दिया करते थे।

एक बार उत्तर प्रदेश का निवासी एक सज्जन व्यक्ति किसी कार्यवश पञ्जाब आया। वह रावलपिंडी से वापिस जाते हुए वजीराबाद में बीमार पड़ गया। ज्वर तो उसको इतने जोर का आया कि वह बेहोश होगया। उसकी बेहोशी की दशा में कोई

चोर उसका सर्वस्व चुरा कर लेगया। उसने होश में आने पर किसी से पूछा कि—

"मुझे किसी ऐसे सज्जन का नाम पता बतला दो, जहां मैं इस असहाय रोग अवस्था में जाकर शरण ले सकूं।"

इस पर उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—

"तुम पसरूर चले जाओ। वहां लाला गंडामल रहते हैं। वह तुम्हारा सब कष्ट दूर कर देंगे।"

यह सुन कर वह व्यक्ति प्रसन्न होता हुआ आपके पास पसरूर आया।

लाला गंडामल को जब रोगी परदेशी के पसरूर आने का समाचार मिला तो आप स्वय उसके पास आए और उसकी इस अवस्था को देखकर उसे बड़े प्रेम से अपने घर ले गए। घर लाने पर आपने बड़े प्रेम से स्वयं अपने हाथों से उसकी सेवा की और चिकित्सा भी कराई। उसके रोगमुक्त हो जाने पर भी आपने उसकी निर्बलता को दूर करने के लिये उसे अपने पास एक मास तक रक्खा। इसके पश्चात् आपने उसे खर्च देकर तथा अपना आदमी साथ भेज कर उसके घर भेज दिया। इस प्रकार आपके आचरण की यह विशेषता थी कि—

'जिसका कोई न होता उसके आप बन जाते थे।'

एक बार लाला गंडामल खांड के व्यापार के सिलसिले में अपने आदमियों के साथ उत्तर प्रदेश गए तो वहां वही व्यक्ति मिल गया। वह आप को पहिचान कर आप को अत्यधिक आग्रहपूर्वक अपने घर ले गया। घर ले जाकर उस ने आप की बहुत सेवा की और उन के दर्शन से अपने को कृतार्थ माना। जब उस के मित्रों ने उस से लाला गंडामल का परिचय पूछा तो

उस ने लाला जी के निराश्रितों की सेवा करने के स्वभाव की अत्यधिक प्रशंसा करते हुए उन का सब को परिचय दिया।

इस प्रकार श्री सोहनलाल जी को अपनी माता लक्ष्मी देवी, पिता लाला मथुरादास जी के उत्तम संस्कारों के अतिरिक्त अपने मामा लाला गंडामल से भी उत्तम संस्कार मिलने लगे, जिस से उनके गुणों में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। अब आप पसरूर में मामा के यहां रह कर पढ़ने लगे। वहां से आप प्रायः छुट्टियों में ही अपने घर सम्बड़ियाल आया करते थे, और वहां से इधर उधर जाकर अन्य कार्य भी किया करते थे।

१५

दीनों की सहायता

दीन सबन को लखत हैं, दीनहिं लखै न कोय।
जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय॥

दीन सब को देखते हैं, किन्तु दीनों की ओर कोई नहीं देखता। रहीम कवि का कहना है कि जो व्यक्ति दीनों की ओर देखते हैं वह दीनबन्धु के समान हो जाते हैं।

संसार में सेवक अनेक हैं, किन्तु उन में से प्रायः दिखावटी हैं। सच्चे सेवक तो बहुत ही कम हैं। जिन के पास वैभव, यश तथा सामर्थ्य है उनकी सेवा करने को सभी तय्यार रहते हैं, क्यों कि उनसे उनके स्वार्थ की पूर्ति होने की संभावना रहती है। किन्तु निर्धनों की निःस्वार्थ सेवा करने का अवसर आने पर बड़े बड़े सेवा करने वालों का आसन चलायमान हो जाता है। ऐसे व्यक्ति सच्चे सेवक न होकर दिखावटी होते हैं। सच्चे सेवकों की गति निराली होती है। उनको दिखावे अथवा नाम की चिंता नहीं होती और उनको पीड़ितों की सेवा करने का अवसर प्राप्त होने पर असीम आनन्द मिलता है। अंधे आदमी को नेत्र मिलने से, बहिरे को श्रवण शक्ति प्राप्त होने से तथा निर्धन अकिञ्चन को लक्ष्मी का अपार भंडार मिलने से इतना

सुख नहीं मिलता, जितना सुख सच्चे सेवक को सेवा का अवसर मिलने पर होता है। महान् पुरुषों का हृदय जहां कर्तव्य पालन करने के लिए वज्र से भी कठोर हो जाता है, वहां पीड़ितों की सेवा करने तथा दुःखियों के दुःख को दूर करने के लिए मक्खन से भी मुलायम हो जाता है। उनकी भावना सदा ही इस प्रकार की रहती है कि

'अपने दुःख को हंस हंस झेलूं, पर दुःख सहा न जाए।'

नीचे की पंक्तियों में एक ऐसी ही घटना का वर्णन किया जाता है—

वर्षा ऋतु को प्रारम्भ हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ है। चिरकाल से तप्त भूमि की तपिश अभी अच्छी तरह से नहीं बुझ पाई है। वृक्ष नूतन स्नान करके तथा मनोज्ञ आहार पाकर प्रफुल्लित हो कर पथिकों का स्वागत कर रहे हैं। ऐसे समय में एक अश्वारोही अपने अश्व को तेजी से चलाता हुआ प्रकृति देवी के प्राकृतिक सौंदर्य के सम्बन्ध में विचार करता हुआ चला जा रहा है। उस के सुन्दर मुख पर तेज की आभा है, जो उसके चिन्ताकुल होने के कारण पूर्णतया विकसित नहीं हो रही है। वह अपने मन में विचार कर रहा है कि वर्षा ऋतु तथा मातृ हृदय दोनों में कितनी समानता है। वह सोच रहा है कि "जिस प्रकार वर्षाऋतु पृथ्वी के ताप को शान्त कर देती है उसी प्रकार माता भी पुत्र के पीड़ित आत्मा को अपने स्नेह से सींच कर पल भर में शान्त कर देती है। जिस प्रकार वर्षा के आगमन से वनस्पति प्रफुल्लित हो जाते हैं, उसी प्रकार पुत्र माता के आगमन से प्रसन्न हो जाता है। मुझे अपनी माता के रोग का समाचार मिला है और मैं अश्व पर बैठ कर उसे तेजी से भगाता हुआ पसरूर से चला आ रहा हूँ, किन्तु मेरे मन में माता के दर्शन की कितनी अधिक उत्कंठा है।"

पसरूर से घोड़े पर बैठ कर स्यालकोट के मार्ग से सम्बडियाल को जाते हुए सोहनलाल जी इस प्रकार मन ही मन विचार कर ही रहे थे कि सामने कोलाहल सुन कर उनकी विचारधारा टूट गई।

उन्होंने देखा कि एक कृषक अपनी गाड़ी में गेहूँ भरे हुए उन्हें बेचने स्यालकोट ले जा रहा है। एक तंग रास्ते पर उसकी गाड़ी के पहिये की कील निकल गई, जिससे उसकी गाड़ी का पहिया निकल पड़ा। किसान अकेला था तथा गाड़ी भारी थी। अतएव वह बहुत प्रयत्न करने पर भी पहिये को गाड़ी में नहीं लगा पा रहा था। उसी समय पीछे से एक घोड़ा गाड़ी भी आगई। उसमें एक सेठ साहिब यात्रा कर रहे थे। उनको स्यालकोट पहुंचने की शीघ्रता थी।

सेठ साहिब को अपने मार्ग में आते हुए इस विघ्न को देखकर बड़ा भारी क्रोध आया। उन्होंने अपने एक बलिष्ट नौकर को इस प्रकार आज्ञा दी—

"तुम इस गाड़ी की बोरियों को गाड़ी में से खींच कर नीचे सड़क पर डाल दो और फिर खाली गाड़ी को मार्ग में से धकेलते हुए एक ओर हटाकर अपनी घोड़ा गाड़ी को आगे निकाल लो।"

सेठ जी की इस आज्ञा को सुनकर कृषक बोला—

"शाह जी ! ऐसा न करो। इससे तो मैं जीवित ही मर जाऊंगा। इस स्थान पर वर्षा के कारण कीचड़ बहुत है। यदि आप मेरी गेहूं की बोरियों को नीचे डलवा देंगे तो वह भीग जावेंगी, जिससे मेरी बहुत हानि होगी।"

किन्तु किसान के इन कोमल बचनों से सेठ जी के मन में

दया के स्थान पर क्रोध ही अधिक उत्पन्न हुआ। उन्होंने यह सुनते ही कठोर शब्दों में नौकर को आज्ञा दी—

"देखता क्या है ? जल्दी कर।"

यह सुनकर नौकर ने स्वामी की आज्ञानुसार गेहूं की बोरियों को नीचे उतार कर किसान की गाड़ी को एक ओर धकेल दिया। इसके बाद सेठ जी अपनी बग्गी को निकाल कर स्यालकोट की ओर तेजी से चल दिये। उनके इस कृत्य को देखकर बेचारा कृषक दुःखी होकर बोला—

"हे भगवन् ! क्या संसार में निर्धनों का कोई भी रक्षक नहीं है ? यह कितना दुष्ट है कि इसने मेरी गेहूँ की बोरियां कीचड़ में गिरा दीं। प्रभो ! उसे इसके इस अशुभ कर्म का बदला अवश्य देना।"

सोहनलाल जी दूर से इस दृश्य को देखते हुए अपने घोड़े पर बैठे हुए चले आ रहे थे। उनका हृदय इस दृश्य को देखकर करुणा से भर गया। वह किसान की गाड़ी के पास आकर अपने घोड़े से नीचे उतर पड़े और कृषक को सांत्वना देने के लिये उससे बोले—

"भाई ! क्रोध मत करो। क्रोध करने से कोई भी कार्य सफल नहीं होता। यदि तू भी सेठ होता और तेरे पास भी ऐसा बलिष्ट नौकर होता और तेरे स्थान पर यहां किसी और किसान की गाड़ी होती तो ऐसी स्थिति में तू भी यही करता। ऐसी स्थिति में अपने शोक को छोड़कर अपनी गाड़ी को ठीक कर।"

ऐसा कहकर उन्होंने स्वयं अपना हाथ लगाकर प्रथम उस किसान की गाड़ी का पहिया ठीक करवाया। गाड़ी ठीक हो जाने

पर उन्होंने उसकी बोरियां भी उसकी गाड़ी पर लदवादीं। उनके इस व्यवहार को देख कर किसान मन में कहने लगा।

"निश्चय से यह कोई देव है, जो मनुष्य का रूप धारण कर मेरी सहायता करने के लिए आया है।"

यह विचार करते २ किसान का हृदय सोहनलालजी के लिये कृतज्ञता से भर गया। इस समय सोहनलाल जी ने कृषक से कहा

"भाई ! यदि मनुष्य अपना भला चाहता है तो उसे चाहिये कि प्रथम सबका भला चाहे और सबके पश्चात् अपना भला चाहे। ऐसा करने से उसका निश्चय से भला होगा। तुझे तो उस सेठ का भी बुरा नहीं चीत कर उसका भी भला होने की इच्छा करनी चाहिये।"

ऐसा कह कर सोहनलालजी घोड़े पर चढ़ कर धीरे २ कृषक की गाड़ी के साथ चलने लगे। वह थोड़ा ही आगे बढ़े होंगे कि उन्होंने सड़क पर एक डब्बा पड़ा हुआ देखा। डब्बा सोने के आभूषणों से भरा हुआ था। उसे देखकर कृषक की आंखें आनन्द से चमक उठीं। वह प्रसन्न होकर सोहनलालजी से बोला—

"निश्चय से यह डब्बा उसी सेठ का है। मुझे सताने का फल उसको हाथों हाथ मिल गया।"

इस पर सोहनलालजी ने उसको उत्तर दिया।

"भाई ! ऐसी भावना मन में मत रक्खो। जो व्यक्ति दूसरे की हानि को देखकर प्रसन्न होता है वह व्यर्थ ही पाप कर्म का उपार्जन करता है। अपनी इस भावना का उसको अगले जन्म में भी बुरा फल भोगना पड़ता है। वास्तव में तुम्हारी परीक्षा का यही समय है। धर्म का फल सदा मीठा होता है।

सहसा दूसरे का धन पड़ा मिलना मनुष्य जीवन की सच्ची कसौटी है। जिस प्रकार सोने को कसौटी पर कसने पर ही उसके वास्तविक मूल्य का पता लगता है उसी प्रकार मनुष्य की परीक्षा भी ऐसे ही समय होती है। यदि मनुष्य ऐसे समय लोभ के वशीभूत न होकर सत्य पर दृढ़ रहता है तो उसको मनुष्य तो क्या, देवता भी नमस्कार करते हैं।"

इस पर कृषक ने उत्तर दिया

"भाई, मैं तो यह चाहता हूं कि सेठ को उसकी करनी का दंड अवश्य मिले।"

तब सोहनलाल बोले "भाई, यदि तुम सेठ को सच्ची सजा देनी चाहते हो तो यहां से इस डब्बे को लेकर सीधे स्यालकोट पहुंच कर उस सेठ के पास ले जाओ। इस डब्बे में लगे हुए कागज़ से यह पता चलता है कि यह व्यक्ति पाले शाह के यहां जावेगा। तुम पाले शाह के यहां जाकर यह डब्बा उसे देकर कहना कि "तुमने जो व्यवहार मेरे साथ किया है, उसके लिये मैं तुमको क्षमा करता हूं। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूं कि तुम्हें भगवत्कृपा से व्यापार में अच्छी सफलता प्राप्त हो।" तुम्हारे ऐसा कहने से उसके मन में स्वयं ही पश्चात्ताप उत्पन्न होगा, जिससे वह भविष्य में फिर किसी भी निर्धन को कष्ट नहीं देगा।"

सोहनलालजी के मुख से इस प्रकार का उपदेश सुनकर किसान उनको अवतारी पुरुष मानने लगा। उसने उनको उत्तर दिया

"मैं आपके चरणों की शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि आपकी आज्ञानुसार सब कुछ करूंगा।"

सोहनलालजी इस प्रकार कृषक का हृदय परिवर्तन करके आगे को चल पड़े।

उधर सेठजी ने जब स्यालकोट पहुंच कर अपना सामान उतारा तो अपने सामान में जेवर के डब्बे को न पाकर वह बहुत घबरा गए। उन्होंने अपने सारे सामान को कई २ बार देखा, किन्तु डब्बा वहां होता तो मिलता। इस पर सेठजी को नौकर पर सन्देह होने लगा। अतएव वह उसकी डांट डपट करने लगे। किन्तु बेचारा नौकर उनको कहां से डब्बा पकड़ा देता? इस पर सेठजी ने उसे पुलिस में दे दिया, जहां यमदूतों ने उसे अत्यधिक मारा। यद्यपि उसने पुलिस से बार बार कहा कि वह एक दम निरपराध है, किन्तु पुलिस उसे मारती ही रही। इस पर वह मन में सोचने लगा कि "वास्तव में यह मुसीबत में फँसे हुए किसान को सताने का ही फल है।"

नौकर पर मार पड़ रही थी कि किसान ने आकर डब्बा सेठजी को देते हुए कहा—"सेठजी! यह आपका डब्बा है। यह आपके अपनी बग्गी आगे निकालने की जल्दी में गिर पड़ा था।"

सेठ इस दृश्य को देखकर अत्यधिक आश्चर्य में पड़ गया। वह मन में सोचने लगा।

"जिसे मैंने आपत्ति में डाला था, उसी ने मेरी आपत्ति से रक्षा की है।" यह सोचकर उसका हृदय किसान के लिये कृतज्ञता के भावों से भर गया। भावावेश के कारण कुछ समय तक तो उसके मुख से बोल तक न निकला। इसके बाद वह अपनी गद्दी से उठ कर किसान के पैरों में गिर पड़ा और कहने लगा

सेठ—भाई ! तुझे धन्य है। तू मनुष्य नहीं देवता है। तूने आज मेरी आंखें खोल दीं। तेरे उपकार से मैं कभी भी उऋण नहीं हो सकता।"

इस पर किसान ने उत्तर दिया।

किसान—भाई ! यह सब उन घुड़सवार सोहनलाल जी का प्रताप है, जिन्होंने मेरा उस आपत्ति से उद्धार किया है। उन्होंने मुझ से कहा था कि 'दूसरे को दुःख देने वाला अपने लिए दुःख का बीज बोता है तथा दूसरों को सुख देने वाला अपने लिये सुख का बीज बोता है। जो कोई भी निर्धनों तथा आपत्ति में फँसे हुओं को सेवा करता है उसे अवश्य ही सत्य का दर्शन होता है। इसलिये अत्याचार सह कर भी सबका भला चेतना चाहिये।'

किसान के यह शब्द सुनकर सेठजी ने उसी समय थाने में एक आदमी भेजकर अपने नौकर को छुड़वाया। सेठजी ने किसान को बहुत कुछ रुपये देने चाहे, किन्तु उसने रुपये लेने से साफ़ इन्कार कर दिया।

किसान के इस सत्कार्य से उसके गेहूं भी उसी समय तेज़ दामों में बिक गए, जिससे वह प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया।

उधर सोहनलाल जी भी सम्बडियाल में सीधे अपनी माता के पास पहुंचे। पुत्र के कपड़ों को कीचड़ में सने देखकर माता ने उससे पूछा—

माता—क्या बेटा ! तू घोड़े से गिर गया था ?

सोहनलाल—नहीं माता जी।

माता—फिर तेरे कपड़ों में यह कीचड़ किस प्रकार लग गया ?

इस पर सोहनलाल जी ने अपनी माता को किसान तथा सेठ की मार्ग की सारी घटना सुनाकर कहा कि—

"माता ! उस किसान की बोरियां उठवाने में मेरे कपड़ों में कीचड़ लग गया।"

अपने पुत्र की इस प्रकार की उत्कट सेवा भावना को देख कर लक्ष्मीदेवी को उस बीमारी की दशा में भी बड़ा भारी आनन्द हुआ। उन्होंने इस कार्य के लिये अपने पुत्र को खूब शाबाशी दी।

धर्म के प्रताप से माता लक्ष्मीदेवी का रोग भी शीघ्र दूर होगया और वह स्वस्थ हो गई।

इसके कुछ दिनों बाद उन सेठ जी की अचानक सोहनलाल जी से भी भेंट होगई। अब तो उन्होंने सोहनलाल जी के उस आचरण की बड़ी भारी प्रशंसा की।

१६

मित्रों का सुधार

सुधरे शठ पंडित संगति ते, अवनीत कलाधर ते सुधरे।
सुधरे मिल पारस लोह सही, अरु ताम्र रसायन ते सुधरे॥
सुधरे विष औषधि वैदन ते, मलयागर ते तरुआ सुधरे।
सुधरे ठग हिंसक साध थकी, भव कोटि अघा तप ते सुधरे॥

संसार में श्रेष्ठ संगति उसी को माना जाता है, जिससे उन्नति हो। श्रेष्ठ संगति के प्रभाव से पतितों का सुधार होता है। पंडित की संगति प्राप्त होने पर शठ का भी सुधार हो जाता है। कलावान् व्यक्ति की संगति से मूर्ख अविनयी व्यक्ति का भी सुधार हो जाता है। पारस मणि के स्पर्श से लोहा सुधर कर सोना बन जाता है। तांबे के रसायन के चतुर वैद्य के हाथों में जाने पर विष भी अमृत बन जाता है। मलयागिर चन्दन की संगति से साधारण वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं। साधु पुरुष की संगति से ठग तथा हिंसक भी सुधर जाते हैं तथा तप से करोड़ों जन्मों के पाप भी सुधर जाते हैं।

वास्तव में मित्र वही है, जो मित्रों का सुधार करे, उनके हृदय में धर्म की श्रद्धा भरे तथा उनको बुरे मार्ग से हटा कर उत्तम मार्ग पर लगावे। किंतु ऐसे मित्र बड़े भाग्य से ही मिलते हैं। शास्त्रों में लिखा है कि अभयकुमार ने मित्र के नाते ही

अनार्य देशोत्पन्न आर्द्रकुमार को मुनि तथा कालसौकरिक के अभव्य पुत्र को भगवान् महावीर का द्वादशव्रतधारी श्रावक बनाया था। धन्ना सेठ ने शालिभद्र को मित्रता के नाते आदर्श वीरता का पाठ पढ़ा कर उसे भगवान् महावीर स्वामी का शिष्य बनाया था। श्री रामचन्द्र ने मित्रता के नाते ही सुग्रीव के कष्ट को दूर करके तारा के सतीत्व की रक्षा की थी। उन्होंने उसी मित्रता के नाते विभीषण के प्राण बचाने के लिये स्वयं अपने भ्रात लक्ष्मण को काल के मुख में झोंक दिया था। इसी मित्रता के नाते श्रीमद् यती रायचन्द्र जी जैन ने मोहनदास कर्मचन्द गांधी के अन्त:करण स्थित अभिमान को निकाल कर उनको इस योग्य बनाया कि भविष्य में उन्होंने अपने सारे जीवन को देश हित समर्पण कर दिया और जिसके कारण वह विश्वविख्यात अहिंसक तथा स्वराज्य निर्माता बने। ऐसे मित्रों को वास्तव में धन्यवाद है। हमारे चरित्र नायक ने भी इसी प्रकार अपनी पन्द्रह वर्ष की अवस्था में धर्म का उपहास करने वाले अपने अबोध बाल मित्रों को समझा कर उनके हृदय में धर्म का बीज बोया था।

यह पीछे बतलाया जा चुका है कि श्री सोहनलाल जी ने पसरूर आकर स्कूल में नाम लिखा दिया था। जब परीक्षा के दिन आए तो विद्यार्थियों को परीक्षा की तय्यारी का अवसर देने के लिये स्कूल को बंद कर दिया गया। फिर परीक्षा हो चुकने पर परीक्षा फल निकलने के उपरांत स्कूल की अधिक समय के लिए छुट्टी कर दी गई। इस समय परीक्षा फल को देख कर पास होने वाले प्रसन्न हो रहे थे और फेल होने वाले अपने भाग्य को दोष देते हुए रो रहे थे। एक सम्पन्न घराने के विद्यार्थी ने अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के विजयोत्सव के रूप

में अपने सभी सहपाठियों को एक प्रीति भोज में निमंत्रित किया। इस भोज में उसके सभी बालमित्र समय पर पहुंच गए। इन बालकों में हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी भी सम्मिलित थे। आतिथेय ने सभी निमंत्रित बालकों को बड़े प्रेम से भोजन कराया।

भोजन के पश्चात् वह सब के सब एक सजे सजाए कमरे में बैठ कर आमोद प्रमोद करते हुए वार्तालाप करने लगे। इस वार्तालाप में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को बधाई देते हुए एक विद्यार्थी बोला—

"भाई! तुम्हें बधाई है। मैं ने तो इस वर्ष तुम से भी अधिक परिश्रम किया था, किन्तु क्या किया जावे? भगवान् की इच्छा ही ऐसी थी कि मैं फेल हो जाऊं।"

इस पर सभी उसकी हां में हां भरने लगे। किन्तु हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी को उसका यह कथन पसंद नहीं आया और वह उसको सम्बोधित करके कहने लगे—

सोहनलाल—मित्र! तुम भूल करते हो। तुमको अपना दोष दूसरों के ऊपर कभी नहीं डालना चाहिये। अपने इन शब्दों के द्वारा तुम भगवान् पर कलंक लगा रहे हो। भला जो भगवान् सच्चिदानन्द स्वरूप, जगत् पिता, दीनबन्धु, अशरण-शरण तथा अनाथों के नाथ हैं ऐसे करुणानिधान भगवान् किसी का बुरा क्यों चाहने लगे? उनकी क्या तुम्हारे साथ शत्रुता है जो उन्होंने तुमको फेल कर दिया? मित्र! जिस व्यक्ति का उदाहरण तुम दे रहे हो उसकी बुद्धि की तीव्रता तुम से चौगुनी है। यदि तुम उसके समान सफल बनना चाहते हो तो उस से चौगुनी मेहनत करो। फिर देखें, तुमको उतनी ही सफलता कैसे नहीं मिलती?

सोहनलाल जी के इन वचनों को सुन कर उनका एक अन्य मित्र उनकी ओर संकेत करके बोला—

"भाई, यह तो नास्तिक हैं। यह ईश्वर को नहीं मानते।"

इस पर सोहनलाल जी ने उसको उत्तर दिया—

'मित्र ! तुम से यह किसने कहा कि जैनी लोग ईश्वर को नहीं मानते ?'

मित्र—हमारे यहां एक पंडित जी आया करते हैं उन्होंने कहा था।

सोहनलाल—मित्र ! मैं तो समझता हूँ कि आपके पंडित जी को जैन धर्म का किंचित्मात्र भी ज्ञान नहीं है। यदि उनको जैन धर्म का लेशमात्र भी परिचय होता तो वह ऐसी बात कभी भी न कहते।

मित्र—तो क्या जैनी लोग सचमुच ही ईश्वर को मानते हैं ?

सोहनलाल—जैनी लोग ईश्वर को निश्चय से मानते हैं। ईश्वर के अतिरिक्त जैनी लोग पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, अच्छे कर्मों के अच्छे फल तथा बुरे कर्मों के बुरे फल इन सभी को मानते हैं। इतना ही नहीं, जैनी लोग यहां तक मानते हैं कि यह जीव धर्माचरण करता हुआ अपने पाप कर्मों को नष्ट करके आत्मा से परमात्मा बन जाता है। हां, संकट काल उपस्थित होने पर जैनी लोग परमात्मा को दोष न देकर उसे अपने ही पाप कर्म का फल समझ कर उस पाप को नष्ट करने के लिये दुगने उत्साह से प्रभु भक्ति में जुट जाते हैं।

मित्र—अच्छा सोहनलाल ! यह बतलाओ कि जैन लोग बौद्धों में से क्यों पृथक् हुए ?

सोहनलाल—मित्र! यह भी तुम्हारी भ्रांत धारणा है। जैनी लोग बौद्धों में कभी भी सम्मिलित नहीं थे, जो वह उन से अलग होते। उनका बौद्धों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। बौद्धमत को गौतम बुद्ध ने चलाया है, किन्तु जैन धर्म बौद्ध धर्म से भी बहुत पुराना है।

मित्र—मैं ने स्कूल की किताबों में पढ़ा है कि जैन धर्म को महावीर स्वामी ने चलाया था।

सोहनलाल—मित्र! भगवान् महावीर स्वामी से पहिले भी जैन धर्म का प्रचार करने वाले ऋषभदेव आदि तेईस अवतार हो चुके हैं। उन सभी ने जैन धर्म का महावीर स्वामी के समान उपदेश दिया था। वैसे संसार में जैन धर्म सृष्टि के आरम्भ से है।

एक अन्य मित्र—सोहनलाल! तुम्हारे साधुओं के क्या आचार विचार हैं?

सोहनलाल—मित्र! जैन साधु किसी भी जीव की हिंसा नहीं करते। वह कभी असत्य भाषण नहीं करते और न चोरी करते हैं। यहां तक कि यदि दांत कुरेदने के लिये एक तिनके की आवश्यकता भी पड़े तो वह उसे भी बिना पूछे नहीं लेते। वह किसी स्त्री को चाहे वह उनसे बड़ी हो अथवा छोटी अपने को स्पर्श नहीं करने देते और पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। वह अपने पास कौड़ी पैसा कुछ भी नहीं रखते। गर्मी का मौसिम आने पर वह न तो कभी पंखा करते हैं, न खुले मैदान में ही सोते हैं और न स्नान ही करते हैं। सर्दी आने पर वह न तो कभी आग जलाते हैं और न रूईदार वस्त्र रजाई आदि ओढ़ते हैं। वह सदा नंगे पैर तथा नंगे सिर रहते हैं। गृहस्थियों के यहां वह पलंग खाट आदि पर नहीं बैठते। वह किसी धातु के

बर्तन में भोजन नहीं करते, न किसी का न्यौता मानते हैं। यदि उनके लिये कोई खाने पीने की वस्तु बनाई जावे या कोई उनके पास ले आवे तो वह उसको कभी नहीं लेते। वह किसी को भी गाली नहीं देते। कितना ही संकट आने पर भी वह धर्म को नहीं छोड़ते। जो कुछ जप तप वह करते हैं वह पाप कर्मों को नष्ट करने के लिये ही करते हैं। वह ऐसा कोई कार्य नहीं करते, जिससे उनके सदाचार में कमी आवे।

मित्र—आपके साधुओं की और सब बातें तो ठीक हैं, किन्तु वह जो स्नान नहीं करते यह बात मेरी समझ में नहीं आती।

सोहनलाल—क्यों, यह बात समझ में क्यों नहीं आई?

मित्र—स्नान न करने से अपवित्रता बढ़ती है और शरीर मैला रहता है।

सोहनलाल—भाई! शरीर की मलिनता का क्या ठिकाना? इसको कितना भी साबुन अथवा जल से धोया जावे यह शुद्ध नहीं होता। आपको यह विचारना चाहिए कि यह शरीर किस वस्तु का बना हुआ है। यह शरीर रक्त, मांस, पित्त, मल, मूत्र, थूक तथा पीप जैसी गंदी वस्तुओं से भरा हुआ है। इसमें कौनसी वस्तु अच्छी है? इसके ऊपर खाल की एक चादर मात्र ढकी हुई है। यदि उसे उतार दिया जावे तो घृणा के मारे इस शरीर को देखना भी कठिन हो जावे। इसके विषय में एक कवि ने कहा है—

देख मत भूलो बाहिर की सफाई पर।
वर्क सोने का चिपटा है सफाई पर॥

ऐसी अवस्था में शरीर किस प्रकार पवित्र बन सकता है? इसके अतिरिक्त जैन साधु ऐसा कोई सांसारिक कार्य भी नहीं

करते, जिससे उन्हें स्नान करने की आवश्यकता पड़े।

मित्र—सोहनलाल ! यह ठीक है कि शरीर महा अपवित्र है, किन्तु यदि मुनिराज स्नान करलें तो इसमें क्या हानि है ?

सोहनलाल—मित्र ! यह तो एक स्थूल बुद्धि का प्रश्न है। प्रथम बात तो यह है कि स्नान एक शृङ्गार है। दूसरी बात यह है कि स्नान से कामाग्नि प्रदीप्त होती है, इन्द्रियां सतेज होती हैं तथा मन सांसारिक पदार्थों की ओर जाता है, जिस से साधु का मन चंचल हो जाता है, शरीर में ममत्व बढ़ता है और व्रत भंग होता है। तीसरे स्नान में समय का अपव्यय होता है। चौथी बात यह है कि स्नान करने में जल स्थित जीवों की हिंसा होती है। इस प्रकार स्नान करने से आत्मा कर्मपरमाणुओं से और भी अधिक मलिन होता है। इसलिये साधु के लिये स्नान पवित्रता का कारण नहीं, वरन् अपवित्रता का कारण है। इसी लिये जैन साधु आत्मा को उज्वल बनाने के लिये तो यत्न करते हैं, किन्तु शरीर को उज्वल बनाने की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं देते। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध सनातन धर्मी ग्रन्थ पाण्डव-गीता में भी एक सुन्दर श्लोक भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा है—

आत्मानदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥

यह आत्मा रूपी नदी संयम तथा पुण्य का पवित्र तीर्थ है। इसमें सत्य रूपी जल भरा हुआ है। शील रूपी इसके दोनों किनारे हैं। इस में दया की लहरें हैं। हे युधिष्ठिर ! तू ऐसी आत्मा रूपी नदी में

स्नान कर। जल के द्वारा अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती।

मित्र—मित्र ! तुमने बहुत ही सुन्दर उत्तर दिया। वास्तव में यही पवित्रता है। पुराणों में लिखा है कि प्राचीन काल के ऋषि साठ साठ हजार वर्ष तक तप करते थे। ऐसी अवस्था में स्नान तो दूर, उनके शरीर पर पक्षी तक अपने घोंसले बना लेते थे। सोहनलाल ! आज तुमने वास्तव में बहुत ही अच्छी बातें बतलाई। क्या तुम हमको भी अपने गुरुओं के दर्शन करा सकते हो ?

सोहनलाल—क्यों नहीं ? तुम बड़ी प्रसन्नता से उनके दर्शन कर सकते हो। जब तुम उनके पास जाकर उनके दर्शन करोगे और उनसे प्रश्न करके धर्म का स्वरूप समझोगे तो तुमको अत्यधिक प्रसन्नता होगी।

मित्र—अच्छा सोहनलाल ! तुम हमको अपने साधुओं के दर्शन के लिए कब ले चलोगे ?

सोहनलाल—जब कभी यहां आचार्य श्री का आगमन होगा तो मैं आप लोगों को सूचित करके उनके दर्शन कराने आपको अवश्य ले चलूंगा।

मित्र—क्या उनके आने का कोई समाचार है।

सोहनलाल—अभी तो कोई समाचार नहीं है, किन्तु उनका विहार इधर प्रायः हो ही जाता है, जिस से हम लोगों को उनके दर्शनों का लाभ हो जाता है।

•

१७

महासती की भविष्यवाणी

येषां न विद्या न तपो न दानं,
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥
(पञ्चतंत्र)

जिनमें न तो विद्या है, न तप है और जो दान नहीं करते तथा न जिनके शील, गुण अथवा धर्म ही है, वह इस मृत्युलोक में पृथ्वी पर केवल बोझा बन रहे हैं। यद्यपि उनका आकार मनुष्य के जैसा है, किन्तु वास्तव में उनका सभी आचरण पशुओं के समान है।

आज पसरूर नगर के धर्मात्मा पुरुषों के हृदय में उत्साह का समुद्र हिलोरें ले रहा है। उनका मन मयूर ज्ञानामृत की वर्षा के आनन्द में मग्न होकर नाच रहा है। जिसे देखो वही परम विदुषी महासती श्री शेरां जी महाराज के व्याख्यान की प्रशंसा कर रहा है। श्री शेरां जी महाराज ज्ञानामृत की वर्षा कर अनेक भव्य जीवों को सुपथ पर चलाती हुई जिज्ञासुजनों की ज्ञान पिपासा को शान्त करने वाली थीं। वह जैन धर्म के अहिंसा ध्वज को स्थान स्थान पर फहराती हुई अज्ञानियों के

मिथ्यात्व अन्धकारमय अन्तःकरण में ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाश करती थीं। लोग कहते थे कि ऐसा व्याख्यान हमने आज तक कभी भी नहीं सुना। व्याख्यान क्या है अथाह अमृत की वर्षा है। यदि उसकी एक भी बूंद हृदय में उतर गई तो बस बेड़ा पार है। महासती के व्याख्यान की इस प्रकार की प्रशंसा सुन कर पसरूर की जैन तथा जैनेतर जनता उपाश्रय की ओर चली जा रही है। हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी भी इस संवाद को सुनकर इस अमूल्य अवसर से लाभ उठाने के लिये आसन आदि सामायिक के उपकरणों को लेकर घर से निकल कर उपाश्रय में पहुंच गए। उन्होंने वहां जाकर सभी सतियों को विधिसहित सविनय पांचों अंग नमा कर वंदन किया। इसके पश्चात् वह वहां पर उपस्थित सभी भाइयों को 'जय जिनेन्द्र' कह कर सामायिक के व्रत को अंगीकार कर सीप सदृश उपदेशामृत की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ समय के उपरांत महासती निर्दिष्ट समय पर पधारीं। उनके मुख पर ब्रह्मचर्य का अद्भुत तेज चमक रहा था। उनकी शान्त मुद्रा को देखकर विद्वेषी मनुष्यों का हृदय भी शान्त हो जाता था। उन्होंने सुमधुर गंभीर ध्वनि के साथ निम्न प्रकार से मंगलाचरण करके देशना देनी आरम्भ की—

लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरिअत्तं पुणरवि दुल्लहं।
बहवे दसुया मिलक्खुया, समयं गोयम! मा पमायए॥

उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन १०, गाथा १६।

मनुष्य भव पाकर भी अनेक जीव चोर बनते हैं अथवा म्लेच्छ भूमियों में जन्म लेते हैं। इससे आर्यभाव (आर्य भूमि के वातावरण) का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये हे गौतम! तू समय का प्रमाद न कर।

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से प्रश्न किया कि हे भगवन् !

"देवता हो चाहे नारकी, पशु हो चाहे पक्षी यह कोई भी दुःखों के नाशक अक्षय सुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्न नहीं करते। इस अनादि संसार में जीवों की संख्या अनन्त है। उनकी इच्छाएं भी पृथक् पृथक् ही हैं। किन्तु ऐसा होते हुए भी उन सब की एक ही इच्छा है कि हमें सुख मिले। इस विषय में स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध, राजा अथवा रंक सब की एक ही इच्छा है कि हमको सदा सुख मिलता रहे और दुःख हमारे पास भी न आने पावे। वह सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अपने अपने जीवन को सुखी बनाने के लिये प्रयत्न करते रहते हैं, किन्तु उन्हें सुख के स्थान पर मिलता केवल दुःख ही है। हे भगवन् इस का क्या कारण है?"

इस पर भगवान् महावीर स्वामी ने उनको उत्तर दिया—

"हे गौतम! सुख दो प्रकार का है। एक क्षणिक, दूसरा अक्षय। क्षणिक सुख दुःख का उत्पादक है, किन्तु अक्षय सुख दुःख का नाशक है। क्षणिक सुख देव, नरक, तिर्यञ्च तथा मनुष्य इन चारों ही गतियों में सुलभ है। अतएव सब प्राणी उसे ही प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे रहते हैं।"

इस पर गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया

"हे भगवन्! क्या अक्षय सुख सभी गतियों में मिल सकता है?"

इस पर भगवान् ने उत्तर दिया

"अक्षय सुख देवताओं, नारकियों तथा तिर्यञ्चों को नहीं मिल सकता। वह केवल मनुष्यों को ही मिल सकता है।"

गौतम स्वामी—भगवन् ! क्या अक्षय सुख सभी मनुष्यों को मिलता है ?

भगवान्—नहीं, मनुष्य दो प्रकार के होते हैं, एक भोगभूमिज दूसरे कर्मभूमिज। भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले युगलियों की इच्छाएं कल्पवृक्षों द्वारा पूर्ण होती हैं, किन्तु कर्मभूमि वाले पुरुषार्थ करके अपनी आजीविका चलाते हैं। अक्षय सुख इन में से कर्मभूमि वालों को ही मिलना है, भोगभूमि वालों को नहीं मिलता।

गौतम स्वामी—भगवन् ! क्या वह अक्षय सुख कर्मभूमि के सभी निवासियों को मिलता है ?

भगवान्—नहीं, पुरुषार्थी भी दो प्रकार के होते हैं। एक आर्य, दूसरे म्लेच्छ अथवा अनार्य। ३२००० देशों में से केवल २५॥ देश आर्य हैं, शेष अनार्य हैं। अनार्य लोग सब प्रकार के पाप पुण्य तथा धर्म अधर्म से अनभिज्ञ हैं। सो यह अक्षय सुख केवल आर्य देश वालों को मिलता है, अनार्य देश वालों को नहीं।

गौतम स्वामी—भगवन् ! क्या यह अक्षय सुख आर्य देशों के सभी निवासियों को मिलता है ?

भगवान्—नहीं, आर्य देश के मनुष्य भी दो प्रकार के हैं। एक कुल से आर्य, दूसरे कुल से अनार्य। जिनका कुल सदाचारी तथा निरामिषभोजी हो, जिनका व्यापार तथा व्यवहार छलरहित हो तथा जिन में गुरु जनों का आदर सत्कार किया जाता हो, वह आर्य कुल कहे जाते हैं। शेष अनार्य कुल हैं। अक्षय सुख इन में से आर्य कुल वालों को ही मिलता है।

गौतम स्वामी—भगवन् ! संख्या की दृष्टि से तो अनार्यों की संख्या आर्यों से कहीं अधिक है। यदि स्थूल परिमाण से

आर्यों की संख्या आधी भी समझ लें तो भी १२॥। देश आर्य रहे। क्या इन सभी को अक्षय सुख प्राप्त होता है ?

भगवान्—नहीं। आर्य कुल वालों के भी तीन भेद हैं—

मिथ्यात्वी, मिश्र तथा सम्यक्त्वी।

इनमें से उलटी बुद्धि वाले को मिथ्यात्वी कहते हैं। सीधी बुद्धि वाले को सम्यक्त्वी कहते हैं। जैसा कि आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुत स्कन्ध के अध्ययन ५ के उद्देशक ५ में कहा गया है—

'समियं' ति मन्नमाणस्स 'समिया' वा
'असमिया' वा समिया होइ उवेहाए ।

जिसकी श्रद्धा सम्यक् है उसे सम्यक् या असम्यक् दोनों प्रकार की वस्तुएं सम्यक् विचारणा के कारण सम्यक् रूप में परिणत हो जाती हैं। मिश्र अच्छे अथवा बुरे में कोई भेद न समझ कर दोनों को एक समान समझता है। सम्यक्त्वी सही को सही तथा ग़लत को ग़लत मानता है। सो अक्षयसुख मिथ्यात्वी तथा मिश्र को छोड़कर केवल सम्यक्त्वी को ही प्राप्त होता है।

गौतम स्वामी—भगवन्! क्या वह अक्षयसुख सभी सम्यक्दृष्टियों को प्राप्त होता है ?

भगवान्—नहीं। सम्यक्त्वी दो प्रकार के होते हैं—एक व्रती, दूसरे अव्रती। जिनका जीवन मर्यादायुक्त है उन्हें व्रती तथा जिनका जीवन मर्यादाहीन है उनको अव्रती कहते हैं। अक्षय-सुख की प्राप्ति व्रती को ही होती है।

गौतम स्वामी—भगवन्! क्या अक्षयसुख की प्राप्ति सभी व्रतियों को होती है ?

भगवान्—नहीं। व्रती दो प्रकार के होते हैं। एक देशव्रती

दूसरे सर्वव्रती। व्रतों को एक देश पालने वाले गृहस्थ को देशव्रती तथा व्रतों का पूर्णतया पालन करने वाले मुनियों को सर्वव्रती कहा जाता है। सो अक्षयसुख सर्वव्रती को ही मिलता है।

गौतम स्वामी—भगवन्! क्या सभी सर्वव्रती अक्षयसुख को प्राप्त करते हैं?

भगवान्—नहीं। सर्वव्रती दो प्रकार के होते हैं। एक पडवाई, दूसरे अपडवाई। व्रतों को तोड़ने वाले पडवाई तथा प्राण देकर भी नियम की रक्षा करने वालों को अपडिवाई कहा जाता है। सो अक्षयसुख अपडिवाई को ही मिलता है।

गौतम स्वामी—भगवन्! क्या सभी अपडिवाई साधुओं को अक्षयसुख मिलता है?

भगवान—नहीं। अपडिवाई दो प्रकार के होते हैं। एक कषायी, दूसरे अकषायी। जिस साधु में क्रोध, मान, माया या लोभ में से कोई भी कषाय हो उसे कषायी तथा कषायरहित को अकषायी कहते हैं। अक्षयसुख अकषायी को ही प्राप्त होता है।

गौतम स्वामी—भगवन्! क्या सभी अकषायी साधुओं को अक्षय सुख प्राप्त होता है?

भगवान—नहीं। अकषायी दो प्रकार के होते हैं। एक सर्वज्ञ, दूसरे छद्मस्थ। अक्षय सुख सर्वज्ञ को ही प्राप्त होता है, छद्मस्थ को नहीं।

भगवान् महावीर तथा गौतम स्वामी के इस संवाद का वर्णन करके महासती शेरां जी ने अपने श्रोताओं से कहा—

"इस प्रकार अक्षय सुख की प्राप्ति अत्यंत कठिन है। उसकी प्राप्ति असंख्यात प्राणियों में से किसी एक को ही होती है। अतएव सज्जनों! उसकी प्राप्ति के लिये व्रती जीवन धारण करके

बराबर यत्न करते रहो। उसमें एक समय मात्र का भी प्रमाद मत करो। यह अवसर बार-बार नहीं मिलता। यदि आप इस अवसर का लाभ नहीं उठाओगे तो अन्त में आपको उसी प्रकार महान् पश्चात्ताप करना पड़ेगा जिस प्रकार एक अन्धे ने किया था।

"एक किला बिल्कुल निर्जन था। उसमें किसी प्रकार एक अंधा पुरुष घुस गया। जब उसे अंदर कोई भी अन्य पुरुष नहीं मिला तो वह बाहिर निकलने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु उस किले में से बाहिर निकलने का एक ही द्वार था। बहुत कुछ भटकने के बाद उसके हाथ किले की दीवार लग गई। उसने विचार किया कि जब दीवार मिली है तो उसमें द्वार भी होगा। अतएव वह एक हाथ में लाठी पकड़े हुए तथा दूसरे से कोट की दीवार छूता हुआ आगे बढ़ने लगा। चलते चलते वह दरवाजे के पास आ गया। उसे खुजली की बीमारी थी। अतएव खाज उठने पर वह दीवार से हाथ हटा कर खुजाते २ चलने लगा। उसके खुजाने खुजाने में ही दरवाजा निकल गया। अब उसको उसी प्रकार सारे किले का फिर दुबारा चक्कर लगाना पड़ेगा। और यदि फिर उसने ऐसी गलती की तो उसको किले का तीसरा चक्कर भी लगाना पड़ेगा। उस अंधे के समान ही यह जीव भी है। यह संसार उस एक द्वार वाले किले के समान है। उसमें मनुष्य जन्म द्वार के समान है। किन्तु यह जीव मनुष्य जन्म पाकर भी विषय की खुजली खुजाने में ही इसको निकाल देता है। यदि तुमने भी इस मनुष्य जन्म को इसी प्रकार विषय सुखों का उपभोग करने में निकाल दिया तो फिर चौरासी लक्ष योनियों में चक्कर लगाना पड़ेगा। वास्तविक कल्याण फिर भी मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर ही हो सकेगा। ऐसा समझ कर धर्म कार्य में

समय मात्र का भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।"

महासती शेरां जी के इस व्याख्यान को सुन कर श्रोतागण मुग्ध हो गए। श्री सोहनलाल जी भी महासती के व्याख्यान को एकाग्र चित्त से सुन रहे थे। इतने में महासती की दृष्टि उनके पैर में चमकते हुए शुभ लक्षणों पर पड़ी। उन लक्षणों को देख कर महासती जी को इतना हर्ष हुआ कि वह उसको अपने मन में दबा न सकीं अथवा सोहनलाल जी के विशाल पुण्य ने उनको मौन न रहने दिया। उन्होंने सोहनलाल जी से कहा।

"सोहनलाल ! तुम्हारे पैर के लक्षणों से पता चलता है कि तुम सम्पूर्ण जैन समाज में एक प्रधान आचार्य बनकर स्थान स्थान पर जैन धर्म की विजय पताका फहराते हुए ज्ञानगरिमा-युक्त कुछ ऐसे महान् एवं अलौकिक कार्य करोगे कि जिसके कारण तुम्हारी यशदुन्दुभि की ध्वनि कई शताब्दियों तक सुनाई देती रहेगी।"

महासती शेरां जी महाराज के मुख से इस भविष्यवाणी को सुन कर समस्त उपस्थित जनता को परम हर्ष हुआ और वह महासती तथा सोहनलाल जी की प्रशंसा करती हुई यथा शक्ति व्रत नियम अंगीकार करके अपने २ घर गई।

१८

मामा जी के कार्य में सहायता

इमेणमेव जुज्झाहि ।
किं ते जुज्झेण बज्झओ ?
जुज्झारिहं खलु दुल्लहं ।

आचारांग सूत्र, प्रथम श्रुत स्कन्ध, अध्ययन ५, उद्देशक ३

इस शरीर से युद्ध करो । बाह्य युद्धों से तुम्हें क्या ? युद्ध के योग्य शरीर मिलना कठिन है ।

महापुरुष का जीवन एक अद्भुत जीवन होता है । वह जहां भी पदार्पण करते हैं वहीं अपने मंगलमय आचरण से स्वर्ग का दृश्य उपस्थित कर देते हैं । सोहनलाल जी पन्द्रह वर्ष की आयु में पसरूर गए थे, किन्तु बाल्यावस्था होते हुए भी आपने अपके सद्गुणों के द्वारा अल्प समय में ही सब के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया । आप प्रतिदिन प्रातःकाल उठ कर अपने सभी कार्यों को अपने हाथों से किया करते थे । नित्य कर्म से निवृत्त होकर आप मामा जी तथा मामी जी को नमस्कार किया करते । इसके उपरांत आप धार्मिक क्रिया किया करते थे । इतना कार्य करने पर आप जलपान करके स्कूल जाया करते थे । स्कूल में भी आप अपने

सहपाठियों के साथ अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार किया करते थे, जिससे उनके मित्रों की संख्या भी शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बराबर बढ़ती जाती थी। स्कूल का कार्य समाप्त कर आप मामा जी के निजी कार्य में भी चतुरतापूर्वक सहायता किया करते थे। मामा जी भी आपकी प्रखर बुद्धि को विकसित करने के लिए आप से अनेक कठिन कार्यों में परामर्श किया करते थे।

एक बार आपके मामा जी ने अपने घर के बाहिर एक चबूतरा बनवाने का विचार किया। वह स्थान कमैटी का था। उन दिनों कमैटी का अध्यक्ष एक मुसलमान था, जो गंडे शाह का विरोधी था। उसका कहना था कि कुछ भी हो, किन्तु मैं चबूतरा नहीं बनने दूंगा तथापि बाह्य शिष्टाचार में वह कोई त्रुटि नहीं होने देता था। एक बार मामा जी ने सोहनलाल जी से कहा—

मामा जी—सोहनलाल! यह बतलाओ कि चबूतरा किस प्रकार बन सकता है? यदि बनवाता हूँ तो मुसलमान अध्यक्ष विघ्न उपस्थित करेगा और नहीं बनवाता हूं तो सारा नगर यही कहेगा कि 'अध्यक्ष से डर गए'। अतएव तुम यह बतलाओ कि इस काम को किस प्रकार किया जावे।

इस पर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

सोहनलाल—मामा जी! चबूतरा तो बड़ी आसानी से बन सकता है और क्लेश भी उसमें नहीं होगा।

मामा जी—सो कैसे?

सोहनलाल—वह मियां जी तो कभी कभी हमारे यहां आते ही रहते हैं। अब की बार जब वह हमारे यहां आवें तो आप उन से कह दें कि 'भाई साहिब! अन्दर बैठने से आने जाने

वालों को बड़ी दिक्कत रहती है। इसलिये मेरा विचार है कि उनकी दिक्कत दूर करने के लिये एक बड़ा चबूतरा बनवा दूं। इसमें आपकी क्या सम्मति है ?' सो वह शिष्टाचार के नाते अवश्य यही कहेंगे कि 'हां, हां, जरूर बनवा लो।' फिर आप उनसे यह भी पूछिये कि चबूतरा कितना बड़ा तथा कहां तक बनवाया जावे। इस प्रश्न पर वह निश्चय से टालमटोल करेंगे। किन्तु आप उनको विवश कर दें कि वह अपनी ही छड़ी से लाइन खेंच दें कि यहां तक बनवाना ठीक रहेगा। उनके लाइन खींचने पर आप इस काम को भी उनके ही ऊपर डाल दें और कहें कि 'मेहरबानी करके आप ही इस काम को करादें। क्योंकि आप भी तो भाई ही हैं। क्या आप इतनी सहायता भी न करेंगे ?' बस वह आपकी इस प्रकार की सज्जनता देखकर पानी पानी हो जावेंगे और विरोध करना बंद कर देंगे।

सोहनलाल के मुख से यह शब्द सुन कर मामा जी बहुत प्रसन्न हुए। इसके पश्चात् उन्होंने इसी सम्मति के अनुसार कार्य भी किया, जिसमें उनको आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार सोहनलाल जी अपने मामा जी की कठिन कार्यों में भी सहायता किया करते थे।

घर के दैनिक कार्यों पर ध्यान रखते हुए वह बिना कहे सुने उनको अत्यंत उत्साह के साथ सुचारू रूप से किया करते थे। इस प्रकार सोहनलाल जी अपने अद्भुत कार्यों से अपनी यश दुन्दुभि बजाते हुए यह सिद्ध कर रहे थे कि वह एक यशस्वी पिता के यशस्वी पुत्र हैं।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

१६

सर्राफे की दूकान

एस मग्गे आरिएहिं पवेइए।
उट्ठिए नो पमायए॥

आचारांग सूत्र प्रथम श्रुत स्कन्ध, अध्ययन ५, उद्देशक २

आर्यों ने यही मार्ग बतलाया है कि एक बार उद्यत होकर फिर प्रमाद न करे।

सोहनलाल जी को पसरूर आए हुए पांच वर्ष हो गए। इस बीच वह बराबर स्कूल में पढ़ते हुए भी अनेक कार्यों में अपनी प्रतिभा का परिचय देते रहे, जिससे सारा परिवार उनकी दिन प्रति दिन होती हुई धर्मश्रद्धा को देख कर अत्यधिक प्रसन्न रहता था। इन पांच वर्षों में सोहनलाल जी ने घर बाहिर सभी के हृदय पर विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था।

किन्तु अब सोहनलाल जी की आयु लगभग बीस वर्ष की हो गई थी। अतएव उनके मामा जी को यह चिन्ता रहने लगी थी कि उनको स्कूल से उठा कर किसी कार्य में डाला जावे। अस्तु एक दिन उन्होंने सोहनलाल जी से इस प्रकार वार्तालाप किया

मामा जी—सोहनलाल! तुम यह जानते ही हो कि गृहस्थ में रहते हुए गार्हस्थ कर्तव्यों को पूर्ण करने के लिये शुद्ध आजीविका

की कितनी बड़ी आवश्यकता है ?

सोहनलाल—मामा जी ! मैं ने नीतिग्रन्थों में पढ़ा है कि जो गृहस्थ न्याय नीति पूर्वक कमाए हुए अपने धन को नित्य प्रति दान आदि सत्कार्यों में व्यय करते हैं वह महापुरुष प्रशंसनीय तथा वंदनीय हैं। किन्तु जो मनुष्य समर्थ होने पर भी पुरुषार्थ को त्याग कर अपने पूर्वजों की उपार्जित सम्पत्ति का अपव्यय करते हुए विषयानन्द में लीन रहते हैं उनका जीवन मृतक तुल्य एवं निन्दनीय है।

सोहनलाल जी के उस छोटी सी आयु में ही ऐसे प्रशंसनीय विचार सुन कर लाला गंडा मल अत्यंत प्रसन्न हुए और कहने लगे

गंडा मल—वत्स ! तुम अपने लिये कौन सा व्यापार ठीक समझते हो ?

सोहनलाल—मामा जी ! जिस व्यापार में कम से कम आरम्भ हो तथा जिसके कारण देश जाति तथा समाज का अहित न हो सके तथा जिसमें प्रामाणिकतापूर्वक कार्य करने पर किसी के लाभ में अंतराय न डलते हुए जीवन निर्वाह योग्य उचित लाभ हो उसी व्यापार को करना मैं पसंद करता हूं।

मामा जी—तो बेटा तुम्हारी समझ में ऐसा व्यापार कौन सा है ?

सोहनलाल जी—मामा जी ! मेरी समझ में सर्राफा ऐसा ही व्यापार है।

मामा जी—किन्तु सर्राफे में अत्यंत चतुरता की आवश्यकता है। उसमें लेशमात्र भी ग़लती होने पर सहस्रों रुपये की हानि हो सकती है। इस व्यापार में प्रलोभनों की भी कोई कमी नहीं है।

नैतिक पतन की संभावना तो पग पग पर बनी रहती है।

सोहनलाल—आपश्री के आशीर्वाद से मुझे पूर्ण आशा है कि मैं सभी कठिनाइयों को पार कर इस व्यापार में सफलता प्राप्त करूंगा।

इस प्रकार सोहनलाल का कार्य करने का उत्साह तथा सर्राफे के सम्बन्ध में उनकी दृढ़ता देख कर लाला गंडा मल के सारे परिवार ने निश्चित किया कि उनको सर्राफे के व्यापार की प्रारम्भिक शिक्षा दी जावे।

अस्तु एक शुभ महुर्त में उनको सर्राफे की दूकान पर काम सीखने के लिये बिठला दिया गया। अब श्री सोहनलाल जी के हाथों में कसौटी शोभा देने लगी। उस समय यह किसी को भी आशा नहीं थी कि जो व्यक्ति आज कसौटी पर कस कर सुवर्ण की परीक्षा कर रहा है उसी का जीवन भविष्य में धार्मिक कसौटी पर कसा जावेगा तथा वह उस परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सम्पूर्ण जैन समाज के मस्तक का मुकुट मणि बन कर दशों दिशाओं में अपनी यश ज्योति को प्रकाशित करेगा।

सोहनलाल जी ने सर्राफे की दूकान पर बैठ कर प्रथम इस बात पर ध्यान दिया कि ग्राहकों के साथ प्रेमपूर्ण तथा सच्चाई का व्यवहार किया जावे। साथ ही वह एकाग्र चित्त से विलक्षणता के साथ सुवर्ण परीक्षा के कार्य को भी सीखते जाते थे। सुवर्ण परीक्षा में निष्णात हो जाने पर उन्होंने इस बात का ज्ञान प्राप्त किया कि इस प्रान्त में कौन कौन से आभूषण अधिक प्रचलित हैं तथा उनके बनाने वाले कहां कहां रहते हैं। इस प्रकार सर्राफे के सम्बन्ध में सभी बातों पर पूर्ण ध्यान रखते हुए वह एक वर्ष के भीतर व्यापार के सभी कार्यों में अत्यन्त निपुण हो गए।

जब सोहनलाल जी व्यापार कार्य में पूर्णतया निपुण हो

गए तो लाला गंडामल उनको साथ लेकर एक बार सम्बडियाल गए। मोहनलाल जी ने वहां जाते ही अपने माता पिता के चरणों में मस्तक झुका दिया। इसके बाद लाला गंडा मल बोले—

"मथुरादास जी! मैंने सोहनलाल को स्कूल से उठा कर अब सर्राफे के कार्य की पूर्ण शिक्षा दे दी है। लड़का न केवल बुद्धिमान् है, वरन् अब यह सत्यनिष्ठ, धार्मिक एवं कुशल व्यापारी भी बन गया है। वास्तव में यह लड़का आपका पुत्ररत्न है।"

लाला गंडा मल के मुख से पुत्र की अतीव प्रशंसात्मक गुण गाथा सुन कर माता लक्ष्मीदेवी तथा पिता मथुरादास जी का रोम रोम हर्ष से पुलकित हो उठा। उन्होंने हर्षपूरित गद्गद् वाणी से कहा—

"बेटा! हमको तुमसे ऐसी ही आशा थी। हमारे अन्तःकरण से यही ध्वनि निकल रही है कि भविष्य में तुम अपने गुण गरिमा से अपने कुल के कीर्ति को शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बराबर बढ़ाते ही रहो।"

अपने पिता के यह शब्द सुन कर सोहनलाल जी ने दोनों हाथ जोड़ कर नम्र वाणी से उत्तर दिया।

"पिता जी! यह सब आपके चरणों का ही प्रताप है। माता पिता की दृष्टि में तो पुत्र सदा ऊंचे से ऊंचा ही बना रहता है।"

इसके पश्चात् लाला गंडा मल ने मथुरादास जी से पूछा—

गंडा मल—"शाह जी! सोहनलाल व्यापार कार्य में पूर्ण चतुर बन ही गया है। अस्तु अब इसके विषय में आपका क्या विचार है?"

मथुरादास—अब इस विषय में विचारना क्या? अब तो

इसको दूकान करवा ही देनी चाहिये। अब तो प्रश्न यह है कि यह दूकान के लिये सम्बडियाल और पसरूर में से किस को पसन्द करता है।

गंडा मल—दूकान तो इसको पसरूर में ही करनी चाहिये।

मथुरादास—तो मैं आपकी आज्ञा से बाहिर थोड़े ही हूं। इसके अतिरिक्त सम्बडियाल की अपनी सर्राफे की दूकान पर हमको घाटा भी हो रहा है। इसलिये इसका पसरूर में दूकान खोलना ठीक रहेगा।

अस्तु, इसके कुछ ही दिन बाद सोहनलाल जी को पसरूर में सर्राफे की स्वतंत्र दूकान खुलवा दी गई।

२०

द्वादश व्रत ग्रहण करना

से बेमि से जहा वि, कुम्मे हरए विनिविट्ठचित्ते ।
पच्छन्न-पलासे उम्मग्गं, से नो लभइ ॥

आचारांग सूत्र प्रथम श्रुत स्कन्ध, अध्ययन ६, उद्देशक १

जिस प्रकार शैवाल तथा पत्तों से ढके हुए सरोवर में आसक्त कछुवा कभी ऊपर नहीं आ सकता, उसी प्रकार संसार में फंसे हुए अज्ञानी जीव भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते ।

संवत् १९२५ विक्रमी का चातुर्मास्य समाप्त करके श्री पूज्य आचार्य अमरसिंह जी महाराज स्यालकोट निवासी रलाराम ओसवाल को दीक्षित करके पसरूर पधारे। ऐसे महान् पुरुषों के दर्शन करने तथा उनकी अमृतमयी वाणी को सुनने का अवसर किसी किसी नगर के निवासियों को ही प्राप्त होता है। फिर उस नगर के सौभाग्य का वर्णन तो किस प्रकार किया जा सकता है, जहां आचार्य सम्राट् श्री सोहनलाल जी महाराज का लालन पालन हुआ हो तथा जो पंजाब केसरी पूज्य श्री काशी राम जी महाराज की पवित्र जन्म भूमि हो। पूज्य अमरसिंह जी महाराज के पधारने से पसरूर के श्रावकवर्ग में एक अपूर्व उत्साह की लहर फैल गई। उन्होंने इस अमूल्य अवसर से

अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए महाराज श्री की सेवा में बैठ कर ज्ञानार्जन करने का निश्चय किया। महाराज श्री ने भी श्रावकवर्ग की इस ज्ञान पिपासा को शान्त करने के लिए ओजस्विनी भाषा में निम्न प्रकार से देशना देनी आरम्भ की—

जा जा वच्चइ रयणी,न सा पडिनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन १४, गाथा २४

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन १४, गाथा २५

हे भव्य प्राणियों! जगदोद्धारक मोक्षमार्गप्रदर्शक भगवान् महावीर स्वामी ने सम्पूर्ण जीवों के कल्याण के लिए एक अमूल्य उपदेश देते हुए कहा है कि "हे प्राणी! समय अमूल्य है। जो दिन रात निकल जाता है वह फिर कभी लौट कर वापिस नहीं आता। तब ऐसे छोटे समय वाले जीवन में अधर्म करने वाले का जीवन बिलकुल निष्फल चला जाता है।" "जो दिन रात निकल जाता है वह फिर कभी लौट कर वापिस नहीं आता। किन्तु सद्धर्म का आचरण करने वाले का वह समय सफल हो जाता है।"

इस प्रकार जो क्षण बीत गया वह फिर नहीं लौट सकता। तुम्हारे अमूल्य जीवन की एक एक कड़ी बिखर रही है। जो प्राणी इस समय को प्रमाद में नष्ट करता है उसका समय निष्फल जाता है। जो समय बीत गया वह तो धर्मात्माओं को भी पुनः वापिस नहीं मिलता, किन्तु जो समय धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत किया जाता है वही सफल होता है। अतएव तुम कायरता को दूर करके

चारित्र को धारण करो तथा सच्चे धर्मवीर बन कर मोक्षमार्ग के पथ पर आगे बढ़ो। भगवान् ने कहा है

दुरणुचरो मग्गो वीराणं अनियट्टगामीणं।

मोक्ष मार्ग के पथिकों ! वीरों का मार्ग अत्यन्त कठिन है। उस पर कायर नहीं चल सकता।

'कर्मफल अवश्य प्राप्त होता है' ऐसा जान कर तत्वज्ञ पुरुषों को चाहिये कि वह कर्म बंधन के कारणों से दूर रहें। यदि कर्म बंधन के कारणों को सर्वथा दूर न कर सको तो कम से कम अमर्यादित जीवन तो व्यतीत न करो, क्यों कि अव्रती का द्रव्य भी अनन्ता है। जो व्रतों को अंगीकार करता है वह अपने आत्मा में अनंतकाल से अविरल गति से आती हुई कर्मवर्गणाओं को रोक देता है। इसलिए अपने जीवन में कुछ न कुछ व्रत 'अवश्य लेने चाहियें'।"

पूज्य अमरसिंह जी महाराज इस प्रकार का चमत्कारपूर्ण व्याख्यान दे कर चुप हो गए। उसको सुन कर जनता आनन्द से पुलकित हो उठी। उसमें से अनेक ने यथाशक्ति अनेक प्रकार के नियम लिए। लोग इस प्रकार नियम ले ही रहे थे कि उनके बीच में से सोहनलाल जी उठ कर खड़े हो गए। और उन्होंने गुरु महाराज से कहा--

सोहनलाल—गुरुदेव ! धन्य है आपको, जो आप हम जैसे पतितों का भी उद्धार करने के लिए प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकार की परीषहों को सहते हुए ग्रामानुग्राम विहार कर रहे हैं। गुरुदेव ! आपने जो भगवान् महावीर स्वामी की वाणी सुनाई वह सत्य है। किन्तु गुरुदेव ! मेरी इतनी शक्ति नहीं है। यद्यपि मेरे मन में बार बार यह विचार आते हैं कि जिस प्रकार अनेक महान् वीर पुनीत आत्माओं ने अन्तरंग तथा बाह्य परिग्रह का

परित्याग कर आप श्री के चरणों में दु:खमोचिनी भगवती दीक्षा अंगीकार की है उसी प्रकार मैं भी करूं, किन्तु गुरुवर ! मैं चाहता हूं कि अभी मैं आप श्री के समक्ष गृहस्थ के द्वादश व्रतों को अंगीकार करूं ।

सोहनलाल जी के यह वचन सुन कर आचार्य महाराज बोले–

"सोहनलाल ! तुमने अभी अभी युवावस्था में प्रवेश किया है। अभी तुम्हारा विवाह भी नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में क्या तुम अपनी सम्पूर्ण आयु भर इन नियमों का पूर्णतया पालन कर सकोगे ?"

इस पर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया—

"गुरुदेव! जिस व्यक्ति पर आप जैसे महापुरुष की कृपादृष्टि हो तथा द्वादशव्रतधारी माता पिता तथा मामा मामी के समागम का जिसे सुयोग मिला हुआ हो वहां इन व्रतों का आयुपर्यंत पालन करना असम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त गुरुदेव ! यद्यपि मैं आपका सबसे छोटा शिष्य हूं, किन्तु मैं व्रतों के पालन में पीछे नहीं हटूंगा। मैं किए हुए प्रण की रक्षा प्राण देकर भी करूंगा। प्राण जा सकते हैं, किन्तु प्रण नहीं जावेगा।"

सोहनलाल जी के मुख से इस उत्तर को सुन कर गुरु महाराज को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनको विश्वास हो गया कि सोहनलाल को न केवल व्रत ग्रहण करने की तीव्र लालसा है, वरन् उसमें उनका पालन करने योग्य अटल धैर्य भी है। तब वह सोहनलाल से बोले

"अच्छा सोहनलाल ! हम तुम्हारी व्रत ग्रहण करने की तीव्र लालसा को देख कर तथा उनका पालन करने के लिए तुम्हारे उत्साह को देख कर तुम को श्रावक के बारह व्रत देते हैं।

आज से तुम अहिंसाणुव्रत का पालन करते हुए स्थावर जीवों की हिंसा कम से कम करते हुए त्रस जीवों की हिंसा तथा सब प्रकार की संकल्पी हिंसा का परित्याग करो। यह पहला स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत है। सत्याणुव्रत का पालन करते हुए तुम व्यापार आदि में कम से कम असत्य का प्रयोग करना। यह स्थूल मृषावाद विरमण व्रत है। अचौर्याणुव्रत का पालन करने के लिए तुम जल तथा मिट्टी के अतिरिक्त किसी के द्वारा बिना दी हुई कोई वस्तु न लेना। यह तीसरा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत है। ब्रह्मचर्याणुव्रत का पालन करने के लिए तुम अपने शरीर संस्कार के लिए शरीर को सजाने के अतिरिक्त विवाह होने तक स्त्री मात्र में माता तथा बहिन की भावना रखना। यह चौथा स्वदारसंतोष परदारविरमण व्रत है। परिग्रह का परिमाण करके परिग्रहपरिमाण अणुव्रत का पालन करना। यह श्रावक के पांच अणुव्रत हैं।

इन पांच अणुव्रतों के अतिरिक्त निम्नलिखित तीन गुणव्रतों का पालन करना—

१. दिशिपरिमाण व्रत—चारों दिशाओं में जाने के लिए यह तय कर लेना कि अमुक दिशा में मैं यावज्जीवन इतनी दूरी तक ही जाऊंगा आगे न जाऊंगा।

२. भोगोपभोगपरिमाण व्रत—अपने भोग तथा उपभोग योग्य वस्तुओं का नित्य परिमाण कर लेना कि अमुक वस्तु का सेवन आज अथवा इस मास अथवा इस वर्ष में करना है शेष का नहीं। इसमें खोटे व्यापार के पन्द्रह कर्मादानों का भी त्याग करना।

३. अनर्थदंड विरमण व्रत—दूसरों को हिंसा कार्य आदि

पाप कर्मों का उपदेश, भूमि कुरेदना आदि व्यर्थ के कार्यों को न करने की प्रतिज्ञा करना।

इन तीन गुणव्रतों के अतिरिक्त निम्नलिखित चार शिक्षा व्रतों का भी पालन करना—

१. सामायिक व्रत—प्रातः सायं कुछ समय के लिये नियम पूर्वक सांसारिक सावद्य कार्यों का त्याग करके अपना समय साधु सेवा, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, जप अथवा ध्यान आदि धर्म कार्यों में लगाना।

२. देशावकाशिक व्रत—छटे दिशि परिमाण व्रत में जो यावज्जीवन परिमाण किया है उस में प्रति दिन, प्रति मास अथवा प्रति वर्ष कुछ न कुछ और संकोच करते रहना।

३. पौषध व्रत—अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा अथवा अन्य किसी दिन चारों प्रकार के आहार का त्याग कर शृङ्गार न करते हुए समस्त दोष से निवृत्त होकर अष्ट प्रहर अथवा कम से कम चार प्रहर तक धर्म ध्यान में लगे रहना।

४. अतिथिसंविभाग व्रत—साधुओं को शुद्ध आहार पानी यथाशक्ति नियमपूर्वक नित्य देते रहना।

यह श्रावक के बारह व्रत हैं। आज मैं तुमको इन बारह व्रतों का नियम देता हूं।

सोहनलाल—मैं गुरु चरणों की साक्षीपूर्वक इन बारहों व्रतों को ग्रहण करता हूं और प्रतिज्ञा करता हूं कि इनका यावज्जीवन निर्वाह करूंगा।

सोहनलाल जी के इन शब्दों को सुन कर उपस्थित जनता ने गुरु तथा शिष्य दोनों की ही मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। उनमें से एक बोला

"धन्य है इन पवित्र आत्माओं को, जिन्होंने सभी के लिये एक आदर्श उपस्थित किया है।"

इस पर आचार्य महाराज ने सोहनलाल जी से कहा

"अच्छा सोहनलाल ! अब तो तुमने व्रत ग्रहण कर लिये। अब तुम प्रथम रमणीक बन कर बाद में अरमणीक मत बनना।"

इस पर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

"गुरुदेव ! जिस उपवन को समय पर पानी मिल जाता है वह कभी भी अरमणीक नहीं होता, वरन् बराबर फूलता फलता रहता है। इसी प्रकार जब आप जैसे पवित्र आत्मा मेरे जैसे नवीन अंकुर का अपनी अमृतमय वाणी से सिंचन करती रहती है तो यह शिष्य किस प्रकार अरमणीक बन सकता है ?

इस प्रकार सोहनलाल जी श्रावक के द्वादश व्रतों को अंगीकार करके उनका निरतिचारपूर्वक पालन करते हुए प्रतिदिन दोनों समय प्रतिक्रमण तथा सामायिक करने लगे। वह एक मास में चार पौषध भी किया करते थे। इस प्रकार वह शुद्ध भावना में अपना समय व्यतीत करने लगे। यह घटना संवत् १९२५ की है।

२१

स्वधर्मीवत्सलता

निःसंकिए निःकंखिए निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठिए।
उववूहे थिरिकरणे वत्सलपभावणा अट्ठ ॥

पन्नवणा सूत्र।

भगवान् महावीर स्वामी ने संसार के भव्य जीवों के कल्याणार्थ अमूल्य उपदेश देते हुए कहा है कि हे प्राणी! सम्यक्त्व के बिना आत्मा का कल्याण न आज तक किसी ने किया है, न कोई कर रहा है और न कोई करेगा। अतएव सम्यक्त्व को समझना तथा समझ कर उसे ग्रहण करना अत्यंत आवश्यक है।

सम्यक्त्व के आठ मुख्य अंग हैं—

१. जिनेन्द्र भगवान् के वचन में शंका न करने को निःशंकित अंग कहते हैं।

२. धर्म से संसार सुख के भोगों की आकांक्षा न करने को निःकांक्षित अंग कहते हैं।

३. ऐसे कार्य करना जिससे प्रायश्चित्त आदि से आत्मा की चिकित्सा करनी पड़े। उसे निर्विचिकित्सा अंग कहा जाता है।

४. अन्य मिथ्यादृष्टियों के चमत्कार आदि देख कर धर्म से विचलित न होना अमूढ़दृष्टि अंग है।

५. साधर्मी भाइयों के दोषों पर दृष्टि न रखते हुए उनके गुणों को ग्रहण करना सम्यक्त्व का उपगूहन अंग है।

६. धर्म से विचलित आत्माओं को धर्म में दृढ़ करना स्थितिकरण अंग है।

७. साधर्मी जनों के साथ ऐसा प्रेम करना जैसा गौ अपने बच्चे से करती है इसे स्वधर्मीवत्सलता अथवा वात्सल्य अंग कहते हैं तथा

८. ऐसे कार्य करना, जिन से धर्म, जाति तथा देश का गौरव हो इसे सम्यक्त्व का प्रभावना अंग कहा जाता है।

सम्यक्त्व के इन आठ अंगों में स्वधर्मीवत्सलता एक प्रधान अंग है। किन्तु इस अंग का पालन करना बहुत सुगम नहीं है। जो उदार हो, जिसके हृदय में विशालता, धर्मप्रियता तथा धर्म में दृढ़ रहने का निश्चय हो, जिसकी दृष्टि क्षुद्र न हो तथा जो गम्भीर हो ऐसे लोकोत्तर गुणों के धारक व्यक्ति ही स्वधर्मी वत्सलता का पालन कर सकते हैं। आज संसार में धर्मात्मा तो सहस्रों हैं, किन्तु उन में ऐसे महापुरुष बहुत कम हैं, जिनका धर्मात्माओं के साथ गोवत्स के समान प्रेम हो तथा जो उनको सुख पहुंचाने के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिये तय्यार हों। आज विषयवासना के वशीभूत होकर, अहंकार के जाल में फंस कर अथवा मायामोह में आसक्त हो कर तो मनुष्य लाखों तथा करोड़ों रुपये खर्च कर देता है तथा अनेक प्रकार की विडम्बनाएं सहता है, किन्तु धर्मात्माओं की सहायता करने के लिये, उनकी आर्थिक सहायता करने के लिये वह लेशमात्र भी

कष्ट सहन करने के लिए तय्यार नहीं होता। इसी कारण आज धर्म की अवनति हो रही है। नीचे की पंक्तियों में एक ऐसा उदाहरण उपस्थित किया जाता है, जिसमें आचार्य सम्राट् सोहनलाल जी ने गृहस्थ में रहते हुए भी स्वधर्मीवत्सलता का एक अनुपम आदर्श उपस्थित किया था। इस उदाहरण में यह दिखलाया जावेगा कि उन्होंने किस प्रकार एक साधर्मी भाई की सहायता की तथा इस प्रकार उसके सम्पूर्ण परिवार को सुखी बनाया।

श्रावण मास का समय है। भव्य आत्माओं में चारों ओर धार्मिक भावना का अपार उत्साह है। त्यागी मुनिजन स्थान २ पर विहार करना बंद करके स्वयं आत्मकल्याण का सम्पादन करते हुए मुमुक्षु जनों को खुले हाथ ज्ञान दान दे रहे हैं। कोई कोई मुनि महान् तप करते हुए धर्म का गौरव बढ़ा रहे हैं, जिसे देख कर जनता आश्चर्यचकित हो रही है। कोई नवीन मुनि ज्ञानवृद्ध मुनियों से ज्ञानदान ले रहे हैं तो कोई तप साधन में लीन हैं। कोई साधक सामायिक करता हुआ अपने कलिमल को धो रहा है। ऐसे समय में पसरूर नगर में एक साधारण हवेली में बैठे एक पति पत्नी आपस में वार्तालाप कर रहे हैं। यद्यपि हवेली में कोई सजावट नहीं है, किन्तु उसकी सफाई मन को आकर्षित कर रही है। यद्यपि उन दोनों के शरीर पर कोई बहुमूल्य वस्त्राभरण नहीं हैं, किन्तु उनके पहिनने के ढंग, उनके मकान तथा उनकी गंभीरता को देखकर यह पता चलता है कि कभी यह परिवार भी विशाल ऐश्वर्य तथा वैभव के सुख को भोग चुका है तथा इस समय दरिद्रता की चक्की में पिस रहा है। किन्तु इस दरिद्रता के कारण उनके धार्मिक विचार तथा धार्मिक कार्यों में कोई त्रुटि नहीं आने पाई है। वह प्रतिदिन दोनों

समय सामायिक तथा प्रतिक्रमण तथा समय समय पर पौषध आदि करते रहते हैं। धार्मिक भावना होने के कारण वह अपनी दरिद्रता को किसी के भी सामने प्रकट नहीं करते और न धनोपार्जन के लिए किसी अन्याय का सहारा ही लेते हैं। इसी कारण दरिद्र होते हुए भी उनकी बात सम्पूर्ण नगर भर में प्रामाणिक मानी जाती है। इस समय वह दोनों पति पत्नी किसी गंभीर समस्या के सम्बन्ध में आपस में वार्तालाप कर रहे हैं—

पत्नी—इस प्रकार कैसे गुजारा चलेगा, पतिदेव! आज कई दिन से एक समय भोजन करते हुए दिन कट रहे हैं। सभी बहुमूल्य आभूषण तथा अन्य वस्तुएं बिक चुकी हैं। अब कहां से खर्च चलेगा?

पति—देवि! मनुष्य को आपत्ति के समय घबराना नहीं चाहिए। कर्मों के आगे किसी की कुछ नहीं चलती। देवी अंजना, सती सीता, राजा हरिश्चन्द्र तथा स्वयं तरण तारण जहाज भगवान् महावीर स्वामी ने क्या क्या कष्ट नहीं सहे हैं? उनके कष्टों के सामने हमारे कष्ट क्या हैं? हमारा जीवन तो लाखों व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सुखी है। आज लाखों प्राणी ऐसे हैं, जिन्हें एक समय भी रोटी नहीं मिलती।

पत्नी—आपका कथन ठीक है। मुझे अपने कष्टों की चिन्ता नहीं, किन्तु जिस समय मैं बच्चों को भूख से तड़पते हुए देखती हूं तो मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है।

पति—देवि! धर्म के प्रताप से सब आनन्द मंगल ही होगा। जब वह दिन नहीं रहे तो यह दिन भी नहीं रहेंगे।

पति पत्नी इस प्रकार आपस में वार्तालाप कर ही रहे थे कि हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी किसी कार्यवश उनके घर आए। घर में प्रवेश करते ही वह पति पत्नी के दुःखजनक

वार्तालाप को सुन कर उसे सुनने के लिये छिप कर खड़े हो गए, जिससे उन्होंने उनके पूरे वार्तालाप को सुन लिया। उनकी कष्ट कथा को सुन कर सोहनलाल जी का कोमल हृदय उन दोनों के प्रति करुणा तथा श्रद्धा से भर गया। उनके वार्तालाप को सुन कर सोहनलाल जी अपने मन में विचार करने लगे।

"धन्य है इन दोनों के इन श्रेष्ठ विचारों को ! जिस प्रकार युवावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन है उसी प्रकार दरिद्रावस्था में अपने मन में दुर्भावना उत्पन्न न होने देना भी कठिन है। ऐसे पुरुषों को बार बार धन्यवाद है। उनकी जितनी भी प्रशंसा की जावे थोड़ी है। किन्तु मैं इनकी सहायता करूं भी तो किस प्रकार करूं। यदि इनको रुपया कर्ज या दान रूप दूंगा तो यह कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। अतएव इनकी सहायता इस प्रकार करनी चाहिये कि इनको सहायता करने वाले की सहायता करने की नीयत का भी पता न चले और इनका काम भी चल जावे।"

इस प्रकार मन ही मन विचार करके सोहनलाल जी उन दम्पति से बिना वार्तालाप किये ही उलटे पैरों चुप चाप लौट कर अपनी दूकान पर आ गये। अपनी दूकान पर बैठ कर वह उन दोनों की सहायता करने के उपाय के सम्बन्ध में विचार करने लगे। अन्त में उनको एक उपाय सूझ ही गया।

सोहनलाल जी अपनी दूकान पर सोने चांदी के अतिरिक्त रेशम की गांठों का व्यापार भी किया करते थे। उन्होंने उनमें से एक गांठ को खोल कर उसमें से कुछ ऊपर की आटियों को जान बूझ कर उलझा दिया तथा स्थान स्थान पर काट दिया। इसके पश्चात् उन्होंने उस व्यक्ति की दूकान पर जाकर उससे कहा—

सोहनलाल—भाई साहिब ! हमारी दूकान पर रेशम की कुछ गांठें आई हैं। उनमें एक गांठ का रेशम बहुत उलझा हुआ तथा स्थान स्थान पर कटा हुआ है। यदि वह गांठ आपके काम आ जावे तो आप ले लेना।

श्रावक—सोहनलाल जी ! हमारे पास अभी रुपये का प्रबन्ध नहीं है।

सोहनलाल—आप चल कर देखो तो सही। पसन्द आजावे तो जैसे जैसे माल बिकता जावे दाम देते जाना।

इस प्रकार सोहनलाल जी ने उसे अपनी दूकान पर ला कर वह माल दिखलाया और उनसे कहा—

"यह माल हमारे काम का तो है नहीं। यदि आप ले जावेंगे तो आपकी कुछ रकम बन जावेगी और आपको कुछ लाभ भी हो जावेगा।"

अन्त में सोहनलाल जी ने वह गांठ उस श्रावक को दो सौ रुपयों में दे दी और वह उसको उठवा कर अपनी दूकान पर ले आया। किन्तु अपनी दूकान पर लाने पर जब उसने गांठ को खोला तो उसे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह गांठ अन्दर से बिलकुल कटी या उलझी हुई नहीं थी। अतएव उसने सोहनलाल जी के पास वापिस आकर उनसे कहा—

श्रावक—"भाई जी ! उस गांठ में तो सारा रेशम ठीक है। केवल ऊपर की पांच छै आटियां ही उलझी हुई हैं। वह तो १५००) से भी अधिक का माल है। आप उसे वापिस ले लें। उस पर मेरा अधिकार नहीं है।"

उसकी इस बात को सुन कर सोहनलाल जी बोले—

"भाई ! यदि उसका लाभ हमारे भाग्य में होता तो वह माल हमको पहिले ही दिखलाई दे जाता। अब तो यह तुम्हारा

भाग्य है। मैं तो उसको बेच चुका। अब मेरा उस पर कुछ भी अधिकार नहीं है। वह माल अब आपका है।"

इस प्रकार कह कर सोहनलाल जी ने उस माल को वापिस लेने से साफ इंकार कर दिया। बाद में उस श्रावक ने उस गांठ का माल १५००) में बेचा, जिसमें उसे १३००) बचे। माल बेच कर उसने सोहनलाल जी के २००) उसी समय चुका दिये। फिर उसने अपनी पत्नी के पास जाकर उसको सोहनलाल जी के द्वारा १३००) का लाभ होने का समाचार सुनाया। इस समाचार को सुन कर सारे परिवार में खुशी की लहर दौड़ गई।

इसके कुछ दिनों बाद रक्षाबंधन का त्यौहार था। इस अवसर पर सोहनलाल जी ने उसके सारे परिवार को अपने घर निमंत्रित किया। घर आने पर सोहनलाल जी ने उसकी धर्मपत्नी से कहा

सोहनलाल—बहिन! क्या तुम मेरी एक अभिलाषा पूर्ण करोगी?

बहिन—क्यों भाई! आपकी अभिलाषा मैं क्यों नहीं पूर्ण करूंगी। यह निश्चय है कि आपकी प्रत्येक अभिलाषा पवित्र ही होगी।

सोहनलाल—बहिन! देखना अपने इन शब्दों से पीछे न फिर जाना।

बहिन—भाई! मैं ने आज तक कभी भी अपने वचन को भंग नहीं किया है।

सोहनलाल—बहिन! मेरी यह बहुत पुरानी इच्छा है कि तुम्हारे हाथ से अपने हाथ में आज के दिन राखी बंधवाऊं। क्या आप मेरी इस इच्छा को पूर्ण करेंगी?

इस पर बहिन ने मुस्करा कर कहा

"भाई ! मैं तो सोच रही थी कि तुम कोई बड़ी भारी वस्तु मांगोगे। आप के हाथ में राखी बांधना तो मेरा परम सौभाग्य है। ऐसी कौन आर्य स्त्री है, जो तुम जैसे सर्वगुणसम्पन्न पुरुष को अपना भाई बनाने में सौभाग्य न समझे।"

यह कह कर उसने अपने हाथ में एक अत्यन्त सुन्दर राखी ले कर उसे सोहनलाल जी के हाथ में बांधने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया। उसके राखी बांधने को हाथ आगे बढ़ाने पर सोहनलाल जी बोले

सोहनलाल—बहिन तनिक ठहरो।

सोहनलाल जी के ऐसा कहने पर वह अपने बढ़े हुए हाथ को रोक कर चकित नेत्रों से अपने नवीन भाई की ओर देखने लगी। तब सोहनलाल जी ने कहा

'बहिन ! मैं तुम्हारे हाथ से राखी तभी बंधवा सकता हूँ जब तुम इस बात की प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने सगे भाइयों तथा मुझ में कुछ भी अंतर न समझोगी तथा इस घर को अपना पीहर मान कर यहां उसी प्रकार प्रेमपूर्वक आया करोगी।'

सोहनलाल के इन वचनों को सुन कर उस बहिन ने उत्तर दिया

"मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि आप को सदा अपने सगे भाई के ही समान माना करूंगी और इस घर को भी अपना पीहर मान कर यहां बराबर प्रेमपूर्वक आया जाया करूंगी।"

ऐसा कह कर उसने अपने हाथ से सोहनलाल जी के हाथ में राखी बांध दी। इस घटना से दोनों को ही अत्यधिक

आनन्द हुआ। बहिन को सर्वगुणसम्पन्न भाई मिलने की प्रसन्नता थी और सोहनलाल जी इस बात पर प्रसन्न थे कि वह अब उस परिवार की निःसंकोच हो कर सहायता कर सकेंगे। राखी बंधवा कर सोहनलाल ने बहिन को अनेक वस्त्राभूषण दिये। इस पर बहिन बोली

बहिन--भाई यह क्या ! ऐसे समय तो दस बीस रुपये से अधिक नहीं दिए जाते। अधिक से अधिक एक साड़ी भी दे दी जाती है। फिर आप इतना अधिक सामान क्यों दे रहे हैं।

सोहनलाल--इसी बात को ध्यान में रख कर तो मैंने तुमसे प्रतिज्ञा कराई थी। मैं तो यह समझता हूँ कि मैंने तुम्हारा आज ही विवाह किया है और इसी लिए मैं आज तुमको विवाह के बाद की जाने वाली विदाई का सामान दे रहा हूं।

सोहनलाल जी के अत्यधिक आग्रह को देख कर उसे वह सब वस्तुएं उनसे लेनी पड़ीं। सोहनलाल जी इसके बाद जब तक गृहस्थ में रहे उन्होंने इस सम्बन्ध का तब तक पालन किया।

२२

जितेन्द्रियता

व्याकीर्णकेशरकरालमुखमृगेन्द्राः,
नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः ।
मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः,
स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषाः भवन्ति ॥

फैली हुई केशर तथा भयंकर मुख वाले सिंह, अत्यधिक मद झरने वाले हाथी, बड़े बड़े भारी पंडित विद्वान तथा समरवीर भी स्त्री के सामने जाकर अत्यन्त कायर बन जाते हैं।

अनादि काल से इस संसार में कामदेव का अटल साम्राज्य रहा है। इसने बड़े बड़े वीरों तथा अवतारी पुरुषों को अनेक प्रकार से नाच नचाए हैं। इसी कामदेव के वशीभूत हो कर ब्रह्मा जी ने स्वयं अपने द्वारा निर्मित सावित्री को ही अर्द्धांगिनी का पद दे दिया तथा शिव जी मोहनी के पीछे पीछे पर्वतों आदि में दौड़ते फिरे। इसी के प्रभाव से इन्द्र को गौतमशापवश अपमानित जीवन व्यतीत करना पड़ा और चन्द्रमा को स्थायी रूप से कलंक लगा। इसी के कारण विश्वामित्र जैसे जगत् प्रसिद्ध ऋषि की तपस्या भंग हुई तथा व्यास एवं पाराशर जैसे अद्वितीय विद्वानों को नीच कुलोत्पन्न कन्याओं की अनुनय

विनय करते हुए अपमानित होना पड़ा। इसी के कारण रावण जैसे धुरंधर राजनीतिक विद्वान का सर्वस्व नष्ट हो गया और शूर्पणखा को अपमानित होना पड़ा। इस कामदेव पर विजय प्राप्त करना एक दम असंभव न होने पर भी अत्यन्त कठिन अवश्य है। कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले महापुरुष संसार में विरले ही होते हैं। ऐसे महापुरुषों को वास्तव में धन्य है। इस स्थल पर एक ऐसे ही बालब्रह्मचारी महापुरुष की एक सच्ची जीवन घटना का वर्णन किया जाता है, जिस ने गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर अपने सदाचारपूर्ण जीवन की छाप डाल कर एक पतिता के जीवन को सन्मार्ग पर लगाया था।

एक विशाल भवन के एक कमरे में एक बीसवर्षीया युवती पलंग पर लेटी हुई करवटें बदल रही है। कमरे में सभी प्रकार का बहुमूल्य सामान है, जो उसके मालिक के वैभवशाली होने का प्रमाण दे रहा है। स्त्री का रंग गौर तथा शरीर की कान्ति कुन्दन के समान चमक रही है। उसके पास उसकी एक सखी बैठी हुई है, जो उसकी दशा से दुखी दिखलाई दे रही है। सखी ने युवती के शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा

सखी—सखी! तुम्हें क्या हो गया है? कई दिन से तुम्हारा ध्यान किसी भी काम में नहीं लग रहा। न जाने एकान्त में बैठी बैठी क्या सोचा करती हो।

यह सुन कर युवती ने उत्तर दिया

युवती—सखी! तुझे मैं क्या बतलाऊं? अन्तःकरण की बात कहने में भी तो लज्जा आती है।

सखी—सखी! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहती हूं कि तेरी बात में

किसी के भी सन्मुख प्रकट नहीं करूंगी और जहां तक होगा तेरी सहायता भी करूंगी।

अपनी सखी के यह शब्द सुन कर युवती को संतोष हुआ। वह सोचने लगी कि जब तक मैं अपने अन्तःकरण की बात किसी से न कहूँगी तब तक काम भी नहीं चलेगा। अपने मन में यह विचार करके वह अपनी सखी से बोली

युवती—सखी! मैं ने शाह सोहनलाल जी सर्राफ की बहुत प्रशंसा सुनी थी। पिछले दिनों एक बार मुझे उनको देखने का अवसर भी मिला। उनके देखने पर तो मैं अपने आप को ही भूल गई। अब तो मैं जिधर देखती हूँ उधर मुझे सोहनलाल ही सोहनलाल दिखलाई देता है। अब तो उसके बिना मेरा जीवन असम्भव है।

युवती की इस बात को सुन कर उसकी सखी बोली

सखी—सखी! सोहनलाल अत्यन्त धर्मात्मा है। वह अन्याय मार्ग पर चलने के लिए कभी भी तय्यार न होंगे। उनका केवल शरीर ही सुन्दर नहीं, वरन उनका आत्मा उससे भी कहीं अधिक सुन्दर है। इसलिये सखी तुम उसके मिलने को आकाशकुसुम के मिलने की आशा के समान त्याग कर धर्म में अपना मन लगाते हुए अपने आत्मा का कल्याण करो। व्यर्थ कर्मबंधन में तुमको नहीं पड़ना चाहिये।

युवती—सखी! यह मैं भली प्रकार जानती हूं कि सोहनलाल बहुत ही धर्मात्मा तथा गुणवान् है। इसी से तो मैं उसे अपने हृदय का हार बनाना चाहती हूँ। सखी! अच्छी वस्तु के प्राप्त करने को सभी का मन चाहता है। चन्दन का थोड़ा सा भी संसर्ग शरीर को शीतल कर देता है। सखी! यदि तू मेरा

जीवन चाहती है तो मुझे एक बार किसी प्रकार सोहनलाल से मिला दे। यदि तू ने मेरा यह कार्य कर दिया तो मैं तेरा अहसान कभी भी न भूलूंगी।

युवती की इस बात को सुन कर उसकी सखी अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगी

"इस समय यह विषय के मद में बेहोश है। इस समय यह मेरे कितना ही समझाने पर भी नहीं समझेगी, क्योंकि मोह तथा शिक्षा का आपसी वैर है। सोहनलाल धर्मात्मा है। उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई है। यदि मैं उसको किसी प्रकार इसके पास ला सकी तो वह इसे अवश्य ही समझा कर ठीक रास्ते पर ले आवेगा। इस प्रकार मैं इसके धर्म साधन में इसकी सहायक बन सकूंगी।"

अपने मन में इस प्रकार विचार करके उसने उस युवती से कहा

'सखी! तू अपने मन में चिन्ता मत कर। मैं इस विषय में पूर्ण प्रयत्न करूंगी। किन्तु मैं तुझको यह अभी से बतलाए देती हूं कि तेरा मनचिंतित कार्य तो नहीं बनेगा; हां, इस प्रयत्न में तेरा सुधार अवश्य हो जावेगा।'

उस युवती से इस प्रकार कह कर वह सखी श्री सोहनलाल जी की दूकान पर पहुँची। वहां जाकर उसने उनसे जड़ाऊ हार दिखलाने को कहा। कई प्रकार के हार देख कर उसने उनसे कहा

"यदि आप यह आभूषण घर तक चल कर दिखला दें तो अति श्रेष्ठ रहेगा। वह घर कोई पराया नहीं है, आपका ही है। आप उस घर में सभी को जानते हैं।"

उस महिला की यह बात सुन कर सोहनलाल जी उस घर को एक प्रतिष्ठित घराना समझ कर एक डिब्बे में कई प्रकार के हार रख कर चलने को तय्यार हो कर उससे बोले

'जब दूकान में कोई और आ जावेगा तो मैं स्वयं ही आपके घर आ जाऊंगा। अभी आप चलें।'

यह सुन कर वह सखी वहां से चल कर युवती के पास आई। सखी से सोहनलाल जी के आभूषण दिखलाने के लिये आने का समाचार सुन कर उसने उसी समय सोलह शृङ्गार किये। अब वह पूर्णतया बन ठन कर सोहनलाल जी के आने की प्रतीक्षा करने लगी। कुछ समय बाद सोहनलाल जी आभूषण लिए हुए वहां पहुंच गए। उनके आने पर उस युवती ने उनकी अत्यन्त उत्साहपूर्वक अभ्यर्थना की। फिर वह उनके दिखलाए हुए हारों को देखती हुई मुस्करा कर कहने लगी

"इस हार का क्या मूल्य है?"

सोहनलाल जी ने हार का मूल्य बतला दिया। मूल्य सुन कर वह युवती बोली

"मैं तो वह अमूल्य हार चाहती हूँ, जो आपके पास मौजूद है। उसे प्राप्त करने के लिए मैं अपने प्राणों का मूल्य भी दे सकती हूं। क्या आप उसे देने की कृपा करेंगे?"

किन्तु सोहनलाल जी उसकी गूढ़ बात को नहीं समझे और उन्होंने सारे हार उनके सामने रख कर कहा

"आपको इन में जो भी हार पसन्द हों वह ले सकती हैं।"

इस पर युवती ने उत्तर दिया

"मैं इन जड़ हारों को नहीं चाहती। मैं तो चेतन हार चाहती हूँ, जो मेरे हृदय कमल को खिला सके।"

युवती के यह वचन सुन कर सोहनलाल जी को अत्यधिक आश्चय हुआ और वह अपने हारों को उठा कर जाने लगे। किन्तु उसी समय उन्होंने देखा कि दरवाजा बाहिर से बन्द है। तब युवती ने उनसे कहा

"जब से मैं ने आपकी प्रशंसा सुनी तथा आपको देखा है तभी से मैं अपने मन, वचन तथा काय को आपके चरणों में समर्पित कर चुकी हूं। आप मेरी चिर अभिलाषा को पूर्ण कर मेरे हृदय के ताप को दूर करें।"

इस पर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

"बहिन! तनिक सोच विचार तो करो। जिस सतीत्व की रक्षा महारानी धारिणी तथा अनेक सतियों ने अपने प्राण दे कर भी की है ऐसे अमूल्य रत्न का तुम तनिक से क्षणिक सुख के लिए नाश करने पर क्यों तुली बैठी हो? देवी! सावधान हो जाओ। यह रत्न नष्ट हो जाने पर फिर आपको किसी भी मूल्य पर प्राप्त नहीं हो सकता। भोगों को भोगने से कभी भी शक्ति नहीं बढ़ती, वरन् अशक्ति तथा अशान्ति ही बराबर बढ़ती जाती है।"

युवती—यह सारी बातें मैं जानती हूं, किन्तु मेरे मन में यह बड़ी भारी अभिलाषा है कि मैं आपके द्वारा आप के जैसा पुत्र प्राप्त करूं। अतएव आप मेरी अभिलाषा पूर्ण कर मुझे अपने जैसे पुत्र का दान दें।

सोहनलाल—तुम पुत्र अविलम्ब चाहती हो या विलम्ब से?

सोहनलाल जी के इस प्रश्न से युवती मन में विचार करने लगी कि "अब मेरे अस्त्र का इस पर प्रभाव पड़ रहा है। भला

ऐसा कौन व्यक्ति है जो स्त्री के नयनबाण से घायल हो कर न छटपटाने लगे।"

भला उस बेचारी को यह क्या पता था कि सोहनलाल जी का हृदय जहां दुःखियों का दुःख दूर करने के लिए मक्खन से भी कोमल था, वहां पाप कार्यों का निषेध करने के लिए वह वज्र से भी कठोर था। अस्तु उस युवती का मनमयूर नाच उठा और वह हर्षोत्फुल्ल नेत्रों से उनकी ओर देखती हुई कहने लगी

युवती—विलम्ब का क्या काम। आप इस कार्य को शीघ्र से शीघ्र करें।

यह सुन कर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

सोहनलाल जी—देखो, यह कोई निश्चय नहीं है कि स्त्री पुरुष के समागम से संतान अवश्य हो। यदि संतान हो भी जावे तो यह आवश्यक नहीं है कि पुत्र ही हो। यदि पुत्र भी हो जावे तो यह निश्चय नहीं कि वह मुझ जैसी आकृति वाला ही हो। यदि मेरे जैसी आकृति भी हो गई तो यह आवश्यक नहीं कि वह मेरे जैसा गुणवान् भी हो। अतएव तुम आज से मुझे ही अपना पुत्र समझो। मैं आज से तुम को अपनी माता लक्ष्मी देवी के समान ही समझूंगा।

ऐसा कह कर सोहनलाल जी ने अपना मस्तक उस युवती के चरणों में रख दिया। सोहनलाल जी के उपरोक्त वचनों को सुन कर तथा उनको अपने चरणों में गिरते देख कर युवती को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। अब वह पश्चात्ताप की अग्नि में जलती हुई अपने नेत्रों से आंसू बहाती हुई सोहनलाल जी से बोली

'सोहनलाल जी ! तुमको धन्य है। धन्य है तुम्हारी माता को। मैं आज से प्रतिज्ञा करती हूं कि कभी भूल कर भी अपने

मन को इधर उधर न भटकने दूंगी और मैं अपने मन, वचन तथा काय से पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूंगी।

इस पर सोहनलाल जी बोले

सोहनलाल—माता ! मैं आज के दिन को धन्य समझता हूं कि मुझे तुम जैसी माता की प्राप्ति हुई।

युवती की सखी किवाड़ के छेद में से इस सारे दृश्य को देख रही थी। इस दृश्य को देखकर उसके मन में बड़ा भारी आनन्द हुआ। वह किवाड़ खोल कर अन्दर आ गई और उस ब्रह्मचारी के चरणों में अपना मस्तक रख कर कहने लगी

"भाई ! मैं तुमको किन शब्दों में धन्यवाद दूं। आज तुमने मेरी सखी का उद्धार किया है। आपने उसे पापपंक से निकाल कर धर्म रूपी राजमार्ग पर आगे बढ़ाया है।"

इसके पश्चात् सोहनलाल जी अपनी नवीन माता को नमस्कार करके अपनी दूकान पर चले आए।

२३

सती पार्वती से वार्तालाप

सोच्चा मेहावी वयणं पंडियाणं निसामिया ।

आचारांग सूत्र, प्रथम श्रुत स्कंध, अध्ययन ८, उद्देशक ३

चतुर पुरुषों को पंडितों के वचन सुन कर उनको हृदय में धारण कर समता रखनी चाहिये ।

संवत् १६३२ का चातुर्मास्य समाप्त कर महासती पार्वती जी महाराज ने स्यालकोट की ओर विहार किया । उनकी व्याख्यानशैली अद्भुत थी । तीव्र प्रतिभा के कारण आपने अल्प समय में ही विशेष ख्याति प्राप्त कर ली थी, जिससे आपके संयम की वृद्धि के साथ २ आपके यश की वृद्धि भी बराबर होती जाती थी। महासती के पधारने के समाचार से पसरूर की जनता में उत्साह की लहर दौड़ गई । पसरूर के मुख्य २ जैन श्रावकों—लाला गंडे शाह जी, लाला भूला शाह जी तथा लाला पञ्जू शाह जी आदि भाइयों के हृदय प्रसन्नता से भर गए । महासती का व्याख्यान सुनने के लिये जैन तथा जैनेतर सभी जनता एकत्रित हुई। इस व्याख्यान के सुनने को द्वादशव्रतधारी धर्मप्राण सोहनलाल जी भी आए । अब महासती जी ने अपनी अमोघवाणी द्वारा निम्न प्रकार से देशना देनी आरम्भ की—

"हे भव्य प्राणियों ! इस संसार में कोई भी वस्तु स्थायी नहीं है। प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। यह शरीर भी स्थायी नहीं है। किन्तु यह जान कर भी मनुष्य धार्मिक कार्यों में प्रमाद करता ही रहता है। प्रमाद तो उसी को करने का अधिकार है जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो और जो मौत आने पर भाग सकता हो अथवा जिसको यह निश्चित रूप से पता हो कि मैं कभी नहीं मरूंगा। शास्त्रों में सगर चक्रवर्ती के पुत्रों का वर्णन आता है कि कहां तो वह परम उत्साह से गंगा नदी के प्रवाह को अपने नगर में लाने का प्रयत्न कर रहे थे, और कहां उनको मृत्यु के मुख में पड़ना पड़ा। एक कवि ने कहा कि

> आगाह अपनी मौत से, कोई बशर नहीं।
> सामान सौ बरस के हैं, कल की खबर नहीं॥

"किसी को भी यह पता नहीं कि मृत्यु उसको कब धर दबावे गी। सगर चक्रवर्ती के पुत्रों पर काल का ऐसा झोंका आया कि उन साठ हजार पुत्रों में से कोई भी जीवित नहीं बचा। जहां कुछ समय पूर्व चहल पहल थी, वहां सब ओर शून्यता ही शून्यता का साम्राज्य हो गया। जिस समय यह समाचार सगर चक्रवर्ती को मिला तो वह शोक से मूर्छित हो गए। किन्तु होश में आने पर उन्होंने अपने मन में यह विचार किया कि यह संसार असार है। कल मैं साठ हजार पुत्रों का पिता था, किन्तु आज उनमें से कोई भी जीवित नहीं है। वास्तव में यह संसार स्वप्न-वत् है। इसका नाश होते लेशमात्र भी देर नहीं लगती। तन, धन तथा यौवन सभी अस्थिर हैं। यह सब वस्तुएं बिजली के कौंधे के समान चंचल हैं। जो आत्मा इन नाशवान् वस्तुओं में आसक्त रहता है उसको कभी भी अविनाशी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

"सज्जनों ! यदि आप अविनाशी सुख चाहते हो तो नाशवान् पदार्थों से विरक्त होकर अविनाशी आत्मिक गुणों से सम्बन्ध स्थापित करो ।"

महासती पार्वती के इस प्रकार के सारगर्भित वचनों को सुन कर भव्य जीवों को अपार सुख हुआ। अब तो सारी जनता वैराग्य आनन्द के शान्त रस में बहती हुई महासती की प्रशंसा करने लगी। श्री सोहनलाल जी ने व्याख्यान के उपरांत महासती जी की प्रशंसा करते हुए उनसे कहा

"महासती जी ! आपको धन्य है जो आप जनता को सन्मार्ग बतलाती हुई स्वपर कल्याण करने में लीन हैं। महासती जी ! संसार की दशा वास्तव में ऐसी ही है। यह जीव मोहग्रस्त हो कर नाशवान् पदार्थों को ही सच्चे सुख की प्राप्ति का साधन समझता है और उन्हीं को प्राप्त करने का रात दिन प्रयत्न करता रहता है। किन्तु उसे मिलता क्या है ? सुख के स्थान पर उसे केवल दुःख ही मिलता है। रोग से रूप नष्ट हो जाता है। एक आकस्मिक धक्का समस्त धन वैभव को नष्ट कर देता है। जिन महाराजा रणजीत सिंह का सम्पूर्ण देश में बड़ा भारी प्रभाव था, आज उन्हीं की संतान जेल में पड़ी हुई सड़ रही है। मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह की संतानें आज दिल्ली में तांगा चला कर अपनी आजीविका चला रही हैं। वृद्धावस्था शरीर का नाश कर देती है। फिर भी मनुष्य आत्मकल्याण के प्रशस्त मार्ग को त्याग कर विषवत् भयंकर ऐसे विषयोपभोग में लीन रहते हैं, जो किंपाक फल के समान प्रथम मनोहर दिखलाई देकर परिणाम में विष के समान भयंकर सिद्ध होते हैं।"

सोहनलाल जी के इन वचनों को सुन कर महासती जी बोलीं

"सोहनलाल जी ! मैं ने आपके अनेक प्रशंसनीय श्रेष्ठ कार्यों की प्रशंसा सैंकड़ों पुरुषों के मुख से सुनी है। मैं जानती हूँ कि आप गृहस्थ में रहते हुए भी एक आदर्श त्यागी हो। सोहनलाल जी ! मेरी तो यही भावना है कि जैसे आपने भविष्य की पीढ़ियों के लिए सच्चे श्रावक का आदर्श उपस्थित किया है, उसी प्रकार आप भविष्य में होने वाले साधुओं के लिए भी आदर्श साधु का उदाहरण उपस्थित करें। आपकी तीव्र प्रतिभा, तीक्ष्ण बुद्धि, अटल धैर्य तथा उत्कृष्ट विनय आदि गुणों को देख कर यह प्रतीत होता है कि यदि आप संयम को ग्रहण करोगे तो शीघ्र ही अपने इन आदर्श गुणों के कारण हम सभी को आत्मकल्याण का श्रेष्ठतर मार्ग दिखलाते हुए सम्पूर्ण चतुर्विध संघ के मुकुटमणि बन जाओगे।"

महासती के इन वचनों को सुन कर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

"महासती जी ! मेरी तो रातदिन यही भावना बनी रहती है कि वह कौन सा धन्य दिन होगा जब मैं अन्तरंग तथा बाह्य सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर निष्परिग्रही बनूंगा। महासती जी ! मेरा अन्तरात्मा तो यही कहता है कि मैं निवृत्ति मार्ग को तो अवश्य ग्रहण करूंगा, किन्तु इसमें कुछ समय तो लगना ही है। हां, जहां आप जैसी पवित्र आत्माओं का आशीर्वाद सुलभ हो वहां तो जो कार्य अनेक वर्षों में बनने वाला हो वह कुछ मास में ही बन सकता है।"

इस पर एक अन्य सती ने महासती पार्वती जी महाराज से कहा

"महाराज साहिब ! इनकी तो सगाई होने वाली है, फिर यह संयम कैसे लेंगे ?"

इस पर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

"महाराज साहिब ! जिस समय आत्मा में तीव्र वैराग्य की भावना का उदय होता है उस समय एक तो क्या सहस्रों के साथ के सम्बन्ध को भी त्यागने में समय नहीं लगता। आवश्यकता केवल तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने की है।"

इसके पश्चात् सोहनलाल जी ने अन्य भी अनेक प्रश्न महासती से किये। महासती जी ने उनके प्रश्नों से उनके ज्ञान बल से अत्यधिक प्रभावित हो कर उनके प्रश्नों का उत्तर समुचित रूप से दिया।

इस प्रकार जब तक महासती पार्वती जी पसरूर में विराजीं, तब तक श्री सोहनलाल जी उनसे ज्ञान का लाभ उठाते रहे। सोहनलाल जी की दिनचर्या में सामायिक प्रतिक्रमण आदि सभी धार्मिक क्रियाओं का दैनिक प्रवेश था। उनकी धार्मिक भावना इतनी उत्कट थी कि साधु संगति से उसमें विशेष अंतर नहीं पड़ता था। महासती पार्वती जी ने श्री सोहनलाल जी के इन गुणों का प्रत्यक्ष परिचय पाकर पसरूर से प्रसन्नतापूर्वक विहार किया।

२४

सगाई

विभूसा इत्थि-संसग्गो, पणीयं रसभोयणं ।
नरस्सत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ।।

दशवैकालिक सूत्र, अध्ययन ८, गाथा ५७

आत्मशोधक मनुष्य के लिए शरीर का श्रृङ्गार, स्त्रियों का संसर्ग तथा पौष्टिक स्वादिष्ट भोजन सब तालपुट विष के समान भयंकर हैं ।

संसार में बंधन तो अनेक होते हैं, किन्तु मोह के समान कोई भी दृढ़ बंधन नहीं होता । यदि मोहबंधन को ही संसार कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी । यदि संसार में मोहबंधन न हो तो इस दु:खमय संसार में किसी भी प्राणी की आसक्ति न हो । मोहबंधन मुख्यतः पुरुष का स्त्री का तथा स्त्री के लिये पुरुष का होता है । भगवान् नेमिनाथ अथवा जम्बू कुमार के समान इस मोहबंधन को काटने वाले विरले ही वीर होते हैं । किसी कवि ने कहा है कि

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकस्य समं नास्ति किमु यत्र चतुष्टयम् ।।

युवावस्था, वैभव, रूप, अधिकार तथा अविवेक जहां इन में से एक का भी निवास हो, वह जो कुछ भी कर दे सो थोड़ा है । किन्तु

जहां चारों हों तो उसका क्या पूछना। तथापि जहां विवेक होता है वहां यौवन, वैभव, रूप तथा अधिकार भी आत्मा का अनिष्ट नहीं कर सकते।

सोहनलाल जी में यह सभी गुण थे। अतएव उनकी चतुर्मुखी प्रशंसा सुन कर अनेक कन्याएं भगवान् से प्रार्थना किया करती थीं कि

"हे भगवान्! यदि हमारे पुण्य का उदय है तो हमको सोहनलाल जी के जैसा सर्वगुणसम्पन्न पति मिले।

अनेक कन्याओं के माता पिताओं की भी यही भावना रहती थी कि हमारी कन्या को सोहनलाल जैसा वर मिले। उनके गुणों पर प्रत्येक सज्जन मुग्ध था। उनका सुन्दर रूप, विकसित कमल पुष्प के समान नेत्र, हंसता हुआ मुख कमल, विशाल वक्षस्थल, लम्बी भुजाएं, पूर्ण ब्रह्मचर्य का अद्भुत तेज, बोलने में चतुरता, व्यापार में दक्षता, गुरुजनों में प्रिय भक्ति, धर्म में दृढ़ता, छोटों से प्रेम व्यवहार, दीनों के लिये दयालुता तथा कामभीरुता आदि गुण प्रत्येक दर्शक के मन को मोह लेते थे। माता पिता, मामा मामी तथा बड़े भाई शिवदयाल सभी आपके लोकोत्तर असाधारण गुणों को देखकर प्रसन्न होते रहते थे।

अनेक कन्याओं के पिता लाला मथुरादास जी तथा लाला गंडामल के पास प्रायः आते रहते थे कि वह सोहनलाल जी के साथ उनकी कन्या का संबन्ध होना स्वीकार करलें। एक दिन लाला मथुरादास जी ने सोहनलाल जी की २४ वर्ष की परिपक्व आयु समझ कर उनसे विवाह के सम्बन्ध में उनकी सम्मति पूछी। उस समय उनमें निम्नलिखित वार्तालाप हुआ-

मथुरादास जी—बेटा! पिता के मन में संतान के सुख दुःख की चिंता सदा बनी रहती है। तुम स्वयं बुद्धिमान हो

तथा हमारे कुल में मुकुटमणि के समान श्रेष्ठ हो। अपने हानि लाभ को भी तुम खूब समझते हो। फिर भी मैं पिता होने के नाते तुमसे पूछता हूं कि तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में क्या विचार हैं? क्योंकि तुम्हारी आयु विवाह योग्य हो चुकी है।

अपने पिता जी के मुख से इन शब्दों को सुन कर सोहनलाल जी ने उनको अत्यन्त नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

सोहनलाल—पिता जी! आप गुरुजनों की कृपा से मैं ब्रह्मचर्य के महत्व को समझता हूं। फिर भी मैं गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके विवाह करना बुरा नहीं समझता। आपने एक बार मुझे तीन प्रकार के मनुष्य बतलाए थे। एक वह जो अपनी पूंजी से व्यापार करके काम चलाते हैं। वह उत्तम हैं। दूसरे वह जो अपनी अल्प पूंजी से काम चलाने में असमर्थ होकर ऋण लेकर काम चलाते हैं। वह मध्यम गिने जाते हैं। तीसरे वह जो न तो अपनी पूंजी से काम चलाते हैं और न ऋण लेते हैं, वरन् दूसरों की नौकरी करके काम चलाते हैं। ऐसे व्यक्ति ऊपर से सच्चा व्यापारी होने का ढोंग किया करते हैं। वह अधम गिने जाते हैं। इसी प्रकार जो जीव पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह वंदनीय हैं। जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ होने के कारण विवाह करके अन्य स्त्रियों में माता, बहिन तथा पुत्री की भावना रखते हैं वह मध्यम हैं। किन्तु जिनमें न तो ब्रह्मचर्य पालन की शक्ति है और न वह विवाह करते हैं ऐसे व्यक्ति स्वय सदाचार से पतित होकर दूसरों को भी सदाचार से पतित कराते हैं। ऐसे अधम व्यक्ति निन्दनीय हैं। अभी मैं अपने को ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ पाता हूँ। जिस दिन भी मैं अपने को असमर्थ समझूंगा, आप श्री के चरणों में निवेदन करूंगा। अभी तो आप मुझे इस झंझट में न डाल कर निश्चितता से

समाज सेवा तथा धार्मिक क्रियाओं का साधन करने का अवसर दें।

मोहनलाल जी के मुख से यह उत्तर सुन कर उनके पिता मथुरादास जी बोले—

मथुरादास जी—पुत्र ! तुम्हारे विचार अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। किन्तु मैं ने पट्टी नगर के शाह को यह वचन दे दिया है कि मैं सभी से सम्मति करके तुम्हारी कन्या के सम्बन्ध को स्वीकार कर लूंगा। क्योंकि वह कन्या रूपवती, गुणवती तथा विदुषी है। धर्म का प्रेम भी उसको कम नहीं है। तुम्हारी उसकी जोड़ी ठीक रहेगी। अतएव बेटा ! मैं चाहता हूं कि तुम्हारे धार्मिक कार्यों में त्रुटि भी न हो, तुम्हारे ब्रह्मचर्य के शुद्ध विचारों को ठेस भी न पहुंचे और साथ ही मेरे वचन की रक्षा भी हो जावे। अतएव अब तुम्हीं बतलाओ कि इसको किस प्रकार किया जावे ?

सोहनलाल जी को अपने माता पिता में अटल श्रद्धा थी। वह उनके धार्मिक विचारों से पूर्णतया परिचित थे। सोहनलाल जी कैसी ही आपत्ति आने पर भी माता पिता की आज्ञा से मुख नहीं मोड़ते थे। अतएव उन्होंने पिता जी को उत्तर दिया

सोहनलाल जी—पिता जी ! आप मेरे पूज्य हैं। आपकी आज्ञा मुझे भगवद् आज्ञा के समान मान्य है। यदि कोई ऐसा तरीका हो सके कि आपकी बात भी रह जावे और मेरे पूर्ण ब्रह्मचर्य तथा धार्मिक क्रियाओं में बाधा भी न आवे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप जो कुछ भी कहेंगे मेरे आत्म कल्याण के लिए ही कहेंगे।

सोहनलाल जी का यह उत्तर सुन कर लाला मथुरादास जी का हृदय पुत्र की आज्ञाकारिता के कारण आनन्द से प्रफुल्लित

हो गया। उन्होंने पुत्र का आलिंगन करके भावावेश में उनका मस्तक चूम कर कहा—

मथुरादास जी—बेटा! तुमको शाबाश है। मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी।

इसके पश्चात् उन्होंने माता लक्ष्मीदेवी से परामर्श करके पट्टी के शाह को बुलवा कर उनसे कहा—

मथुरादास जी—शाह जी! हम आपकी लड़की की सगाई तो अभी ले लेंगे, किन्तु विवाह अभी नहीं करेंगे। क्योंकि सोहनलाल की इच्छा अभी ब्रह्मचर्य का पालन करने की है। जब तक उसकी विवाह की इच्छा न होगी, हम विवाह न करेंगे और न हम उसको विवाह के लिए विवश करेंगे।

पट्टी के शाह ने मथुरादास जी की यह बात स्वीकार करली। क्योंकि वह यह बात जानते थे कि मथुरादास जी अपने प्रण को प्राण से भी बढ़ कर मानते हैं। एक बार सगाई स्वीकार कर लेने पर वह विवाह के लिये इंकार न करेंगे। उनको क्या पता था कि सोहनलाल जी आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए संसार में एक अवतारी पुरुष कहलावेंगे। अन्त में सम्बन्ध का निश्चय करके एक शुभ मुहूर्त में सोहनलाल जी की सगाई कर ही दी गई। इस घटना से सारे परिवार में आनन्द ही आनन्द छा गया।

२५

दीक्षा का निश्चय

समेमाणा पलेमाणा,
पुणो पुणो जाइं पकप्पंति ।

आचारांग सूत्र, प्रथम श्रुत स्कंध, अध्ययन ४, उद्देशक १

संसार में फंसे रहने वाले लोग बराबर जन्म मरण प्राप्त करते रहते हैं ।

सत्संग सभी सुखों का कारण है । सत्संग प्राप्त होने पर उसके प्रभाव से सभी मनवांछित सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं । सत्सग ही इस जीव को आत्मा से परमात्मा बना देता है । सत्संग की एक घड़ी में जीवात्मा को इतना अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है कि कुसंगति में लाखों वर्षों में भी उतना लाभ नहीं हो सकता । इसके विरुद्ध कुसंगति से तो अधोगति दायक महा पाप का बंध हो कर आत्मा की मलिनता बढ़ती है । सत्संग का सामान्य अर्थ है उत्तम सहवास । जहां निर्मल तथा शुद्ध वायु नहीं आती, वहां रोगों की वृद्धि होना आवश्यम्भावी है । इसी प्रकार जहां जीव को निर्मल आत्माओं का संग नहीं मिलता वहां आत्मरोगों (दुर्गुणों) का उत्पन्न होना अनिवार्य है । जिस प्रकार दुर्गंधि से बचने के लिए नाक पर वस्त्र रख लिया जाता है उसी प्रकार दुर्गुणों से बचने के लिये कुसंगति

का त्याग करना आवश्यक है। संसार भी एक संग है। वह अनंत कुसंगों तथा दु:खनाशक कारणों से भरा हुआ है। अतएव उसका भी त्याग करना ही चाहिये। जिस पुरुष या जाति के सहवास से आत्मोन्नति न होती हो उसका संग सत्संग नहीं है। जो आत्मा को उत्तम मार्ग में लगावे वही सत्संग है। जो कोई भी मोक्ष का मार्ग बतलावे वही सच्चा मित्र है। सर्वज्ञ देव द्वारा बतलाए शास्त्रों का एकाग्र हो कर निरंतर स्वाध्याय करना भी सत्संग है। सत्पुरुषों का समागम भी सत्संग है। जिस प्रकार मलिन वस्त्र को साबुन तथा जल से उज्वल किया जाता है उसी प्रकार शास्त्रों के अध्ययन तथा सत्पुरुषों के समागम से आत्मा की मलिनता दूर हो कर वह शुद्ध हो जाता है। संगीत, नृत्य तथा स्वादिष्ट भोजन आदि हमारे नित्य के कार्य हमको कितने ही प्रिय होने पर भी सत्संग न हो कर कुसंग हैं। सत्संग से प्राप्त हुआ एक वचन भी अमूल्य लाभ देता है। तत्वज्ञानी पुरुषों ने मुमुक्षु प्राणियों को यही उपदेश दिया है कि—

'हे भव्य प्राणियों ! सब संगों का परित्याग करके अपने अंदर के सभी विकारों से विरक्त हो कर एकांत सेवन करो।'

यदि इस वचन पर ध्यानपूर्वक विचार किया जावे तो इसमें भी सत्संग की ही प्रशंसा की गई है। आत्मस्वरूप में रमण करने वाले सभी सम स्वभाव वालों में से एक ही प्रकार की वर्तना का प्रवाह निकलता रहता है। वह एक स्वभाव होने के कारण एक दूसरे के सहवास से एकान्त सेवन करते हुए भी आत्मकल्याण ही करते हैं। इस प्रकार के एकान्त सेवन की प्रवृत्ति केवल संत समागम से ही होती है। वैसे विषयी लोग भी विषय सेवन में एकान्तवृत्ति धारण करके समभाव तथा

समवृत्ति से विषय सेवन करते हैं। किन्तु एक तो उनका स्वभाव एक नहीं होता, दूसरे उन में परस्पर स्वार्थ बुद्धि तथा भ्रष्टाचार का भाव रहता है। फिर विषय सेवन से आत्मा के अपने स्वभाव में भी मलिनता आती है। अतएव विषय सेवन में न समानता है न निर्दोषिता है, वरन् आत्मिक पतन ही है। इसी प्रकार धर्म ध्यान में लीन रहने वाले अल्पारंभी पुरुष का सत्संग भी अत्यन्त प्रशंसनीय माना जाता है। जहां स्वार्थपरता तथा अत्याचार है वहां सत्संग नहीं हो सकता। सत्संग से आत्मिक सुख तथा आनन्द की प्राप्ति होती है। जहां शास्त्रों के सुन्दर प्रश्नों का नित्य समाधान किया जाता हो, उत्तम ज्ञान ध्यान की कथाओं द्वारा सत्पुरुषों के चरित्र पर विचार किया जाता हो, जहां तत्व ज्ञान की तरंगों की लहरें चलती रहें, जहां सर्वज्ञ के कथन पर विवेचन किया जाता हो, ऐसे सत्सग का मिलना अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार पृथ्वी पर कोई भी तैर नहीं सकता इसी प्रकार सत्संग से कोई भी नहीं डूबता। सत्संग के प्रभाव से लोहे का भी सुवर्ण बन जाता है। सत्संग के प्रभाव से ही राजा श्रेणिक, रोहा चोर तथा दृढ़प्रहारी अर्जुनमाली का भी उद्धार हो गया। सत्संग की महिमा का जितना भी वर्णन किया जावे थोड़ा है। यहां सत्संग की महिमा को प्रकट करने वाला एक जीता जागता उदाहरण उपस्थित किया जाता है। इस से पता चलता है कि सच्चे भावों से केवल आत्मकल्याण के लिये पवित्र आत्मा द्वारा की गई ज्ञान ध्यान की चर्चा कितनी प्रभावशाली होती है।

एक दिन पसरूर नगर में प्रातःकाल के समय श्री सोहनलाल जी ने उपाश्रय में सामायिक अंगीकार करके प्रथम स्वाध्याय के बोलों पर विचार किया। फिर उन्होंने अपने मधुर कंठ से

वैराग्योत्पादक महापुरुषों की जीवन गाथाओं को गाना प्रारम्भ किया। उनके पास चार अन्य युवक बैठे हुए थे, जिनके नाम— शिव दयाल, दूलो राय, गणपत राय तथा गोविंद राय थे। यह पांचों एक दूसरे के घनिष्ट मित्र होते हुए भी कभी किसी की आलोचना, अथवा स्त्रियों के शृङ्गार का वर्णन अथवा व्यर्थ का उपहास न करते हुए समय मिलने पर प्राय: ज्ञानचर्चा करते हुए एक दूसरे को आत्मोत्थान में सहायता दिया करते थे। इस अर्थ में वह एक दूसरे के सच्चे मित्र थे। सोहनलाल जी सनत्कुमार चक्रवर्ती का चरित्र बांच कर उसकी विवेचना निम्न प्रकार से कर रहे थे—

सनत्कुमार नामक एक चक्रवर्ती राजा हस्तिनापुर में राज्य करते थे। उनके आधीन बत्तीस हजार मुकुटबंद राजा थे। सोलह सहस्र देवता उनकी सेवा में अपना सौभाग्य मानते थे। उनको सभी प्रकार के भोगोपभोग की उत्कृष्ट सामग्री सुलभ थी। उनका शरीर इतना अधिक सुन्दर था कि एक दिन राजा इन्द्र ने अपनी सुधर्मा सभा में उनके रूप की अत्यधिक प्रशंसा की। इन्द्र द्वारा चक्रवर्ती के रूप की प्रशंसा सुन कर दो देव उनका रूप स्वयं अपने नेत्रों से देखने के लिये विप्र का रूप धारण कर हस्तिनापुर आए। उन्होंने हस्तिनापुर आकर चक्रवर्ती के सेनापति से उनके दर्शन कराने की प्रार्थना की। इस पर चक्रवर्ती के सेनापति ने उनको उत्तर दिया—

"भाई ! इस समय महाराज स्नान करने के लिये स्नान घर में गए हुए हैं। अतएव आप दो घड़ी ठहर जावें। जब चक्रवर्ती स्नान के पश्चात् राजभवन में आवेंगे उस समय दर्शन कर लेना।"

इस पर ब्राह्मण बोले

"सेनापति जी ! आयु का क्या भरोसा ? हम ने बचपन में चक्रवर्ती के रूप की प्रशंसा सुनी थी। सुनते ही हम उनके दर्शन के लिये घर से निकल पड़े। इस प्रकार हम सारी आयु भर चल कर चक्रवर्ती के दर्शनों के लिये यहां पहुंचे हैं। अतएव आप हमको उनके दर्शन अविलम्ब करा दें।"

सेनापति ने उन विप्रों की जराजर्जरित अवस्था देख कर उन से पूछा

"आप इतने अधिक टूटे जूते ले कर क्यों आए हो ?"

इस पर ब्राह्मण ने उत्तर दिया

"यह सब जूते मार्ग में घिस गए हैं।"

सेनापति ने ब्राह्मणों की इस प्रकार की अद्भुत उत्कण्ठा देख कर चक्रवर्ती के पास जा कर निवेदन किया और उनको विप्रों का हाल कह सुनाया। इस पर चक्रवर्ती ने ब्राह्मणों को अपने पास बुलवाया। अब तो सेनापति के साथ विप्रों ने भी अन्तःपुर में प्रवेश किया। जिस समय विप्र चक्रवर्ती के सन्मुख पहुँचे तो वह स्नान की चौकी पर नंगे बदन बैठे हुए थे। अतएव उस समय उनके शरीर पर कोई भी वस्त्राभूषण नहीं थे। उनके शरीर पर अंगमर्दन के पदार्थों का विलेपन तथा एक कटिवस्त्र ही था। देवता लोग उनके चन्द्र किरणों को भी तिरस्कृत करने वाले रूप, खिले हुए कमल पुष्प के समान मुख कमल तथा विद्युत्प्रभा से भी अधिक चमकने वाले नयनाभि-राम कंचनवर्ण शरीर को देख कर आनन्द में विभोर हो कर अत्यधिक प्रसन्न हुए और अपना मस्तक हिलाने लगे। तब चक्रवर्ती ने उनसे प्रश्न किया

"आप दोनों अपना मस्तक क्यों हिला रहे हो ?"

इस पर विप्रों ने उत्तर दिया

"महाराजाधिराज ! आपका रूप देखने की हम लोगों को बड़ी भारी अभिलाषा थी। क्योंकि हम ने स्थान स्थान पर आपके रूप की अत्यधिक प्रशंसा सुनी थी। आज हमने यह प्रत्यक्ष देख लिया कि आपके रूप की जैसी प्रशंसा लोक में हो रही है वह उससे भी अधिक सुन्दर है। इस लिये आनन्द के उद्रेक से हमारे मस्तक अपने आप डुलने लगे।"

अपने रूप की इस प्रकार प्रशंसा सुन कर चक्रवर्ती को भी अपने रूप का अभिमान हो आया और वह विप्रों से बोले

"आप लोगों ने जो मेरा रूप इस समय देखा है वह तो ठीक है, किन्तु जिस समय मैं वस्त्रालंकारों से विभूषित हो कर राज सभा में रत्नजटित सिंहासन पर बैठूंगा और अंगरक्षक मेरे पीछे तथा छत्तीस सहस्र मुकुटबंद राजा मेरे सामने हाथ जोड़े खड़े होंगे तथा अन्य सभासद् जिज्ञासु नेत्रों से मेरी ओर इस प्रकार देख रहे होंगे कि उनके कर्ण मेरा एक एक शब्द सुनने के लिये लालायित हों तो उस समय तुम मेरे रूप के अद्भुत चमत्कार से एक दम आश्चर्यचकित हो जाओगे।"

चक्रवर्ती के यह शब्द सुन कर देवों ने उत्तर दिया

"राजन् ! आपकी राजसभा में जाकर भी हम आपके रूप के चमत्कार को अवश्य देखेंगे।"

ऐसा कह कर विप्र वहां से चले गए।

कुछ समय पश्चात् चक्रवर्ती अपनी राजसभा में तेजपूर्ण विभूति के साथ पधारे तो उस समय की शोभा का वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहिर है। इस समय उन्होंने अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ विशेष शृङ्गार किया था, क्योंकि उनको ध्यान

था कि आज दो विप्र केवल उनकी रूपमाधुरी का पान करने के लिये ही आवेंगे। यथासमय दोनों ब्राह्मणों ने उनकी राजसभा में प्रवेश किया। किन्तु वह चक्रवर्ती के रूप को देख कर प्रसन्न होना तो दूर, उलटे अपना माथा धुनने लगे। चक्रवर्ती के इसका कारण पूछने पर उन्होंने कहा

"इस समय आपका वह रूप रंग नहीं है।"

इस पर चक्रवर्ती ने उनसे प्रश्न किया

"जिस समय मेरा शरीर शृङ्गार तथा वैभव से रहित था तब तो तुम उसको देख कर बहुत प्रसन्न हुए थे, किन्तु उसको शृङ्गार तथा वैभव सहित देख कर तुमको खेद हुआ। इसका कारण आप स्पष्ट बतलाइये।"

चक्रवर्ती सनत्कुमार के यह वचन सुन कर विप्रों ने उत्तर दिया

"देव! आपके उस समय के तथा इस समय के रूप में भूमि तथा आकाश जैसा अन्तर है। उस समय आपका शरीर अमृततुल्य था। अतएव हमको उसे देख कर प्रसन्नता हुई थी, किन्तु इस समय आपका शरीर विषतुल्य है। अतएव हमको इस समय खेद हुआ।"

इस पर चक्रवर्ती ने प्रश्न किया कि

"वह कैसे?"

तब ब्राह्मणों ने उत्तर दिया

"राजन्! उस समय आपका शरीर रोग रहित था, किन्तु इस समय आपका शरीर सोलह महारोगों द्वारा ग्रसित है। यदि आप हमारी बात की परीक्षा करनी चाहें तो पीकदान मंगवा कर उसमें थूक कर देखें। उसमें कृमि मिलेंगे और मक्खियां उस पर बैठते ही मर जावेंगी।"

ऐसा कह कर दोनों ब्राह्मणवेषी देवता अपने २ स्थान को चले गए।

उनके जाने के बाद चक्रवर्ती ने पीकदान मंगवा कर उसमें थूक कर देखा तो उसमें कृमि दिखलाई दिये तथा उस पर बैठने वाली मक्खियां तत्क्षण मर गईं। चक्रवर्ती ने दर्पण में अपने मुख को देखा तो उसको भी श्रीहीन पाया। विनाशीक तथा अशुचिमय शरीर का ऐसा प्रपंच देखकर चक्रवर्ती के हृदय में तत्क्षण वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह अपने मन में सोचने लगे

"ओह ! यह शरीर ऐसा क्षणभंगुर है तब तो मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है और ऐसी अवस्था आने पर तो परलोक साधन का कुछ भी कार्य न किया जा सकेगा। यह सारा संसार ही पानी के बुलबुले के समान विनाशीक है। विषय शहद लपेटी हुई तलवार की धार के समान हैं। उनको भोगने में दु:ख के अतिरिक्त सुख नहीं मिल सकता। अतएव अविनाशी सुख की प्राप्ति के लिये इस नश्वर संसार को त्याग कर जिनेश्वरी दीक्षा लेने से ही आत्मकल्याण हो सकता है।"

इस प्रकार मन में विचार करके सनत्कुमार चक्रवर्ती ने अपना सम्पूर्ण वैभव त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। उनकी रानियां, मंत्रीगण तथा अन्य राज्याधिकारी उनको संसार में पुन: लाने की अभिलाषा से छै मास तक उनके पीछे २ फिरते रहे। किन्तु सनत्कुमार मुनि ने उनकी ओर देखा तक नहीं। अंत में वह सब के सब निराश होकर वापिस अपनी राजधानी में आए।

इसके पश्चात् सनत्कुमार मुनि अपने शरीर के रोगों की वेदना को शान्त भाव से सहन करते हुए तपस्या करने लगे।

रोगों की विद्यमानता में ही उन्होंने अनेक वर्षों तक घोर तप किया। जिसके प्रभाव से उनको आमर्षौषधि, विप्रौषधि, खेलौषधि तथा जल्लौषधि आदि ऋद्धियों की प्राप्ति हो गई। किन्तु उन्होंने इन ऋद्धियों के प्रभाव से भी अपने रोग का शमन नहीं किया।

तप करने में उनके इस असीम धैर्य तथा सहनशीलता की प्रशंसा एक अन्य अवसर पर स्वर्ग में इन्द्र ने फिर की। तब पहिले वाले दोनों देव इन्द्र की सहमति से सनत्कुमार मुनि की परीक्षा लेने उनके पास आए। इस बार उन्होंने वैद्यों का रूप धारण किया। सनत्कुमार मुनि के पास जाकर उन्होंने उनसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक अनुनय की कि वह उनसे अपने रोगों की चिकित्सा करा लें। तब मुनि ने उनसे प्रश्न किया

मुनि—"वैद्यराज ! आप लोग किस दुःख की औषधि करते हैं ? शारीरिक दुःख की या आत्मिक दुःख की ?"

वैद्य—हम तो महाराज केवल शारीरिक दुःख की ही चिकित्सा करते हैं।

मुनि—शारीरिक दुःख का उपाय तो सरल है। यह तो लव से भी मिट सकते हैं।

ऐसा कह कर उन्होंने अपना लव अपने शरीर को लगाया। उसके लगाते ही उनका शरीर पूर्व के समान सुन्दर कान्तियुक्त हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने वैद्यों से कहा

मुनि—यदि आपके पास अष्टकर्मनाशक औषधि हो तो हम ले सकते हैं।

वैद्य—वह औषधि तो महाराज आपश्री के पास ही है। हम पामरों के पास वह औषधि किस प्रकार हो सकती है ?

ऐसा कह कर उन्होंने अपना स्वाभाविक सुन्दर देवरूप धारण कर उनकी बहुत प्रशंसा की। फिर वह उनकी सविनय वन्दना कर तथा उनको नमस्कार कर अपने स्थान को चले गए।

इधर सनत्कुमार मुनि ने अनेक वर्षों तक तप तथा संयम की आराधना करके केवल ज्ञान प्राप्त किया, जिससे वह सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी पद प्राप्त कर अन्त में मोक्ष गए।

श्री सोहनलाल जी के मुख से इस प्रकार की कथा सुन कर उनके चारों मित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहने लगे

"सोहनलाल ! धन्य है तुमको ! सचमुच आज तो तुमने हम सब की आंखें खोल दीं। वास्तव में हमने अपने मनुष्य जन्म को व्यर्थ ही गंवाया।"

इस पर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

"मित्रों ! बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय।"

मित्र—सोहनलाल जी ! हम सब एक साथ ही दुःखमोचिनी भगवती दीक्षा का वरण करेंगे।

सोहनलाल—मित्र ! कहना सहज है। किन्तु करके दिखलाना और फिर उसको पूर्णतया निभाना अत्यन्त कठिन है।

मित्र—सोहनलाल ! तुम हमारी यह प्रतिज्ञा स्मरण रखो कि अवसर आने पर हम अवश्य ही दीक्षा ग्रहण करेंगे।

सोहनलाल—यदि तुम दीक्षा ग्रहण करोगे तो तुम्हारे साथ ही मैं भी दीक्षा ले लूंगा।

इस प्रकार पांचों मित्र दीक्षा लेने का निश्चय करके उपाश्रय से उठ कर अपने अपने घर गए।

२६

सतीत्व रक्षा

नो निन्निहेज्ज वीरियं।

भगवान् महावीर ने उपदेश दिया है कि "अपनी वीरता को मत छिपाओ।"

एक बार गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से प्रश्न किया

गौतम—भगवन्! जो पुरुष सामर्थ्य होते हुए भी दुःखी के दुःख को दूर नहीं करता, वरन् खड़े खड़े देखता रहता है तथा उससे उदासीन रहता है वह किस कर्म को बांधता है?

भगवान्—गौतम! वह वीर्यान्तराय कर्म का उपार्जन करता है। उसके प्रभाव से भविष्य में उसे शक्ति प्राप्त नहीं होती। अतएव उसको धर्मरक्षा के समय पीछे नहीं हटना चाहिये।

इतिहास से भी यही बात सिद्ध है कि श्री राम ने केवल तारा के सतीत्व की रक्षा करने के लिये ही सहस्रगति को मारा था। छत्रपति शिवा जी ने दिलेर खां की पुत्री के शील की रक्षा करने के लिये औरंगजेब के पुत्र शाह आलम की कई सहस्र सेना का केवल तीस-पैंतीस वीरों को ले कर सामना कर उसमें सफलता प्राप्त की थी। वीरवर दुर्गादास राठौर ने एक बाला

के सतीत्व की रक्षा के लिये शिवा जी के पुत्र शम्भा जी का सामना किया था। बाद में इसी कारण शम्भा जी ने उसे गिरफ्तार करके औरंगजेब के पास भेज दिया था। किन्तु फिर भी वह वीर अपने प्रण पर अटल रहा और अन्त में उसे धर्म के प्रभाव से ऐसे सहायक भी मिल गए, जिन्होंने उसको छुटकारा दिला दिया। हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी ने एक बार चार कामपिपासुओं के पंजे में पड़ी हुई एक अबला के सतीत्व की रक्षा अपने बाहुबल से केवल अपनी बाईस वर्ष की आयु में की थी। घटना इस प्रकार है—

एक दिन वैशाख मास में श्री सोहनलाल जी किसी गृहकार्य वश पसरूर नगर से तीन मील दूर सौभाग सिंह के किले में गए थे। कार्य समाप्त करते करते आपको वहीं दिन छिप गया। वहां वालों ने आपको रात्रि भर वहीं रोकने का आग्रह भी किया। किन्तु आप न रुके और पसरूर के लिये चल ही दिये। मार्ग में दिन अच्छी तरह छिप गया और अंधकार हो गया। आप अपने विचारों में लीन हुए मार्ग में चले जा रहे थे कि आपके कान में किसी अबला के दुःख भरे निम्नलिखित शब्द पड़े

"अरे भाई! कोई मुझे बचाओ। यह पापी मेरा धर्म नष्ट कर रहे हैं।"

सोहनलाल जी इन शब्दों को सुनते ही यह समझ गए कि कोई अत्याचारी किसी अबला का सतीत्व नष्ट करने का यत्न कर रहा है। अतएव आप उसकी रक्षा करने के उद्देश्य से आवाज़ की ओर चल दिये। वहां जाकर आपने क्या देखा कि वई नदी के किनारे कुछ दूरी पर चार युवक खड़े हैं। उनके बीच में एक बीसवर्षीया सुन्दर स्त्री नीचे पड़ी थी। मार खाने

के कारण उसके मुख तथा नाक में से रक्त निकल रहा था। वह युवती उनसे कह रही थी।

"भले ही तुम मुझे जान से मार डालो, किन्तु मेरा धर्म मत बिगाड़ो।" ·

किन्तु उन नरपिशाचों के नेत्रों में उस अबला के लिये लेशमात्र भी दया नहीं थी। वह उसे मारते हुए कह रहे थे

"यदि तू राजी खुशी हमारी इच्छा पूरी कर देगी तो हम तुझको छोड़ देंगे, अन्यथा पहिले तेरी दुर्गति करके फिर तुझे बोटी बोटी करके काट डालेंगे और तेरे शरीर के टुकड़ों को इन झाड़ियों में फेंक देंगे।"

इस दृश्य को देख कर सोहनलाल जी के वीरहृदय में उसी समय कर्तव्य भावना का उदय हुआ। उनका रक्त वीरभाव से खौलने लगा। उन्होंने मन में विचार किया

"यद्यपि इन चारों के मुकाबले में मैं एकाकी हूँ, किन्तु मेरे साथ सत्य का अजेय बल है। यदि एक अबला की सतीत्व रक्षा करते समय मेरे प्राण भी चले गए तो कोई चिन्ता नहीं।"

इस प्रकार मन में विचार कर उन्होंने उन दुराचारियों को निम्नलिखित शब्दों में ललकारा

"खबरदार ! जो बहिन के शरीर को हाथ लगाया।"

सोहनलाल जी के यह शब्द सुन कर वह चारों सकपका कर एक दूसरे की ओर देखने लगे। तब उन में से एक ने सोहनलाल जी से कहा

"अरे नादान ! तुझे क्यों अपने प्राण भारी हो रहे हैं ? अपनी जान बचा कर ले जा। तुझे दूसरों से क्या मतलब ! इससे तेरा क्या नाता है ?"

सोहनलाल—यह मेरी बहिन है। जो भाई अपनी बहिन की इज्जत को लुटते हुए खड़ा खड़ा देखता रहे उसके जीवन को धिक्कार है। तुम्हें इस अबला का सतीत्व लूट कर क्या मिलेगा? तुम क्षणिक सुख के लिये एक अबला के जीवन को नष्ट करके अपने लिये नरक का द्वार क्यों खोल रहे हो?

सोहनलाल जी के इन वचनों को सुन कर वह चारों क्रोध में भर गए और कहने लगे

"लातों के देवता बातों से नहीं माना करते। देखो! इसके पास कोई भी शस्त्र नहीं है, फिर भी यह किस प्रकार अकड़ रहा है। जान पड़ता है इसको यहां इसकी मौत ही बुला कर लाई है।"

ऐसा कह कर उन में से एक ने सोहनलाल जी पर लाठी का वार किया। सोहनलाल जी प्रतिदिन व्यायाम किया करते थे। इस कारण वह लाठी के दांव पेंच खूब जानते थे। उन्होंने उसके वार को बचा कर ऐसी लात जमाई कि लाठी उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ी। सोहनलाल जी ने फुर्ती से लाठी उठा कर उस पर ऐसी जोर से वार किया कि वह उसको सहने में असमर्थ हो कर गिर पड़ा। उसके गिरने पर शेष तीनों ने क्रोध में भर कर अपनी अपनी तलवारें निकाल लीं। वह सोहनलाल जी पर वार पर वार करने लगे। किन्तु सोहनलाल जी उन के सभी वारों को लाठी पर झेलते हुए उन पर अपनी लाठी से चोट भी करते जाते थे। इस बीच सोहनलाल जी की लाठी का वार एक के ऊपर ऐसा करारा लगा कि वह भी गिर पड़ा तथा तलवार उसके हाथ से छूट कर युवती के पास आ गिरी। अब तो युवती भी सोहनलाल जी के अटल धैर्य तथा अद्भुत साहस को देख कर अपनी पीड़ा को भूल कर फुर्ती से उठ कर खड़ी हो

गई। उसने अपने पास गिरी हुई तलवार को उठा लिया और सोहनलाल जी की सहायता करने के लिये आ गई।

अब तो उन दोनों ने यह विचार किया कि "जब इस अकेले ने ही हमारे दो आदमियों को घायल कर दिया तो अब तो यह युवती भी इसकी सहायता को आ गई। यह तो जान पर भी खेल सकती है। ऐसी दशा में न जाने क्या हो।"

वह लोग इस प्रकार अपने मन में विचार कर ही रहे थे कि उधर से घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई दिया। उस शब्द को सुनते ही वह दोनों वहां से भाग निकले। तब सोहनलाल जी उस युवती को अपने साथ लेकर उन घायलों को वहीं पर छोड़ कर पसरूर की ओर चल दिये। नगर के समीप आने पर उन्होंने युवती से पूछा

सोहनलाल—बहिन ! तुम कौन हो और इनके फंदे में किस प्रकार पड़ गई थीं ?

युवती भय के कारण अब भी थरथर कांप रही थी। उसने अपने को संभाल कर उत्तर दिया

युवती—भाई ! मैं इसी नगर के खत्री की पुत्री हूं। मेरी माता गांव गई हुई है। इन में से एक ने आकर मुझ से कहा कि 'तेरी मां मार्ग में आते हुए गिर पड़ी है और तुझे शीघ्र बुला रही है।' मैं उसकी बात को सत्य मान कर उसके साथ हो ली। जब मैं नगर से कुछ दूर चली आई तो शेष तीन युवक भी निकल आए। फिर वह मुझे पकड़ कर वहां तक ले गए। यदि आप वहां समय पर पहुँच कर मेरी सहायता न करते तो न जाने मुझ पर क्या बीतती। उस समय घर पर भी मैं अकेली ही थी। अतएव मेरे आने का पता किसी को भी नहीं था।

सोहनलाल—बहिन ! मैं ने तो कोई खास कार्य नहीं किया। यह तो मेरा साधारण धर्म था। वास्तव में तुम्हारी रक्षा तुम्हारी धर्मदृढ़ता ने की है। धन्य है तुमको जो तुमने ऐसे संकट के समय भी धर्म को न त्यागा।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए उस लड़की का घर आ गया। घर पहुंच कर लड़की ने अपने पिता आदि को सब घटना सुनाई। उसे सुन कर सभी ने सोहनलाल जी की बहुत प्रशंसा की। वह कहने लगे

"आपने आज हमारे कुल की लाज रखली। हम आपके इस ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकते।"

इसके बाद उस लड़की ने सोहनलाल जी से कहा

"भाई ! आज तुमने मेरा अनंत उपकार किया है। आपने मेरे प्राण की तथा प्राण से भी अधिक सतीत्व धर्म की रक्षा की है। इसके लिये मैं तुम्हारी किन शब्दों में प्रशंसा करूं। परमात्मा तुम्हारा मंगल करे।

इस पर सोहनलाल जी बोले

"भाई का कर्तव्य था कि वह बहिन के संकट के समय उसकी सहायता करता। मैंने इससे अधिक कुछ भी नहीं किया। यह तो केवल धर्म का ही प्रभाव था, अन्यथा कहां वह चार चार शस्त्रधारी और कहां मैं निहत्था और अकेला।"

उस युवती को उसके घर छोड़ कर सोहनलाल जी पर्याप्त रात गए अपने घर पहुँचे। किन्तु उनके द्वारा किया हुआ यह वीर कार्य बात की बात में सारे नगर की चर्चा का विषय बन गया। लाला गंडा मल और उनकी पत्नी ने जब इस समाचार को सुना तो उन्होंने सोहनलाल जी को बहुत शाबाशी दी।

२७

आदर्श करुणा

एगे आयाणुकंपाए नो पराणुकंपाए,
एगे पराणुकंपाए नो आयाणुकंपाए।
एगे आयाणुकंपाए वि पराणुकंपाए वि,
एगे नो आयाणुकंपाए नो पराणुकंपाए॥

ठाणांग सूत्र, चतुर्थ ठाणा

भगवान् महावीर स्वामी ने ठाणांग सूत्र के उपरोक्त वाक्य में चार प्रकार के मनुष्य बतलाए हैं। एक मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपनी अनुकम्पा तो करते हैं, किन्तु दूसरे की अनुकम्पा नहीं करते। उनमें प्रत्येक बुद्ध, जिनकल्पी तथा निर्दयी व्यक्तियों का अन्तर्भाव किया जाता है। दूसरे वह होते हैं जो अपनी अनुकम्पा तो नहीं करते, किन्तु दूसरे की अनुकम्पा अवश्य करते हैं। उनमें तीर्थंकरों तथा मेतार्य जैसे महान् परमार्थी मुनीश्वरों का अन्तर्भाव किया जाता है। तीसरे वह होते हैं जो अपनी तथा दूसरे दोनों की अनुकम्पा किया करते हैं। इनमें स्थविरकल्पी मुनिवरों की गणना की जाती है। चौथे वह होते हैं जो अपनी तथा पराई दोनों की ही अनुकम्पा नहीं करते। इनमें अभव्य प्राणियों का समावेश किया जाता है।

उपरोक्त उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि जिस आत्मा में अनुकम्पा नहीं, वह कभी भी आत्म कल्याण नहीं कर सकता।

अनुकम्पा मनुष्यत्व का प्रधान अंग है। इसी को करुणा भी कहते हैं। जिस मनुष्य में इस गुण की अधिकता होती है उसे करुणासागर अथवा दयासागर कहा जाता है। हमारे चरित्र-नायक श्री सोहनलाल जी का सम्पूर्ण जीवन भी करुणा से परिपूर्ण था। उनकी व्यापारी अवस्था की एक आदर्श करुणा की घटना का वर्णन किया जाता है

दशहरा के बाद जो दीपमालिका का पर्व आता है, उसमें प्रत्येक भारतीय अपने अपने घर की सफाई करवाता है। श्री सोहनलाल जी भी अपने भवन की सफाई करवा रहे थे कि उन्होंने अपने भवन में नवीन सामान देख कर अपनी मामी से पूछा

सोहनलाल—मामी जी ! अपने घर में यह सामान किस का रक्खा हुआ है ? मैंने तो यहां इसको कभी नहीं देखा।

इस पर मामी जी ने उत्तर दिया

मामी—बेटा ! यह सामान अपने पड़ौसी दुर्गादास खत्री का है।

सोहनलाल—उन्हीं का, जो प्रत्येक साधु साध्वी का व्याख्यान सुनने के लिए प्रतिदिन उपाश्रय जाया करते हैं, बीच में एक दिन का भी व्यवधान नहीं पड़ने देते और यथाशक्ति धार्मिक क्रियायें भी करते रहते हैं ?

मामी जी—हां ! उन्हीं का है।

सोहनलाल—तो फिर उन्होंने अपने इस सामान को हमारे यहां क्यों रक्खा है ?

मामी जी—उनके यहां कुर्की आने वाली है। कुर्की वालों का नियम है कि वह घर में जो भी सामान देखते हैं उसी को

नीलाम कर देते हैं। कभी कभी तो वह घर में इतना सामान भी नहीं छोड़ते कि ऋणी व्यक्ति अपने बाल बच्चों को शाम का भोजन भी खिला सके। इन निर्दय कुर्की वालों का हृदय सामने रोते हुए औरत बच्चों को देख कर भी नहीं पसीजता। उनको तो केवल अपने धन का ही ध्यान रहता है, फिर किसी के बाल बच्चे भले ही भूखे मर जावें। उनको तो अपना मूलधन मय ब्याज के मिलना ही चाहिये। ऐसे राक्षसों से बचाने के लिये ही दुर्गादास जी ने अपना सामान हमारे यहां रक्खा है।

सोहनलाल—किन्तु मामी जी! उससे क्या बनेगा? भले ही इस प्रकार वह अपने कुछ सामान को बचालें, किन्तु प्राणों से भी प्रिय उनका सम्मान तो नष्ट हो जावेगा। मामी जी! यह तो सम्भव नहीं है कि आपने इस समाचार को जान कर उनके दुःख निवारण का कोई उपाय न किया हो।

मामी जी—बेटा! तुम्हारा अनुमान ठीक है। मैंने अत्यन्त यत्न किया कि वह मुझसे धन ले कर अपना ऋण चुका दे, किन्तु उसने साफ इंकार कर दिया। मैंने यहां तक कहा कि यदि तुम दान रूप में नहीं लेना चाहते तो उधार ही ले लो और जब तुम चुकाने योग्य बनो उसे अपनी सुविधानुसार चुका देना। इस पर उसने उत्तर दिया कि "मैं एक का ऋण उतारने के लिए दूसरे का ऋण अपने सिर पर नहीं चढ़ाऊंगा"। उसने यह भी कहा कि "आपकी छत्र छाया तो प्रत्येक दीन व्यक्ति के लिए खुली ही रहती है, जिस दिन हमारा किसी प्रकार भी गुजारा नहीं चलेगा, उसी दिन हम आपकी छत्र छाया में आ जावेंगे। और यह सामान जो आपके यहां रक्खा है वह साहूकार को धोखा देने के लिये नहीं रक्खा है, वरन् जिस समय मेरे बड़े चचेरे भाई बीमार थे उस समय उन्होंने यह

सामान अपने अल्पवयस्क पुत्र की धरोहर के रूप में दिया था। उनका वह बालक अभी नौ वर्ष का है। यदि मैं अभी से उसको यह सामान सौंप दूं तो वह उसकी रक्षा न कर सकेगा। इस लिए इस धरोहर को सुरक्षित रखने के लिए इसे आपके पास रक्खा है।" उसके यह कहने के बाद उससे दुबारा आग्रह करने का मुझे साहस न हुआ।

सोहनलाल—मामी जी! धन्य है दुर्गादास को, जो ऐसी पीड़ित अवस्था में भी दूसरे की धरोहर को सुरक्षित रखने का उसे इतना अधिक ध्यान है। उसकी तो किसी प्रकार सहायता करनी ही चाहिये।

मामी जी— बेटा! हमारे परिवार में तुम ही बुद्धिनिधान हो। तुम कोई ऐसा तरीका निकालो कि दुर्गादास को पता भी न चले और उसका ऋण इस प्रकार चुक जावे कि उसके आत्म-सम्मान को ठेस भी न लगे।

सोहनलाल—मामी जी! आप मुझे केवल यह बतला दें कि उस पर कुर्की लाने वाले कौन हैं। इतना पता लग जाने पर शेष प्रबन्ध मैं स्वयं कर लूंगा।

मामी जी—बहुत अच्छा! मैं दुर्गादास की पत्नी से पूछ कर तुमको बतला दूंगी।

कुछ देर के बाद उन्होंने दुर्गादास की पत्नी को अपने घर बुलवाया। कुछ देर तक इधर उधर की बातें करने पर उन्होंने उससे कहा

मामी जी—बहिन! क्या कारण है कि तुम दिन प्रतिदिन अत्यधिक निर्बल होती जाती हो? जान पड़ता है कि किसी आन्तरिक चिन्ता के कारण तुम मन ही मन घुली जा रही हो।

खत्रानी—बहिन! ऐसी कोई बात नहीं है।

मामी जी—बहिन ! यह तो तुम मुझे केवल भरमाने के लिए ही कह रही हो। बहिन तुम यह विश्वास रक्खो कि मैं तुम्हारा भेद किसी और के सामने नहीं खोल सकती।

खत्रानी—बहिन ! एक न एक दिन तो उस भेद को सारा संसार जानेगा ही, किन्तु समय से पूर्व कहना अच्छा नहीं लगता। फिर भी तुम मुझे अपनी बहिन के समान समझती हो इस लिये तुमको मैं यह बतला देती हूं कि दिवाली बाद हमारे घर कुर्की आने वाली है। मैं भगवान् से यही प्रार्थना करती रहती हूं कि भगवान् वह दिन आने से पूर्व ही मुझे मौत दे दे, जिससे मुझे अपने नेत्रों से अपने परिवार का अपमान न देखना पड़े।

मामी—बहिन ! कुर्की कौन लेकर आवेगा ? क्या उनको समझाने से कुर्की को कुछ दिन के लिये टाला नहीं जा सकता ?

खत्रानी—बहिन ! आप तो तोते शाह को जानती हो। वह ऋण वसूल करने में बड़ा कड़ा आदमी है। छूट या मोहलत के नाम से तो उसे भारी चिढ़ है।

मामी जी—बहिन ! क्या जाने, भगवान् उसे सुबुद्धि दे दे और वह तुमको कुछ मोहलत दे दे।

दुर्गादास की स्त्री के चले जाने पर मामी जी ने सोहनलाल जी को तोते शाह का नाम बतला दिया। सोहनलाल जी ने तोते शाह के पास जाकर उसने पूछा

सोहनलाल—शाह जी ! आपको दुर्गादास से कितना रुपया लेना है।

तोते शाह—१५००) मूल, २०००) ब्याज तथा ५००) खर्चा कुल चार सहस्र रुपया लेना है। उस रक़म की मैं ने डिग्री ले ली है।

सोहनलाल—यदि कोई इस रुपये को भर दे तो आप उससे तो नहीं मांगोगे ?

तोते शाह—फिर मुझे उससे मांगने की क्या आवश्यकता है ?

यह बात सुन कर सोहनलाल जी ने उसको चार सहस्र रुपये दे कर उससे डिग्री की रसीद लिखवा कर डिग्री वाला कागज भी ले लिया और उससे कहा

सोहनलाल—सेठ जी ! अब आप इतना काम करें कि दुर्गादास को बुला कर उससे कहें कि "तुम धर्मात्मा हो । इस लिये मैं तुमको सहूलियत देता हूँ कि तुम प्रति वर्ष चार सौ रुपये दिया करो । इस प्रकार तुम्हारा सम्मान भी बना रहेगा और हमारा रुपया भी मिल जावेगा ।" जो जो रुपया आपको उनसे मिलता रहे वह आप हमारी दूकान पर भेज दिया करें । किन्तु यह ध्यान रहे कि इस बात का पता दुर्गादास या और किसी को भी न लगने पावे ।

तोते शाह—किसी और से कहने की मुझे क्या पड़ी है । इससे तो मेरी ही इज्जत बढ़ेगी ।

सोहनलाल जी के चले जाने पर तोते शाह ने दुर्गादास को बुला कर उससे कहा

तोते शाह—दुर्गादास जी ! आप विश्वासपात्र आदमी हैं । मैं चाहता हूं कि आपका सम्मान बना रहे । मेरा तथा आपका लेनदेन काफी समय से है। इसलिये मैं आपको इतनी सहूलियत देता हूँ कि आप मेरा रुपया चार सौ रुपया वार्षिक किस्त के हिसाब से दस वर्ष में चुका दें । इस प्रकार मेरा रुपया वसूल हो जावेगा और आपका सम्मान भी बना रहेगा ।

तोते शाह के इन शब्दों को सुन कर दुर्गादास को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। उसने इसे धर्म का साक्षात् प्रभाव मान कर और भी दृढ़तापूर्वक धर्म का पालन करना आरम्भ किया। इस समाचार से उसके सारे परिवार को भी बड़ा भारी आनन्द हुआ।

इस समाचार को सुन कर मामी जी तत्काल समझ गईं कि यह सोहनलाल का काम है। उन्होंने सोहनलाल जी के घर आने पर उनसे पूछा

मामी जी—बेटा! तुमने तोते शाह को किस प्रकार राजी किया?

इस पर सोहनलाल जी ने अपनी मामी को सारा समाचार सुना दिया। मामी जी सारा वृत्तांत सुन कर सोहनलाल की चतुरता पर अत्यधिक प्रसन्न हो कर उनसे कहने लगीं

मामी जी—बेटा! तुम सचमुच हमारे परिवार में मुकुट-मणि हो।

सोहनलाल—मामी जी! यह सब आपका ही प्रताप है। यदि आप मुझे यह घटना न सुनातीं, मुझे इस कार्य के करने की प्रेरणा न करतीं और तोते शाह का नाम न बतलातीं तो मैं इस कार्य को किस प्रकार कर सकता था?

२८

दीनों का कष्ट निवारण

करुणाकर से करुणा के लिये,
करुणाक्रन्दन करके देखो।

यदि तुम पर अत्यधिक आपत्ति आ गई है और उसके निवारण के लिये तुम को उस करुणामय की करुणा की वास्तव में आवश्यकता है तो एक बार वास्तव में करुणाक्रन्दन करके देखो। तुम्हारा कष्ट अवश्य दूर होगा।

आज दिवाली का दिन है। सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हो कर अपने अपने घर के लिये बाजार से अनेक प्रकार की वस्तुएं ला रहे हैं। सोहनलाल जी भी पसरूर की अपनी दूकान पर बैठे हुए अपने कार्य में व्यस्त हैं। आज उनकी दूकान पर ग्राहकों की अधिक भीड़ है। किन्तु वह सभी ग्राहकों को संतुष्ट करके उनके हाथ शांतिपूर्वक माल बेच रहे हैं। उसी समय एक द्वादशवर्षीया बालिका सुन्दर साड़ी पहिन कर एक थाल में जलते हुए दीपकों को सजा कर अपनी माता की आज्ञा से उन दीपकों को देवमंदिर में रखने को ले जा रही है कि मार्ग में उसने जलते हुए दीपकों की मंद हवा के झोंकों से रक्षा करने के लिये उनको अपनी साड़ी के पल्ले से ढक लिया। वह मंद मंद

गति से चलती हुई सर्राफा बाजार में पहुंची। वहां वह दूकानों की अद्भुत सजावट को देखने लगी तो उसका ध्यान दीपकों के थाल पर से हट गया, जिस से उसकी साड़ी का पल्ला ढीला होकर दीपक से छू गया। अब तो उसकी साड़ी एक दम धू धू करके जलने लगी।

बालिका अपने को मृत्यु मुख में देख कर एक दम घबरा उठी। थाल उसके हाथ से छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उससे उसकी साड़ी नीचे से भी जलने लगी। इससे घबरा कर बालिका के मुख से एक जोर की चीख निकल गई। उसकी करुणोत्पादक दर्दभरी चीख को आसपास के सभी दूकानदारों तथा मार्ग चलने वालों ने सुना और वह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उस बालिका की ओर देखने लगे। किन्तु सोहनलाल जी इस दृश्य को देख कर अपनी खुली हुई दूकान तथा ग्राहकों के सामने फैले हुए आभूषणों सभी को भूल कर अपनी दूकान से तुरंत कूद पड़े। उस बालिका के पास पहुंच कर उन्होंने उसकी साड़ी के जलते हुए भाग को अपने पैरों के नीचे दबा कर उसको हाथ से भी मलना आरम्भ किया। साड़ी की आग बुझाने में उनके दोनों हाथ तथा पैर झुलस गए, किन्तु उन्होंने अपना प्रयत्न न छोड़ा। अंत में उन्होंने साड़ी की आग को पूर्णतया बुझा दिया, जिससे बालिका के प्राण भी बच गए। वह बालिका अपने प्राणों को संकट में डाल कर एक अपरिचित बहिन की प्राण रक्षा करने वाले महान् वीर भाई की प्रशंसा करती हुई अपने घर चली गई। सोहनलाल जी इसके पश्चात् अपनी दूकान पर इस प्रकार जाकर बैठ गए, जैसे कुछ भी न हुआ हो।

जब आपने घर जाकर अपने हाथ पैर में मरहम लगाया तो आपकी मामी जी ने आप से कहा

"बेटा ! तुम्हारे हाथ पैर में तो बड़ी भारी जलन हो रही होगी ?"

इस पर आपने उत्तर दिया

"मामी जी ! मेरा यह कष्ट श्री गज सुकुमाल मुनि के उस कष्ट के मुकाबले तो कुछ भी नहीं है, जो उनको अपने सिर पर रक्खे हुए आग के प्रज्वलित अंगारों से हुआ था। यद्यपि उससे उनके मस्तक का सम्पूर्ण मांस जल गया था, किन्तु वह अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए थे। ऐसी स्थिति में एक बालिका की प्राण रक्षा करते हुए जो मेरे हाथ पैर में यह फफोले पड़ गए, वह कुछ भी नहीं हैं।

मामी जी अपने धर्मप्रिय ननदोत के ऐसे अपूर्व विचार सुन कर मन ही मन प्रसन्न होती हुई लक्ष्मी पूजा के कार्य में लग गईं।

किसी व्यक्ति को आपत्ति में देख कर सोहनलाल जी के हृदय में तत्काल उसकी रक्षा करने का उत्साह हो आता था। एकबार गर्मियों के दिनों में लोग सतलज नदी में स्नान करने जा रहे थे। नदी में जल अधिक था। लोगों की देखा देखी कुछ बच्चों ने भी शौक में आकर उसमें छलांग लगा दी। उनमें एक बच्चा तैरना नही जानता था। वह अन्य लड़कों की देखा देखी धारा के बीच में चला गया। अब तो उसके हाथ पैर फूल गए और वह डूबने लगा।

लड़का चीख २ कर सहायता की याचना करने लगा। किंतु जल के तेज प्रवाह को देख कर उसकी सहायता करने का साहस किसी को भी नहीं हुआ। अन्त में सोहनलाल जी से जो वहां स्नान कर रहे थे—यह दृश्य न देखा गया और उन्होंने अपने प्राणों की परवाह न करके नदी में छलांग लगा ही दी।

वह तेजी से तैरते हुए उस बालक की ओर चले। उन्होंने अपने साथ एक रस्सा लिया हुआ था, जिसको वह कमर में बांध कर उसी की सहायता से लड़के को लाने का विचार कर रहे थे।

वह लड़का डूबने ही वाला था कि सोहनलाल जी ने जाते ही उसको पकड़ कर ऊपर को उठाया और उसकी कमर में रस्से को मजबूती से बांध कर उस लड़के को लिए हुए बड़ी कठिनता से तैरते हुए किनारे पर आगए। उनके जल से बाहिर निकलते ही लोगों ने तालियां बजा कर उनका स्वागत किया और उनकी वीरता की प्रशंसा की। सोहनलाल जी ने प्रथम उस लड़के के पेट का पानी निकाला। फिर उन्होंने उसको औषधि दी, जिससे वह कुछ होश में आया। तब तक उस लड़के के माता पिता भी सतलज पर आ गए थे। वह सोहनलाल जी का अत्यधिक उपकार मानते हुए अपने लड़के को अपने घर ले गए।

एक बार सम्बत् १६२५ में सोहनलाल जी सराफे का माल मोल लेने दिल्ली गए। समय वर्षा ऋतु का था। यमुना नदी अपने पूरे वेग से चढ़ी हुई मर्यादा का उल्लंघन कर रही थी। रात दिन आनन्द विलास में डूबी रहने वाली दिल्ली की जनता इस दृश्य को देखने के लिये नदी के किनारे बड़ी भारी संख्या में जा रही थी। इसी समय एक अल्हड़ अबोध बालिका भी यमुना की असीम जल राशि को देख कर आनन्द से मुग्ध हो कर अपने दोनों हाथों से तालियां पीटती हुई नाच रही थी। उसकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं था। यमुना के जल में फूलों का एक गुलदस्ता बहता हुआ आ रहा था। बालिका उसको पकड़ने के लिए पानी की ओर झुकी कि उसका पैर फिसल गया और वह यमुना के जल में गिर पड़ी। अब तो

वह यमुना के जल प्रवाह में तेजी से बह चली। जनता उसको देख कर खेद प्रकट करने लगी, किन्तु यमुना के उस प्रचण्ड प्रवाह में कूद कर उस कन्या के प्राण बचाने का साहस किसी को भी नहीं हुआ। उसकी माता बिलख बिलख कर रोती हुई जनता से प्रार्थना कर रही थी कि कोई उसकी पुत्री के प्राण बचा दे। किन्तु उसकी प्रार्थना पर ध्यान देने के लिए कोई भी वीर अग्रसर होने का साहस न कर सका। बालिका भी 'मुझे बचाओ' 'मुझे बचाओ' का शब्द करके रोती हुई बहती चली जाती थी। उस समय सोहनलाल जी भी यमुना के प्रवाह को देखने यमुना तट पर गए हुए थे। बालिका तथा उसकी माता की करुण पुकार पर उनका वीर हृदय करुणा से भर गया। अतएव वह तत्काल उसकी रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुए उस अपार जल राशि में सहसा कूद पड़े। अब उन्होंने अपनी बलिष्ठ भुजाओं से यमुना की छाती को चीरते हुए पूर्ण वेग से उस बालिका की ओर बढ़ना आरम्भ किया। उनको यमुना जी में कूदते तथा प्रवाह में जाते हुए देख कर सभी ने उनसे कहा कि "भाई आगे मत बढ़ो, वापिस लौट आओ। लड़की ने तो बचना ही क्या है। तुम निश्चय से अपने प्राणों को संकट में डाल रहे हो।"

किन्तु सोहनलाल जी ने उन लोगों के कहने पर ध्यान नहीं दिया और वह यमुना के प्रबल प्रवाह में आगे बढ़ते ही गए। अन्त में वह बालिका के पास पहुंच ही गए। उन्होंने बालिका को अपनी हथेली पर थाम लिया और दूसरे हाथ से उस अनन्त जल राशि को चीरते हुए किनारे की ओर आने लगे! किनारे पर खड़े सभी व्यक्तियों की आंखें इस परकाजी महा पुरुष के अलौकिक साहस पर एकाग्रता से लगी हुई थीं। जिस

समय वह बालिका को ले कर किनारे पर पहुँचे तो सारी जनता ने बड़ी भारी हर्षध्वनि करके उनका स्वागत किया। बालिका की माता तो पगली के समान उनकी ओर को दौड़ी। उसने उनके पास पहुंचते ही अपनी पुत्री को हृदय से लगा लिया। अपनी बेटी को अपनी गोद में लेकर वह सोहनलाल जी से बोली

"भाई! धन्य है तेरे माता पिता को, जिन्होंने तेरे जैसे अद्भुत वीर, साहसी तथा धर्मात्मा पुत्र को जन्म दिया। तू ने आज अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुये मेरी बच्ची को मृत्यु के मुख से निकाल लिया। मैं नहीं जानती कि तुझे किन शब्दों में धन्यवाद दूं तथा क्या पुरस्कार दूं।"

उसके इन शब्दों को सुन कर सोहनलाल जी बोले

"बहिन! यह कोई बड़ी बात नहीं है। यह तो एक मनुष्योचित साधारण कर्तव्य था। मैंने यह कार्य उपकार को ध्यान में रख कर नहीं किया। इस बालिका को जल में बहते देख कर मेरा अन्तरात्मा अत्यन्त व्याकुल हो गया तथा उसकी रक्षा करने के लिए तड़प उठा। मैंने तो अपने आत्मा को शान्त करने के लिए जल में कूद कर बालिका के प्राण बचाए। मुझे प्रसन्नता है कि मेरा परिश्रम सफल हो गया। वास्तव में इस समय मेरा आत्मा अत्यन्त शान्त तथा प्रसन्न है। यह क्या मेरे लिये कम पुरस्कार है? इस समय तो आप इस छोटी सी बच्ची को सात्वना दें, क्योंकि यह अभी भी घबरा रही है। मुझे इसी के सुख में सुख तथा शान्ति है।"

ऐसा कह कर सोहनलाल जी उस अपार भीड़ में अदृश्य होगए और बहुत कुछ ढूंढने पर भी नहीं मिले।

एक बार श्री सोहनलाल जी चैत्र शुक्ल पक्ष में पसरूर से व्यापार के कार्यवश लाहौर आए हुए थे। लाहौर उन दिनों संयुक्त पंजाब की राजधानी था। अतएव उसकी शोभा उन दिनों अत्यधिक बढ़ी चढ़ी थी। उन दिनों का लाहौर भारत के फैशन वाले नगरों में सब से आगे था। उसके अनारकली बाजार की शोभा का वर्णन करना सुगम नहीं है। इस अनारकली बाजार में जहां धनिक लोगों की अनेक वैभवशाली अट्टालिकाएं थीं, वहीं एक दीन अंधा भिक्षुक भी जा रहा था। उसके शिर में अनेक फोड़े थे, जिनसे पीप निकलने के कारण उस पर सहस्रों मक्खियां बैठी हुई थीं। उसके शरीर के वस्त्र अत्यधिक मलिन थे, जिन पर स्थान स्थान पर रक्त तथा पीप के धब्बे उस वातावरण को अपनी दुर्गन्ध से भर रहे थे। भिक्षुक के शरीर का रंग भी काला था। अपने एक हाथ में खप्पर तथा दूसरे हाथ में लाठी थामे हुए वह अत्यन्त करुणामय वचनों से अपनी दीनता प्रकट करते हुए भीख मांग रहा था।

इसी समय पीछे से एक बग्गी बड़ी तेजी से आई। उसके सामने से एक कृषक अपनी बैलगाड़ी में अनाज लादे हुए चला आ रहा था। बग्गी के कोचवान ने अंधे को हटाने के लिये घंटी बजाई, किन्तु अंधे ने अपना ध्यान अन्यत्र होने के कारण उसे नहीं सुना। बग्गी के घोड़े पूर्ण वेग से जा रहे थे। अतएव वह अंधे को धक्का देते हुए आगे निकल गए। अंधा उस धक्के को सहन करने में असमर्थ होकर वहीं गिर पड़ा और बग्गी उसके ऊपर से निकल गई। कोचवान ने पकड़े जाने के भय से पीछे फिर कर भी नहीं देखा और वह अपने अश्वों को और भी तेजी से हांकता हुआ वहां से दूर निकल गया।

अंधे भिक्षुक के शिर तथा पैरों में भारी चोट लगी और

उनमें से रक्त निकलकर उसके वस्त्रों को अपना रंग देता हुआ सड़क की धूल को भी अपने रंग में मिलाने लगा। जनता ने इस दृश्य को देखा। वह उसके चारों ओर एकत्रित होकर कोचवान को कोस कर उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने लगी। किन्तु उसके घृणोत्पादक शरीर को देख कर किसी को भी उसकी सेवा सुश्रूषा तथा मरहम पट्टी करने का साहस न हुआ। उधर वह अंधा चोट लगने के कारण महान् करुणोत्पादक शब्दों में रो रो कर अपने भाग्य को दोष देता हुआ कष्ट के कारण बेहोश हो गया। उस समय हमारे चरित्रनायक श्री सोहनलाल जी -पास ही एक सर्राफ़ की दूकान पर बैठे हुए अपने मित्रों से वार्तालाप कर रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि उस बेहोश अंधे भिक्षुक पर पड़ी। देखते ही उनका कोमल हृदय करुणा से भर गया। वह उठ कर उस भिक्षुक के पास गए। वहां जाकर उन्होंने उसके घृणोत्पादक शरीर को अपनी गोद में ले लिया। प्रथम उन्होंने उसके घावों को साफ़ किया। फिर उन्होंने अपने उत्तरीय वस्त्र को फाड़ कर उसके सिर में पट्टी बांधी। इसके पश्चात् वह उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगे।

अंधा जब होश में आया तो उसने अपने को किसी की गोद में पा कर उससे प्रश्न किया

"भाई ! मैं कहां हूं ?"

तब सोहनलाल जी ने उसे उत्तर दिया

"भाई ! तुम यहीं सड़क पर हो। बतलाओ तुम्हारी तबियत कैसी है ?"

उस भिक्षुक के जीवन में आज यह बिल्कुल नई बात थी। आज तक सहानुभूति अथवा प्रेम के शब्द का उसको लेशमात्र भी अनुभव नहीं था। अतएव इस समय वह प्रेमपूर्ण

व्यवहार देख कर अपने कष्ट को भूल गया। उस अत्यधिक कष्ट के समय भी उसके मुख पर आनन्द एवं शांति की आभा छा गई। उसके नेत्रों से आनन्द के अश्रु बह निकले। अपने रक्षक के प्रति श्रद्धा से उसका हृदय परिपूर्ण हो उठा। उसने गद्‌गद कंठ से कहा

"भाई ! मेरा तो सारा जीवन ही कष्ट में बीता है। तुम मेरे लिये क्यों कष्ट कर रहे हो। तुम्हारे वस्त्र तो निश्चय ही रक्त और पीप से भर गए होंगे। मैं तुम्हारी सेवा को जन्मभर नहीं भूलूंगा। अब मैं होश में हूं। अतएव अब तुम प्रसन्नता पूर्वक जा सकते हो।"

इस पर सोहनलाल जी ने उत्तर दिया

"भाई ! मैं भगवान् महावीर का सेवक हूं। मुझे अपने माता पिता से यही शिक्षा मिली है कि 'आत्मकल्याण करने की इच्छा वाले को दूसरों को सुखी बनाने के लिये अपने सुखों का बलिदान करना सीखना चाहिये। उसको उचित है कि वह दूसरों के सुख को अपना सुख माने और दूसरों के दुःख को दूर करने का सदा प्रयत्न करता रहे। अतएव मेरे भाई, यह वस्त्र तो क्या चीज हैं यदि मेरा सारा शरीर भी रक्त पीप से भर जावे तब भी मैं सेवा से मुख नहीं मोड़ूंगा।"

ऐसा कह कर उन्होंने दूध मंगवा कर उसको प्रेमसहित पिलाया। फिर वह उसे तांगे में लेटा कर अस्पताल ले गए। उन्होंने अपने पैसे से उसके लिये नवीन वस्त्र बनवाए तथा डाक्टर को भी रुपया दे कर इस बात का प्रबंध कर दिया कि अस्पताल में उसकी ठीक ठीक सेवा सुश्रूषा होती रहे। उस अंधे को जब तक आराम नहीं हुआ सोहनलाल जी उसे सांत्वना देने के लिये प्रति दिन अस्पताल जाते रहे। उनके ऐसे अलौकिक

प्रेम भरे व्यवहार को देख कर अंधा उनको साक्षात् दीनबंधु समझता था। वह अपनी रोगशय्या पर पड़े पड़े सोचा करता था कि "इस व्यक्ति का प्रेम तो राम द्वारा शबरी से किये हुए प्रेम अथवा कृष्ण द्वारा सुदामा से किये हुए प्रेम से बढ़ कर है, क्योंकि शबरी राम की भक्त थी और सुदामा कृष्ण का मित्र था। मैं तो इसका न भक्त हूं और न मित्र ही हूं। फिर भी यह मेरी निःस्वार्थ सेवा कर रहा है। भगवान् वही है जो भक्त का दुःख दूर करे। किन्तु जो अभक्तों का दुःख दूर करे वह तो भगवान् से भी बढ़ कर है।"

२६

दीक्षा ग्रहण

माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए।
जरामरणघत्थम्मि, खणं पि ण रमामहं॥

उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन १६, गाथा १५

व्याधि और रोगों के घर, जन्म तथा मरण से घिरे हुए इस असार मनुष्य जन्म में मैं क्षण भर भी आनन्द नहीं मानता।

यह पीछे बतलाया जा चुका है कि संवत् १६२३ में श्री सोहनलाल जी की सगाई (नाता) मांझा (पट्टी) शहर में एक समृद्धिशाली तथा सर्वप्रतिष्ठित घराने में हो चुकी थी। उस समय उनकी आयु कुल सतरह वर्ष की थी। अगले वर्ष संवत् १६२४ में लड़की वालों ने विवाह के लिये आग्रह किया तो लाला गंडा मल ने अपने सभी घर वालों की सम्मति से उत्तर दिया कि विवाह २५ वर्ष की आयु से पूर्व नहीं किया जा सकता। इसके पश्चात् जब १६२८ में कन्या पक्ष वालों ने विवाह का प्रस्ताव फिर किया तो श्री सोहनलाल जी ने स्वयं ही यह कह कर इंकार कर दिया कि जब तक मैं अपने पेरों पर खड़ा नहीं होऊंगा, तब तक मैं विवाह नहीं करूंगा।

संवत् १६२६ में एक बार श्री सोहनलाल जी व्यापार काय वश पसरूर के समीप एक गांव में गए। इस समय उनके

साथ शिव दयाल, गणपत राय, दूल्हो राय तथा गोविन्द राय यह चार साथी और भी थे। वहां से वापिस आते हुए किला शोभा सिंह के आगे वेईं नाम की एक नदी पसरूर के मार्ग में पड़ती है। श्री सोहनलाल जी ने अपने चारों अन्य साथियों सहित उसको पार करने के लिये उसमें प्रवेश किया। इन लोगों के वेईं नदी की मध्य धार में पहुंचने पर उसके जल का प्रवाह अधिक बढ़ गया। इन लोगों के पास सोने चांदी का बोझ भी कम नहीं था। अतएव उस समय उनको अपने डूबने का भय सामने दिखलाई देने लगा। दैवयोग से उधर से एक और व्यक्ति भी आ गया। उसे भी नदी पार करनी थी। उसने इन पांचों से कहा

"तुम मुझको अपना यह सामान दे दो। मैं तैर कर निकल जाऊंगा। उस पार पहुंचने पर तुम अपना सामान मुझ से ले लेना।"

वह व्यक्ति अपने को अधिक तैराक तथा इनको कम तैरने वाला समझता था। इन्होंने उसकी बात मान कर अपना बोझ उसको दे दिया। इधर जल का वेग और भी बढ़ गया और वह व्यक्ति जल का वेग अत्यधिक बढ़ने से पूर्व ही नदी के उस पार जा पहुंचा।

अब नदी में इतना अधिक जल आ गया कि इनको अपनी मृत्यु की पूर्ण संभावना हो गई। तब इन पांचों मित्रों ने आपस में परामर्श करके यह प्रतिज्ञा की

"आज हमको आर्य देश तथा उच्च कुल के सभी उत्तम संयोग मिले हुए हैं, किन्तु इस समय हमारी आयु पूर्ण होने की संभावना है। हमको इस बात का खेद है कि हमने मनुष्य जन्म पाकर भी जो कुछ हमको करना चाहिये था वह नहीं किया।

इसलिये आज यदि हम इस उपसर्ग से बच गए तो सांसारिक गृहस्थ जीवन का परित्याग करके दीक्षा ले लेंगे। किन्तु यदि हमारी इस वेईं नदी में ही मृत्यु हो गई तो समस्त आगारों सहित हम सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करते हैं।"

किन्तु शासन देवता की कृपा तथा समाज के सौभाग्य से उनकी उस उपद्रव से प्राणरक्षा हो गई। जब यह वेईं नदी को पार कर उसके तट पर पहुंचे तो वह व्यक्ति इनका सोना जेवर आदि माल लेकर यह समझ कर भाग निकला था कि यह लोग नदी में ही डूब कर मर गए होंगे। यह लोग प्राण रक्षा को विशेष लाभ मानते हुए तथा गए हुए माल का विशेष दुःख न करते हुए अपनी प्रतिज्ञा की ओर ध्यान देकर दीक्षा का निश्चय किये हुए अपने अपने घर वापिस आए।

किन्तु न्यायपूर्वक कमाया हुआ धन खो कर भी वापिस मिल जाया करता है। जो व्यक्ति वेईं नदी पर इनका माल लेकर भाग गया था, अचानक वह लाला गंडा मल के यहां आ गया। अब तो उस से सारा माल वसूल कर लिया गया। श्री सोहनलाल जी ने उसको बिना सजा दिलाए ही छोड़ दिया और उसको इस प्रकार की शिक्षा दी, जिससे उसका जीवन सुधर सके।

जब इन पांचों मित्रों के घर वालों को इनकी प्रतिज्ञा का समाचार मिला तो उन्होंने निश्चय किया कि इस बात के जनता में फैलने के पूर्व ही इन लोगों का गुपचुप विवाह कर दिया जावे। अस्तु वह लोग गुप्त रूप से विवाह के लिये आभूषण आदि तय्यार करवाने लगे। अब तो विवाह की प्रत्येक तय्यारी की जाने लगी। श्री सोहनलाल जी की माता लक्ष्मी देवी को भी इस कार्य के लिये पसरूर बुला लिया गया।

अपने अभिभावकों की इस इच्छा का पता इन पांचों को लग गया। इस पर इन लोगों ने आपस में परामर्श किया कि अपनी प्रतिज्ञा को किस प्रकार पूर्ण किया जावे। श्री सोहनलाल जी ने गोविन्द राय से कहा

"प्रतिज्ञा को सफल बनाने का समय आ गया है। बोलो, आपका क्या विचार है ?"

इस पर गोविन्द राय ने उत्तर दिया

"आपका तो विवाह होने वाला है। आभूषण तय्यार हो गए हैं।"

तब सोहनलाल जी बोले

"तुम्हारे विवाह की तय्यारियां भी तो पूरी हो चुकी हैं और गहना भी बन चुका है।"

तब गोविन्द राय ने उत्तर दिया

"मैं तो अपने विवाह के आभूषण घर से निकाल लाया।"

यह कह कर उसने आभूषणों की पोटली खोल कर आभूषण अपने मित्रों को दिखलाए और फिर उनको हथौड़े से कुचल कुचल कर तोड़ डाला। इस पर उसके चारों मित्रों को उसका विश्वास हो गया। अब उन्होंने यह पूर्ण निश्चय कर लिया कि वह विवाह के चक्कर में किसी प्रकार न पड़ कर दीक्षा अवश्य लेंगे।

अब तो इन लोगों के दीक्षा लेने के विचार का समाचार सारे नगर में फैल गया और उनके परिवार वाले उनको सब प्रकार से समझाने लगे।

इन पांचों का अपने घर वालों के साथ यह झगड़ा संवत् १६२६ से ले कर १६३१ तक लगभग पांच वर्ष तक चला। किन्तु

यह लोग उनके अनेक प्रकार के बहलाने, फुसलाने, डांटने और फटकारने से भी अपनी २ प्रतिज्ञाओं को तोड़ने को तयार न हुए। तथापि इनमें से गोविन्दराय पर तो इतनी अधिक सख्ती की गई कि उसका वर्णन करना कठिन है। उसके घर वालों ने उसके साथ मार पीट तक की। अन्त में उस बेचारे के परिणाम गिर गए और उसने दीक्षा लेने का विचार छोड़ कर अपना विवाह करवा लिया।

जब श्री सोहनलाल जी ने देखा कि उनके घर वाले उनको दीक्षा लेने की अनुमति नहीं दे रहे तो वह अपने शेष तीन साथियों—शिवदयाल, गणपतराय तथा दूल्होराय सहित पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज के पास अमृतसर चले गए।

यहां आकर आपने पूज्य श्री से निवेदन किया

"तरणतारण गुरु जी! हमलोग इस दुःखदायक संसार सागर के प्रबल ज्वार भाटे से अब घबरा गए हैं। हमलोग यह प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि जिन दीक्षा ग्रहण करने के अतिरिक्त हम और कोई मार्ग अंगीकार नहीं करेंगे। किन्तु हमारे घरवाले हमको इसके लिए अनुमति नहीं दे रहे। आज लगभग पांच वर्ष से हमारा उनके साथ झगड़ा मचा हुआ है। हम उनसे अनुमति मांगते २ थक गए। अब आप कृपा कर हमको जिन-दीक्षा देकर संसार सागर में डूबते हुओं का उद्धार करें। हम लोग सब ओर से निराश होकर बड़ी भारी आशा लेकर आपके पास आए हैं।"

श्री सोहनलाल जी आदि चारों मित्रों के यह वचन सुन कर पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज बोले

"वत्स सोहनलाल! तुम्हारी धार्मिकता को हम तुम्हारी बाल्यावस्था से ही देख रहे हैं। तुम्हारे मित्र भी वैराग्य के मार्ग

पर आने के लिए साधन करते हुए दीक्षा लेने की अपनी पात्रता सिद्ध कर चुके हैं। किन्तु जैन शासन का यह नियम है कि घरवालों की अनुमति के बिना हम तुमको दीक्षा नहीं दे सकते। तुमको तो सोहनलाल, दीक्षा ले कर उच्चकोटि का साधु बनना ही है। तुम लोग हमारे कहने से एक बार प्रयत्न और करो। अबकी बार आने पर हम तुमको दीक्षा अवश्य दे देंगे।"

पूज्य अमरसिंह जी महाराज का यह आदेश पाकर यह चारों व्यक्ति फिर अपने २ घर गए। उन्होंने जाकर अपने २ घर वालों को कह दिया कि यदि उन्होंने उनको तुरन्त दीक्षा लेने की अनुमति नहीं दी तो वह घर में ही अन्न पानी का त्याग कर संथारा करेंगे। इस पर घर वालों ने इन लोगों को मौन रह कर अर्द्ध स्वीकृति दे दी।

इस प्रकार अनेक संघर्षों के पश्चात् मार्गशीर्ष बदि ३ संवत् १९३३ को श्री सोहनलाल जी बैरागी ने अपने तीन मित्रों सहित दीक्षा ग्रहण की। पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज ने सोहनलाल तथा शिवदयाल को श्री धर्मचन्द जी महाराज से और दूल्होराय तथा गणपतराय को श्री मोतीराम जी महाराज से दीक्षा दिलवाई। दीक्षा महोत्सव अत्यन्त धूम धाम से मनाया गया।

३०

गुरु सेवा

गुरु ठाड़े गोविन्द खड़े, का के लागों पांय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिये मिलाय ॥

मेरे सामने आज अचानक मेरे गुरु और भगवान गोविन्द दोनों दर्शन देने को आ खड़े हुए हैं। मेरे मन में यह द्विविधा है कि दोनों में से प्रथम किसके चरण पकड़ूं। किन्तु मैं तो अपने गुरु की बलिहारी हूं और इसलिए उनके ही चरण मैं पहिले पकड़ूंगा, क्योंकि गोविन्द को मुझसे उन्होंने ही मिलाया है।

वास्तव में गुरु के अहसान का बदला अनेक जन्म लेकर भी नहीं चुकाया जा सकता। जो काम अनेक वर्षों के तपश्चरण से सिद्ध नहीं हो सकते वह गुरु कृपा से अल्प समय में ही सिद्ध हो जाते हैं। श्री मुनि सोहनलाल जी का यह विशेष सौभाग्य था कि उनको दीक्षा लेने के तुरन्त बाद ही गुरु सेवा का अपूर्व अवसर प्राप्त हो गया और वह भी लगभग तीन वर्ष तक।

आपकी दीक्षा के पश्चात् आपके दीक्षा गुरु मुनि धर्मचन्द जी महाराज का स्वास्थ्य पर्याप्त बिगड़ गया। उनके नेत्रों में विशेष कष्ट बढ़ गया। अतएव मुनि सोहनलाल जी ने मन, वचन तथा कर्म की तल्लीनता से गुरु की सेवा की। आप

जानते थे कि गुरु सेवा से बढ कर दूसरा कोई तप नहीं है। अतएव आप ने इस समय पूर्ण ध्यानपूर्वक गुरु की सेवा करनी आरम्भ की। आपके गुरु मुनि धर्मचन्द जी आपकी दीक्षा के बाद पटियाला आगए थे। अतएव आपके संवत् १९३४ तथा १९३५ के दो चातुर्मास पटियाले में ही हुए। पटियाला में आप गुरु जी का वैयावृत्य करते थे और उनकी चिकित्सा भी कराते थे।

जब उनको पटियाला की चिकित्सा से कोई लाभ न हुआ तो आप उनको लेकर लाहौर गए। लाहौर में उनकी चिकित्सा अधिक कुशल चिकित्सकों द्वारा कराई गई। किन्तु गुरु महाराज मुनि धर्मचन्द जी के असाता वेदनीय कर्म के उदय के कारण उनको लाहौर की चिकित्सा से भी कोई लाभ न हुआ। लाहौर में आपको चौबीस घंटे गुरु जी की सेवा करनी पड़ती थी। जिन लोगों ने आपके उन दिनों के सेवा जीवन को देखा है, उन्होंने आपकी सेवा भावना की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। जब गुरु तथा शिष्य दोनों को विश्वास हो गया कि रोग प्राण-घातक है और अब प्राणों के बचने की कोई सम्भावना नहीं है तो मुनि सोहनलाल जी ने मुनि धर्मचन्द जी को अन्त समय में संथारा करा कर अपने अन्तिम कर्तव्य को भी पूर्ण किया।

ठाणांग सूत्र में कहा गया है कि

"तिण्णं दुप्पडियारं समणाउसो तंजहा अम्मापिउणो भट्टिस्स धम्मायरिस्स संथाओविणं......... ।"

ठाणांग सूत्र, स्थान ३, उद्देश्य १, सूत्र २३

तीन पुरुषों के उपकार का बदला नहीं दिया जा सकता—माता पिता का, भरण पोषण करने वाले स्वामी का तथा धर्माचार्य का।

इन सब की सेवा करता हुआ उच्चकोटि के धर्म का पालन करता है। वास्तव में यही धर्म है।

श्री बाहुबलि जी ने अपने पूर्वभव में उच्च कोटि की सेवा की थी। उसी के फल से उनको सब प्रकार के शुभ संयोग मिले और अपने बड़े भाई भरत चक्रवर्ती से भी उनको अधिक शक्ति प्राप्त हुई।

मुनि नन्दिषेण भी उच्चकोटि की सेवा करने वाले थे। यहां तक कि आपकी सेवापरायणता की प्रशंसा सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने अपनी सुधर्मा सभा में की। इस पर देवता उसकी परीक्षा को आए। किन्तु आप देवता के प्रतिज्ञा करने पर भी अपने सेवा कार्य से विरत न हुए। अन्त में देवता भी अपना असली रूप धारण कर नन्दिषेण मुनि के चरणों में गिर पड़ा और उसने उनसे क्षमा प्रार्थना की। अंत में वह देव मुनि नन्दिषेण की अत्यधिक प्रशंसा तथा स्तुति करके अपने स्थान को गया। स्वर्ग पहुँचने पर उसने इस विषय में इन्द्र से भी क्षमा प्रार्थना की। उसने इन्द्र से कहा

"मुनि नन्दिषेण की सेवापरायणता के सम्बन्ध में आपका कथन बिल्कुल ठीक था। वह इस वृत्ति में उससे भी बढ़कर हैं। वह निःस्वार्थ भाव से मन में ग्लानि न मानते हुए सभी रोगियों की सेवा किया करते हैं।"

मुनि सोहनलाल जी भी सेवापरायणता के गुण में इसी प्रकार के थे।

मुनि सोहनलाल जी का आरम्भ से ही विद्याभ्यासंग था, किन्तु अपरिग्रह महाव्रत के पालन में वह विद्याभ्यासंग को भी कुछ नहीं समझते थे। प्रथम तीन वर्ष में उनको वैयावृत्य से जो थोड़ा बहुत अवकाश मिला था, उसमें उन्होंने आगमग्रन्थों का

पर्याप्त अध्ययन किया था। विद्वान का धन शास्त्र हुआ करते हैं। शास्त्र का अपने पास रखना पठनपाठन की दृष्टि से भी आवश्यक है। किन्तु आपने गुरु के स्वर्गवास के पश्चात् जो कुछ शास्त्र उनके पास थे वह सब अपने बड़े गुरु भाई मुनि श्री शिवदयाल जी के अधिकार में दे दिये। अब आपके पास कोई भी सूत्र ग्रन्थ नहीं रहा।

उन दिनों छापे का प्रचलन आरम्भ ही हुआ था, किन्तु उसमें लौकिक ग्रन्थ ही छपते थे। धर्मग्रन्थों के छापने का तब तक रिवाज नहीं चला था। इसलिये हस्तलिखित ग्रन्थों को तय्यार करने तथा कराने में बहुत परिश्रम पड़ता था। साधुओं के लिये तो ग्रन्थों का महत्व और भी अधिक था, क्योंकि वह न तो मूल्य देकर लिखा सकते थे और न मोल को ही ले सकते थे। जब कभी किसी नवीन वैरागी को दीक्षा दी जाती थी तो उसके लिये शास्त्र मंगवाए जाते थे। उस समय लिखे हुए नवीन ग्रन्थों के मंगवाने पर बड़ी भारी रक़म ख़र्च हुआ करती थी। बड़े बड़े शास्त्रों का मूल्य हज़ार डेढ़ हज़ार रुपये तक होता था। लिखाई की दर प्राय: एक रुपये के बीस श्लोक होते थे तथा एक श्लोक में बत्तीस अक्षर गिने जाते थे। आज तो एक रुपये के दस श्लोक भी कठिनता से लिखे जाते हैं। अस्तु उस समय अपने पढ़ने के सूत्र ग्रन्थों को अपने बड़े गुरु भाई को निरीह भाव से दे देना मुनि सोहनलाल जी के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण था।

३१

तप तथा अध्ययन

पंचहिं ठाणेहिं सत्तं वाएज्जा तंज्जहा संग्गहठयाए उवग्गहठयाए णिज्जरठियाए सत्तेवाये पज्जवयाते भविस्संति सत्तस्सवा अवोच्छिन्न थयठयाते।

ठाणांग, ठाण ५, उद्देशक ३

गुरु को पांच कारणों से शिष्य को पढ़ाना चाहिये। प्रथम यह मान कर कि मैंने इसका हाथ पकड़ कर इसे अपनी शरण में लिया है, द्वितीय यह संयम में स्थिर हो जावेगा तो गच्छ में आधारभूत हो जावेगा, तीसरे निर्जरा के लिये, चौथे स्वयं मेरा श्रुत भी अत्यन्त निर्मल हो जावेगा तथा पांचवें श्रुत की शैली बिना व्यवच्छेद के बराबर बनी रहेगी।

अपने दीक्षा गुरु मुनि धर्मचन्द जी के स्वर्गवास के बाद मुनि सोहनलाल जी ने पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज की सेवा में रहना आरम्भ किया। अब उन्होंने कठिन तप करते हुए नियमित रूप से आगम ग्रन्थों का अध्ययन करना आरम्भ किया। इन दिनों आपने आचारांग आदि शास्त्रों को भी अपने हाथ से लिखा। मुनि सोहनलाल जी के हाथ के अक्षर बड़े सुन्दर हुआ करते थे। आपके हाथ के लिखे हुए शास्त्र आज तक विद्यमान हैं।

आपकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण थी। आपको जो कुछ भी पढ़ाया जाता वह आप को तुरन्त याद हो जाता था। आपकी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज भी आप पर विशेष कृपा किया करते थे। आपको संवत् १९३६ तथा १९३७ में तब तक पूज्य अमरसिंह जी महाराज की सेवा में अमृतसर में चातुर्मास करने का अवसर मिला, जब तक उनका आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को संवत् १९३८ में अमृतसर में स्वर्गवास न हो गया।

वास्तव में पूज्य अमरसिंह जी महाराज को इससे दो दिन पूर्व ही यह भास गया था कि आपका आयुकर्म शेष होकर अब शरीर पूरा होने वाला है। आपने आषाढ़ कृष्ण अमावस संवत् १९३८ को पक्खी उपवास किया। इसके पश्चात् जब आपने आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को पारणा किया तो वह सम्यक प्रकार से प्रणमत न हुआ। तब श्री पूज्य महाराज ने अपने ज्ञान बल से अपने अन्त समय को जान कर आलोचना आदि सर्व विधान करके तथा सब जीवों से क्षमापन करवा के शान्त भाव से श्री संघ के सन्मुख दिन के तीन बजे से अनशन आरंभ कर दिया। फिर अत्यन्त उत्तम भावों के साथ मुख से अर्हन् शब्द का जाप करते हुए दिन के एक बजे के लगभग आपने इस अनित्य संसार का त्याग किया। पूज्य अमरसिंह जी महाराज ने अपने चालीस चातुर्मासों में से प्रत्येक में आठ २ दिन के अनशन कर कुल ४० अठाई व्रत किये।

पूज्य अमरसिंह जी महाराज के स्वर्गवास के समाचार से भारत भर में शोक की घटाएं छा गईं। अमृतसर के श्रावकवर्ग ने इस घटना का संवाद तार द्वारा सर्वत्र भेज दिया, जिससे प्रत्येक स्थान के श्रावक अमृतसर में एकत्रित हो गए। श्रावक

लोग अनेक प्रकार के करुणामय शब्दों में विलाप करते थे, तब श्री सोहनलाल जी महाराज ने श्री संघ को संसार की अनित्यता दिखला कर प्रबोध दिया।

इसके पश्चात् श्रावकों ने एक सुन्दर विमान में श्री पूज्य अमरसिंह जी महाराज के शरीर को आरूढ़ करके उनका जुलूस निकाला। इस विमान के ऊपर चौदह बहुमूल्य दुशाले पड़े हुए थे। जुलूस के आगे आगे बाजा बज रहा था। इस प्रकार श्मशान भूमि में जाकर चन्दन की लकड़ी की चिता पर रख कर उनके शरीर का अग्निसंस्कार किया गया। यह उत्सव इतना अधिक शानदार था कि लोगों को उसको देख कर महाराजा रणजीतसिंह के मृत्युमहोत्सव की याद ताजा हो गई।

मुनि सोहनलाल जी महाराज जब से श्री पूज्य अमरसिंह जी महाराज के पास आए थे, उन्होंने अपना समय पढ़ने, लिखने तथा तपश्चरण करने में ही व्यतीत करना आरम्भ किया। वास्तव में आपका सारा जीवन ही तपस्यापूर्ण था।

आपने बारह वर्ष तक एक पात्र से ही काम चलाया। लगातार बाईस वर्ष तक आपने एक दिन छोड़ कर एक २ दिन पर आहार करते हुए एकान्तर तप किया। इसके अतिरिक्त बीच में कई बार आप चार २, पांच २ तथा छै २ दिन के उपवास किया करते थे। एक बार तो आपने आठ दिन का भी उपवास किया था। किन्तु लगातार आठ दिन से अधिक आपने उपवास कभी नहीं रखा।

वस्त्र रखने में भी आपने अपने उच्चकोटि के तपश्चरण का परिचय दिया। आपने बारह वर्ष तक एक ही चादर से काम चलाया। एक समय दो चादर आपने अपने पास कभी भी नहीं रखीं। वैसे साधुओं को अपने पास दो चादरें रखने का

तथा आचार्यों को अपने पास तीन तक चादर एक साथ रखने का अधिकार है। श्री सोहनलाल जी ने आसन भी अपने पास एक से अधिक नहीं रखा।

आप किसी अत्तार या पंसारी की दूकान की औषधि भी नहीं लिया करते थे। जुकाम होने पर भी आप घिस कर सिर में लोंग ही लगाया करते थे।

३२

प्रतिवादीभयंकर मुनि सोहनलाल जी

जइविय णिगणेकिसे चरे जइविय भुंजइमासमंतसो जेइह
मायाईमिज्जई आगंतागब्भाय णंतसो ।

सूत्रकृतांग, प्रथम श्रुत स्कन्ध, अध्याय २, उद्देशक १, गाथा ६

यदि कोई नग्न भी हो जावे, शरीर को कृश भी करे, देश में भी विचरे, मास मास के अन्तर से भी आहार करे, ऐसी वृत्ति करते हुए भी यदि वह छल करे तो अनंत काल पर्यंत गर्भादि में प्रवेश करता है।

पूज्य सोहनलाल जी महाराज ने जिस समय मुनि दीक्षा लेकर सूत्र ग्रन्थों का अध्ययन करना आरम्भ किया तो आत्मा राम संवेगी श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय के विरुद्ध बहुत अनर्गल भाषण दे रहे थे। पूज्य सोहनलाल जी ने उसका कई बार मुकाबला किया और अन्त में वह पूज्य सोहनलाल जी के पीछा करने से ऐसा घबराया कि उसको उनके सामने से भागते ही बना।'

नीचे की पंक्तियों में आत्मा राम संवेगी के चरित्र को विस्तारपूर्वक दिया जाता है--

श्री आचार्य अमरसिंह जी महाराज ने श्री जीवनराम जी महाराज को विक्रम संवत् १६०६ में दीक्षा दी थी। उन्होंने

संवत् १६१० में मालेरकोटला नगर के एक दित्तामल नामक बालक को दीक्षा दी, जिसके सम्बन्ध में वहां के जैनियों का कहना था कि उस बालक की जाति शुद्ध नहीं थी। दीक्षा से पूर्व उसने एक बार रात्रि में मेंहदी की भ्रांति में भस्म लगा लिया, जिससे उसके हाथ काले तथा चिकने हो गए। उस बालक का दीक्षा के समय जैनियों ने जीवनराम जी महाराज से कहा कि

"महाराज ! इस बालक को दीक्षा न दें। यह धर्म का विरोधी होगा।"

इस पर श्री जीवनराम जी महाराज ने उनको उत्तर दिया

"हे श्रावकों ! इस बालक के भाग्य में जो होगा वही होनहार है।"

यह कह कर उन्होंने उस बालक को दीक्षा दे दी और उसका नाम आत्माराम रख दिया।

जब पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज ने संवत् १६१२ में मालेर कोटला में चातुर्मास किया, तो वहां के श्रावकों ने उनको जीवनराम जी महाराज के सम्बन्ध में उपालम्भ दिया कि उन्हों ने उनके मना करने पर भी दित्तामल नामक बालक को दीक्षा दे दी। इस पर पूज्य महाराज ने उनको उत्तर दिया

"इन कारणों से तो यह कार्य अनुचित हुआ। इस हुंडाव-सर्पिणी काल में तो इस प्रकार के अनेक विघ्न धर्म पथ में आवेंगे ही। जमाली का उदाहरण भी इसी की पुष्टि करता है।"

इसके पश्चात् आत्माराम जी ने मुनि रामबक्ष जी से सूत्रों का अध्ययन किया। किन्तु संवत् १६१८ से लेकर संवत् १६२० के बीच में पूर्व कर्मों के उदय से आत्माराम जी को सर्वज्ञकथित सिद्धान्तों में अश्रद्धा होने लगी। उनको मुनि के पालने योग्य

कृत्यों से अरुचि हो गई। इस समय उनको मिथ्यात्व प्रकृति का भी उदय हुआ, जिससे उनको कल्पित ग्रन्थों में रुचि हो गई।

जैन शास्त्रों में श्वेत वस्त्र धारण करने का विधान है, किन्तु आत्माराम जी को पीत वस्त्र पसंद आया। आगम ग्रंथों में मुख पट्टी का स्पष्ट विधान है। जो सदा मुख से लगी रहे उसको ही मुख पट्टी कहा जा सकता है, किन्तु आत्माराम जी ने मुख पट्टी को हाथ में रखना आरम्भ किया।

आगम ग्रन्थों में मूर्तिपूजा का लेशमात्र भी विधान नहीं है, किन्तु आत्माराम जी ने मोहनीय कर्म की प्रबलता से अजीव पदार्थ में जीव की श्रद्धा करली।

आत्माराम जी ने अपना १६२० का चातुर्मास विद्याध्ययन करने के लिये पं० मुनि रत्नचन्द जी के साथ किया था।

पं० मुनि रत्नचन्द जी ने आत्माराम जी को निम्नलिखित उत्तम शिक्षाएं दीं—

आरम्भ कार्यों में धर्म की श्रद्धा नहीं करना, सिद्धान्त के विरुद्ध प्ररूपणा नहीं करना, मर्यादा से अधिक उपकरण नहीं रखना, ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र में उन्नति करना, अपने आत्मा को शिथिलाचार तथा शिथिलाचारियों से बचाते रहना, अन्य सम्प्रदायों के आडम्बरों को देखकर आडम्बर की इच्छा रूप मोहनीय कर्म का बंध नहीं करना। आज्ञा में धर्म है। अतः भगवान की आज्ञा का लोपन गोपन नहीं करना। हमेशा आचार्य की आज्ञा में रहना। सूत्रविरुद्ध प्ररूपणा करके अनन्त संसारी मत बन जाना, हमारे दिये हुए ज्ञान का दुरुपयोग मत करना।

किन्तु आत्माराम जी इस प्रकार की शिक्षाएं प्राप्त करके भी मिथ्यात्व प्रकृति का उदय होने के कारण आत्मिकपतन के मार्ग पर ही चलते रहे।

आत्माराम जी के शिथिलाचार और संयम में कायरता देखते हुए ही ऐसी शिक्षा दी और श्री जीवनराम जी महाराज को कहला भेजा था कि आपके लिहाज में आकर मैंने मुनि आत्माराम को कुछ पढ़ाया है। किन्तु धर्म का द्वेषी बनेगा ऐसा मेरा अनुमान है। अतः आगे और अध्ययन कराने का मेरा विचार नहीं है।

आत्माराम जी ने मालेरकोटला में आकर विशनचन्द आदि साधुओं को भी सम्यक्त्व से पतित किया। यद्यपि आत्माराम जी श्रद्धान से गिर चुके थे, किन्तु बाह्य व्यवहार में वह अपने को श्वेताम्बर सम्प्रदाय का ही कहते थे।

आत्माराम जी के इस व्यवहार से मुनि कनीराम जी आदि ने उनको बहुत कुछ शिक्षा दी। तब वह पश्चात्ताप प्रकट करते हुए आचार्य श्री अमरचन्द जी महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। आत्माराम ने आचार्य महाराज की बहुत विनय की। इस पर उन्होंने ऋजुपरिणामी होने के कारण व्याख्यान के समय आत्माराम जी को ही व्याख्यान करने की आज्ञा दे दी। किन्तु आत्माराम ने अपने इस व्याख्यान में भी अनेक बातें सूत्रों के विरुद्ध कहीं।

उस समय स्यालकोट से लाला सौदागर मल भी पूज्य महाराज के दर्शनार्थ आए हुए थे। इस व्याख्यान के बाद लाला सौदागर मल तथा पूज्य महाराज ने आत्माराम को अनेक हितकारी शिक्षाएं दीं। श्री महाराज ने आत्माराम से यह भी कहा

"हे शिष्य ! इस मनुष्य जन्म का बार बार मिलना कठिन है। यह आत्मा हिंसा धर्म के कारण इस संसार में अनादिकाल से परिभ्रमण करता चला आया है। यदि सूत्र के एक अक्षर

का भी अन्यथा अर्थ किया जावे तो आत्मा अनन्त भवों के कर्म बांध लेता है। तू अर्थ का अनर्थ क्यों करता है? यदि तुझे किसी बात की शंका है तो तू निर्णय करले अथवा शास्त्र को दूसरी बार पढ़ ले।"

पूज्य अमरसिंह जी महाराज के यह शब्द सुनकर आत्माराम तथा विशनचन्द आदि साधुओं ने उनके चरण पकड़ कर तथा हाथ जोड़ कर उनसे निवेदन किया

"हे महाराज! हम तो आपके दास हैं। जो कुछ श्रद्धा आपकी है वही हमारी भी है। हमने जो कुछ सूत्र विरुद्ध भाषण किया है, उसके लिए आप हमको यथान्याय प्रायश्चित्त दें अथवा क्षमा कर दें।"

यह सुनकर श्री महाराज ने उनको यथायोग्य दंड दे दिया। फिर उन्होंने एक पत्र लिखकर भी पूज्य महाराज को दिया। इस पत्र पर आत्माराम जी के गुरु जीवनराम के अतिरिक्त निम्न लिखित अन्य साधुओं के हस्ताक्षर भी थे।

१ बिशनचन्द, २ धर्मचन्द, ३ हुकमचन्द, ४ चम्बामल्ल, ५ हाकमराय तथा ६ सलामत।

किन्तु आत्माराम का अन्तःकरण मलिन था। अत: वह उन शिक्षाओं से कुछ भी लाभ न ले सका और उसने १९२३ के चातुर्मास में ११ प्रश्न लिखकर बूटेराय जी को भेजे, क्योंकि उन दिनों श्री बूटेराय जी का चातुर्मास गुजरांवाला में था। श्री बूटेराय जी का जन्म लुधियाना जिले के दूलवां नामक ग्राम के टेकचन्द जाट की कर्मा नामक स्त्री से विक्रम संवत् १८६३ को हुआ था। उन्होंने संवत् १८८८ में श्री १००८ पूज्य मलूकचन्द जी महाराज के तपा गच्छ के श्री मुनि नागरमल जी महाराज

के पास दीक्षा ली। किन्तु बाद में उनकी श्रद्धा बिगड़ गई और उन्होंने मुख पट्टी उतार कर अपने को साधु कहलाना बन्द कर दिया। तो भी वह अपने को तपा गच्छ का मानते थे।

आत्माराम जी के लिखे हुए यह ग्यारह प्रश्न इतने अशुद्ध थे कि उनसे उनका लेखक के रूप में भाषा पर अधिकार भी सिद्ध नहीं होता, फिर आगम ग्रन्थों पर तो ऐसे व्यक्ति का अधिकार किस प्रकार हो सकता है और किस प्रकार उसके द्वारा किये हुए प्रश्न तर्कसंगत हो सकते हैं ?

बूटेराय ने आत्माराम जी के इन प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दिया। क्योंकि न तो बूटेराय जी कोई विद्वान ही थे, न उन्होंने कोई सूक्ष्म ज्ञान ही सीखा था।

इस प्रकार आत्माराम जी इधर उधर शास्त्रविरोधी कथन करते फिरते थे, किन्तु उनको पूज्य श्री अमरचन्द जी महाराज के सामने पड़ने का साहस नहीं था।

संवत् १६२४ में दिल्ली निवासी लाला जीतमल जी ने आत्माराम जी से निम्नलिखित प्रश्न किये—

"महात्मा जी ! सूत्रों में दो प्रकार के धर्म का प्रतिपादन किया गया है—मुनि धर्म तथा गृहस्थ धर्म का। सो प्रतिमा जी का पूजन किस सूत्र में बतलाया गया है ? फिर जैन मंदिर बनाने अथवा जिन प्रतिमा के बनाने अथवा उसकी प्रतिष्ठा करने की विधि का वर्णन कौन सूत्र में है ?

"फिर जीव को अजीव मानना तथा अजीव को जीव मानना मिथ्यात्व है या नहीं ? अजीव में जीव संज्ञा मानना तथा जीव को अजीव मानना मिथ्यात्व है या नहीं ? फिर गौतम स्वामी ने भगवान से किस सूत्र में यह प्रश्न किया

है कि प्रतिमा जी के पूजन से जीव मोक्ष में चला जाता है। फिर धर्म हिंसा में है या दया में और भगवान् की आज्ञा अहिंसा में है या हिंसा में है ?"

इस पर आत्माराम जी चुप हो गए और उन्होंने लाला जीतमल को कोई उत्तर नहीं दिया।

संवत् १९२८ में पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज ने अपना चौमासा जीरे नगर में किया। वहां से विहार करके आप जगरावां नगर पधारे। यहां अन्य भी मुनि महाराज उनके दर्शनों के लिए पधारे। उधर बिशनचन्द आदि साधु भी अम्बाला से विहार करके जगरावां आ गए थे। जब उनको पता चला कि श्री पूज्य अमरसिंह जी महाराज तथा अन्य अनेक साधु जगरावां में विराजमान हैं तो इनके मन में यह निश्चय हो गया कि हम जो सूत्रों के विरुद्ध आचरण करते हैं सो पूज्य महाराज को अच्छी तरह पता लग गया है, अस्तु वह यहां हमको गच्छ से निकालने के लिये ही एकत्रित हुए हैं। ऐसी अवस्था में हमारे पास के सूत्र आदि ग्रन्थ छीन लिये जावेंगे। अतएव उन्होंने वापिस लौट कर सब पुस्तकें आदि लुधियाना में रख कर फिर जगरावां जाकर पूज्य महाराज के दर्शन किये।

पूज्य श्री अमर अमरचंद जी महाराज ने निम्नलिखित साधुओं को जगरावां में अपने गच्छ से निकाल दिया—

१ बिशन चन्द, २ हुकम चन्द, ३ निहाल चन्द, ४ निधान मल्ल, ५ सलामत राय, ६ तुलसी राम, ७ धनैया मल्ल, ८ चम्पा लाल, ९ कल्याण चन्द, १० हाकम चन्द, ११ गुरदित्ता मल तथा १२ रला राम।

यह लोग जगरावां से चल कर लुधियाना में आत्मा राम के पास चले गए।

इसके पश्चात् आत्मा राम के गुरु जीवन राम जी महाराज ने भी फिरोजपुर ज़िले के चूड़चक्क नामक ग्राम में आत्मा राम को अपने गच्छ से बाहिर कर दिया। इस पर आत्मा राम रोने लगा। तब जीवन राम जी महाराज ने उससे कहा

"अब इतना क्यों रोता है? तुझको तो भव भव में रोना पड़ेगा। अब मैं तुझको अपने गच्छ में कभी भी न रक्खूंगा।" यह कह कर उन्होंने आत्माराम को अपने गच्छ से निकाल दिया।

इसके पश्चात् आत्माराम तथा बिशनचन्द आदि ने १९३२ में अहमदाबाद पहुंच कर वहां बुद्धि विजय को गुरु धारण किया। यह बुद्धि विजय पहले सुधर्म गच्छ से निकल कर तपा गच्छ में आ गए थे। पहिले इनका नाम बूटे राय जी था। अतएव अहमदाबाद में आत्माराम आदि ने तपा गच्छ का वेष धारण किया।

बाद में आत्मा राम को उस पंथ वाले गृहस्थों ने 'सूरीश्वर' पद देकर संवत् १९४३ में उसे 'आचार्य' पद देकर उसका नाम विजयानन्द सूरीश्वर अपर नाम आत्मा राम रख दिया।

इस प्रकार संवत् १९३३ में श्री सोहनलाल जी महाराज के दीक्षा लेने के समय तक आत्मा राम जी साधु मार्गी सम्प्रदाय से पृथक् होकर मन्दिरमार्गी पीताम्बर सम्प्रदाय में सम्मिलित हो चुके थे।

पूज्य श्री अमर चंद जी महाराज १९३६ का चातुर्मास लुधियाने में करके वहां से विहार करते हुए अमृतसर आए तो आत्मा राम तथा बिशन चंद आदि साधु भी अमृतसर आ गए। बिशन चंद आदि साधुओं ने पूज्य महाराज के पास

संदेशा भेज कर उनके दर्शन की अनुमति मांगी। महाराज की अनुमति मिलने पर वह लोग उनके दर्शन को आए।

तब मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज ने पूज्य महाराज से निवेदन किया—

"गुरुदेव ! आपकी अनुमति हो तो मैं इनसे कुछ वार्तालाप करना चाहता हूं।"

पूज्य महाराज के अनुमति देने पर श्री मुनि सोहनलाल जी महाराज ने विशन चन्द आदि तपागच्छियों से निम्नलिखित प्रश्न किये—

१. आप लोग प्रतिमा जी की आशतना ८४ मानते हैं। तो प्रतिमा जी के अतिशय कितने हैं ?

जिस प्रकार तीर्थंकर भगवान् के जन्म के अतिशय, दीक्षा के अतिशय तथा केवल ज्ञान के अतिशय पृथक् पृथक् हैं, उस प्रकार प्रतिमा जी के अतिशय कौन से हैं ?

२. भगवान् ने दया का उपदेश दिया है अथवा हिंसा का ? यदि हिंसा उपदेश मानते हो तो नवकोटि प्रत्याख्यान किस प्रकार रह सकता है और यदि दया का उपदेश मानते हो तो आप का बर्ताव सूत्रानुसार नहीं है।

३. जब आप लोग भविष्यत् काल में मोक्ष होने वाले जीवों की 'नमोत्थुणं' पाठ से वंदना करते हैं तो जिनमंदिर में शिव लिंग तथा श्री कृष्ण जी की प्रतिमाओं की स्थापना क्यों नहीं की जाती ? क्योंकि आपके मत में शिव जी को अव्रत सम्यक् दृष्टि श्रावक माना गया है।

४. जब द्वारिका जी भस्म हो गई तो द्वारिका जी में जिन मन्दिर थे या नहीं ? यदि वहां जिन मंदिर थे तो वह भस्म

क्यों हुए ? क्या उनमें अतिशय नहीं था ? यदि वहां मंदिर नहीं थे तो आपका मत कल्पित सिद्ध होगा।

५. द्रौपदी जी ने किस जिन की पूजा की ? उस जिन का क्या नाम था ? उसका मंदिर कब बना था और उसकी प्रतिष्ठा किस आचार्य ने कराई थी ?

६. भगवान् ने प्रतिमा के पूजन का उपदेश किस नगर में दिया ? उसे किस श्रावक ने धारण करके उसका विधि विधान पूछा ? बत्तीस सूत्रों में कौन सा श्रावक ऐसा है ? पञ्चसमिति तथा त्रिगुप्ति का क्या स्वरूप है ?

७. हिंसा तथा दया के क्या कारण हैं ? और उनके कार्य क्या क्या हैं ?

८. णमोकार मंत्र के पांचों पदों के चार निक्षेप किस प्रकार बनते हैं ? फिर उन में से कौन कौन से वंदनीय तथा कौन कौन से अवंदनीय हैं ?

श्री मुनि सोहनलाल जी के द्वारा उपरोक्त प्रश्न किये जाने पर इन प्रश्नों का कोई उत्तर न देकर विशन चन्द जी ने कहा

"हम तो यहां पूज्य महाराज के दर्शन करने आए हैं।"

तब श्री मुनि सोहनलाल जी ने कहा

"आप पूज्य महाराज के दर्शन आनन्दपूर्वक करें।"

जब विशनचन्द आदि साधु जाने लगे तो श्री सोहनलाल जी महाराज कहने लगे

"यदि आत्मा राम जी को दर्शन करने हों तो वह भी कर लें।"

इस पर पूज्य महाराज अमरसिंह जी बोले

"जैसी उनकी इच्छा हो।"

इस पर बिशन चन्द ने पूछा

"यदि आत्मा राम जी प्रश्नोत्तर करना चाहें तो ?"

तब पूज्य महाराज ने उत्तर दिया

"यदि आत्मा राम जी की इच्छा प्रश्नोत्तर करने की हो तो हम तय्यार हैं। किन्तु यदि कोई अन्य व्यक्ति प्रश्नोत्तर करना चाहे अथवा आत्मा राम ही किसी अन्य स्थान पर प्रश्नोत्तर करना चाहें तो हम श्री सोहनलाल जी को भेजेंगे।"

उनके चले जाने के उपरांत श्री सोहनलाल जी महाराज ने १०० प्रश्न लिख कर आत्मा राम जी के पास भेजे। किन्तु वह उन प्रश्नों का कोई उत्तर न दे कर वहां से जंडियाला की ओर चले गए।

मुनि सोहनलाल जी पूज्य अमरसिंह जी की सेवा में दो तीन वर्ष ही रहने पर चर्चा तथा शास्त्रार्थ करने में अत्यधिक चतुर बन गए। श्रोताओं पर आपका बड़ा भारी प्रभाव पड़ता था। आपने उस भयंकर समय में पथभ्रष्ट होने वाले अनेक व्यक्तियों की रक्षा की। आपने जिस साहस से विरोधियों का सामना किया उसको सारी जनता जानती है।

पूज्य श्री के पास से जाकर आत्मा राम जी गुजरानवाला पहुंचे। वहां के श्रावक उनसे स्थानकवासी वेष में ही बचने लगे थे। जब उन्होंने वहां संवेगी के वेष में जाकर प्रचार करना आरम्भ किया तो गुजरानवाला के भाइयों ने पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज की सेवा में निवेदन पत्र भेजा कि

"यहां आत्मा राम संवेगी ने बहुत ऊधम मचा रक्खा है। इसलिये आप क्षेत्र तथा धर्म की रक्षा के लिये किसी योग्य मुनि को यहां भेजने की कृपा करें।"

इस निवेदन पत्र को पाकर पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज अपने मन में विचार करने लगे कि "साधुओं का गुजरानवाला पहुँचना तो आवश्यक है। किन्तु गुजरानवाला भेजने के लिये मुनि सोहनलाल जी से अधिक उपयुक्त व्यक्ति दूसरा है नहीं। किन्तु इस समय मुनि सोहनलाल जी तेला किये हुए हैं, जिसे उन्होंने आज ही आरम्भ किया है। चातुर्मास आरम्भ होने में समय कम है। वर्षा के बादल उमड़ रहे हैं। यदि सोहनलाल जी को पारणा करने के उपरांत भेजा जावेगा तो पांच छै दिन की देरी और भी हो जावेगी। इस समय धर्म संकट का अवसर उपस्थित है। अतएव समाज सेवा के लिये महतरा—आगारेण इत्यादि आगारों से यही उचित जान पड़ता है कि सोहनलाल जी को उनके व्रत का पारणा कल ही करवा कर उनको गुजरानवाले की ओर विहार करा दिया जावे।"

इस प्रकार मन ही मन विचार करके पूज्य महाराज श्री ने श्री सोहनलाल जी को अपने पास बुला कर उनसे कहा

"सोहनलाल ! तुम सवेरे ही अपने व्रत का पारणा करके जितनी जल्दी हो सके गुजरानवाला पहुंच जाओ। समय कम है। सफ़र लम्बा है।"

पूज्य महाराज के यह वचन सुन कर मुनि सोहनलाल ने उनको वन्दना नमस्कार करते हुए उनसे नम्रतापूर्वक निवेदन किया

"गुरुदेव ! मुझे कल के स्थान पर आज ही विहार करने की आज्ञा दी जावे तो आपकी बड़ी कृपा होगी। तेले का पारणा तो मैं नारावाल अथवा पसरूर जाकर कर लूंगा। आपकी कृपा से इस में मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। आपने जो मुझे पारणा करने को कहा सो भी ठीक है, किन्तु यह आगार तो भगवान

महावीर स्वामी ने कमजोरों के लिए रक्खे हैं। मैं तो आपकी दया से मन तथा शरीर दोनों से ही निर्बल नहीं हूं। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें, जिससे मैं अभी विहार कर सकूं।"

पूज्य श्री को श्री सोहनलाल जी के मन तथा शरीर दोनों की शक्ति पर पूर्ण विश्वास था। अतएव वह बोले

"अच्छा, यदि तुम्हारी ऐसी सम्मति है तो तुम अभी विहार कर सकते हो।"

अस्तु श्री सोहनलाल जी महाराज ने ठाणे तीन से अमृतसर से उसी समय विहार कर दिया। आपके विहार का समाचार तार द्वारा गुजरानवाला भेज दिया गया, जिससे वहां के श्रावकों को बहुत भारी प्रसन्नता हुई।

उधर संवेगी आत्मा राम जी को जब समाचार मिला कि उनके मुकाबले के लिये श्री मुनि सोहनलाल जी महाराज गुजरानवाला आ रहे हैं तो उनको बड़ी भारी चिन्ता हो गई। वह मन में सोचने लगे

"सोहनलाल जी का यहां आना तो बहुत बुरा हुआ। उनके आने से तो हमारा सारा चातुर्मास किरकिरा हो जावेगा। यदि किसी प्रकार यहां उनका आना रुक सके तो अच्छा है।"

इस प्रकार मन में विचार करते हुए उन्होंने अपने कई श्रद्धालु तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा स्थानकवासी मुख्य श्रावकों से कहलवाया कि

"हम यहां की जिम्मेवारी लेते हैं कि श्री आत्मा राम जी स्थानकवासी धर्म के विरुद्ध कोई बात न कहेंगे। आप तसल्ली रखें। यह हमारी जिम्मेवारी है। आप अमृतसर से साधुओं

को न बुलावें। यदि वह वहां से विहार कर चुके हों तो उनको वापिस करवा दें। कारण कि रास्ता कच्चा है तथा ऋतु बरसात की है। मार्ग में अनेक दरिया तथा नदियां हैं। साधुओं को आने में कष्ट होगा।"

गुजरानवाला के स्थानकवासी श्रावकों ने इस प्रकार की बातों को सुन कर उन्हें स्वीकार कर लिया। गुजरानवाला से नारोवाल समाचार भेज दिया गया, और वहां से वह समाचार मुनि सोहनलाल जी को भी मिल गया।

इसके अतिरिक्त यह समाचार पूज्य श्री के पास अमृतसर भी भेज दिया गया। पूज्य श्री ने भी इस समाचार को पाकर मुनि सोहनलाल को लौटने की आज्ञा भेज दी। अतएव मुनि सोहनलाल जी ठाणे तीन से अमृतसर वापिस पहुँच गए।

अब मुनि सोहनलाल जी फिर अपने पठन पाठन में लग गए। वह तीन सहस्र गाथाओं का दैनिक स्वाध्याय किया करते थे।

श्री पूज्य अमरसिंह जी महाराज का आषाढ़ शुक्ला द्वितीया संवत् १९३८ को स्वर्गवास होने के उपरांत श्री संघ ने सम्मति करके श्रीमान् पंडित रामबक्ष जी महाराज को ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया संवत् १९३९ को मालेरकोटला नामक नगर में आचार्य पद पर स्थापित किया। किन्तु पूज्य राम बक्ष जी महाराज की आयु स्वल्प होने के कारण उनका इस घटना के २१ दिन के बाद ज्येष्ठ शुक्ल नवमी संवत् १९३९ को स्वर्गवास हो गया। इसके बाद श्री संघ ने पारस्परिक परामर्श के उपरांत श्री स्वामी मोती राम जी महाराज को आचार्य पद दिया। आप परम शान्त परिणामों वाले थे तथा जन्म से कोली क्षत्रिय थे। अब पूज्य श्री

मोती राम जी महाराज के निर्देशन तथा अनुशासन में श्री संघ में फिर धर्म की वृद्धि होने लगी।

पूज्य श्री मोती राम जी महाराज सुधर्मा स्वामी से लेकर पंजाब पट्टावली के अनुसार ८८ वीं पीठ पर थे।

१९३८ का चातुर्मास

मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज पूज्य अमरसिंह जी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात अमृतसर से विहार करके नारोवाल, पसरूर, डसका, स्यालकोट, गुजरानवाला तथा कसूर आदि क्षेत्रों में धर्म प्रचार करके लोगों की श्रद्धा को दृढ़ करते हुए ठाणे दो से फिरोजपुर पधारे। आप बीच में जनता को विरोधियों तथा पाखंडियों से सावधान करते जाते थे। इस समय फिरोजपुर के श्रावकों ने आपसे विनती की कि वह अपना चातुर्मास वहीं करें। अतएव संवत १९३८ का चातुर्मास आपने फिरोजपुर में ही किया।

फिरोजपुर में एक बार आप एक अजैन के घर गोचरी को गए तो उसने जैन धर्म के द्वेष के कारण आपको न केवल गालियां दीं, वरन् मूसल से मार कर पैड़ियों में धक्का दिया। आप धक्के के वेग को संभालने में असमर्थ होकर गिर पड़े, जिससे आपका पहले का आहार गिर गया और पात्र फूट गए। किन्तु इतना अधिक अत्याचार किये जाने पर भी आपने अपने परिणामों को नहीं बिगाड़ा और आप शान्त बने रहे। आपके शान्त भाव तथा उसके अत्याचार पर लोगों ने उसे अत्यधिक लानतें दीं। वह उसे पीटने के लिये फिरते रहे, किन्तु मुनि सोहनलाल जी महाराज ने उनको ऐसा करने से रोका। किन्तु इतने पर भी उस अत्याचारी के मन में पश्चात्ताप नहीं हुआ। बाद में उसके समस्त कुल का नाश हो गया। लोग अर्से तक

उसके सम्बन्ध में यही कहते रहे कि यदि वह इस प्रकार पूज्य सोहनलाल जी महाराज के ऊपर अत्याचार न करता तो उसके कुल का नाश न होता।

गैंडेराय जी की दीक्षा

अपने फिरोजपुर के चातुर्मास से पूर्व जब आप नारोवाल गए थे तो वहां आपके उपदेश से गेंडेराय नामक एक बालक को वैराग्य हो गया था। आपके फिरोजपुर पधारने पर वह बालक भी फिरोजपुर आकर आपकी सेवा करता हुआ विद्याभ्यास करने लगा। गैंडेराय अत्यधिक बुद्धिमान् तथा होनहार बालक था। उसमें धर्म की तीव्र भावना के साथ २ मंजीठी रंग का वैराग्य दृढ़ हो चुका था। उसके माता पिता ने उसको गृहस्थ में रोकने का अत्यधिक प्रयत्न किया, किन्तु बालक की दृढ़ता के कारण उनको लेशमात्र भी सफलता नहीं मिली। अंत में उसने पूज्य सोहनलाल जी महाराज से उनके फिरोजपुर के चातुर्मास में ही दो अन्य बैरागियों सहित दीक्षा ग्रहण की। मुनि गैंडेराय जी पूज्य सोहनलाल जी महाराज के बड़े शिष्य थे। आप अत्यधिक विनयी, गुरुभक्त, शास्त्रवेत्ता तथा असाधारण तपस्वी मुनि थे। मुनि सोहनलाल जी को इस प्रकार एक अपूर्व शिष्य रत्न की प्राप्ति हुई। वह उनके सच्चे सहायक तथा क्रियामार्ग के चिन्तामणि रत्न से भी अधिक सहयोगी थे। साथ ही आप अत्यधिक तेजस्वी, प्रतापी तथा धर्म प्रचार के लिये अनुकूल विनीत शिष्य थे।

मुनि गैंडेराय जी तथा पूज्य मुनि सोहनलाल जी दोनों गुरु शिष्यों ने बारह वर्ष तक एक २ चादर, एक २ चोलपटा तथा तीन २ पात्रों से ही काम लिया। आप लोग भोजन में बहुत ही सादा थे। जो कुछ भी मिल जाता आप एक ही पात्र

में ग्रहण करते थे। आपका वारी खाता भी एक ही था। आप अत्तार तथा पंसारी की दूकान से दवा भी नहीं लेते थे। मुनि गैंडेराय जी महाराज ने भी जीवन भर एक ही चोरपटा, एक ही मुखवस्त्रिका तथा एक ही गाती रखी। आप वृद्धावस्था में आकर एक लोई का टुकड़ा अर्थात् अकेरा रखने लगे थे। इस प्रकार मुनि गैंडेराय जी में अनेक गुण थे। मुनि सोहनलाल जी ने ऐसे शिष्य को साथ लेकर विहार करते हुए न केवल समाज का कल्याण किया वरन् अपने आत्मा का विकास भी किया।

१९३९ का चातुर्मास

मुनि सोहनलाल जी महाराज फिरोजपुर का चातुर्मास समाप्त करक वहां से विहार कर गए। अब आपने फरीदकोट, भटिंडा, हांसी, हिसार तथा दिल्ली में धर्म प्रचार करते हुए पानीपत, सोनीपत, कर्नाल, शाहाबाद आदि क्षेत्रों में धर्म प्रचार किया। इस बीच में आपको अम्बाले से अनेक विनतियां मिल चुकी थीं। अतएव आपने अम्बाला की विनती को स्वीकार कर अम्बाला नगर में पदार्पण किया। वहां के श्रावक समाज के आग्रह से आपने अपना संवत् १९३९ का चातुर्मास अम्बाला नगर में किया।

संवत् १९३९ में आत्माराम जी संवेगी का चातुर्मास भी अम्बाला में ही था। इस कारण से भी वहां के श्रावक वर्ग ने मुनि सोहनलाल जी का चातुर्मास वहीं कराया।

इस समय मुनि श्री सोहनलाल जी ने ठाणे पांच से अम्बाला में चातुर्मास किया। आपके साथ मुनि श्री गणपत राय जी, मुनि श्री गैंडेराय जी, मुनि मेलाराम जी तथा तपस्वी मुनि रामचन्द जी भी थे।

इस चातुर्मास में दोनों ओर के गृहस्थों ने इस बात का यत्न किया कि आत्माराम जी मुनि श्री सोहनलाल जी के साथ शास्त्रार्थ करें। किन्तु अनेक बार समय देने पर भी आत्माराम जी कभी भी मुनि सोहनलाल जी के सामने नहीं आए।

जब मुनि सोहनलाल जी ने देखा कि आत्माराम उनके सन्मुख आने को तय्यार नहीं है तो उन्होंने फिरोजपुर वाले लाला त्रिलोकचन्द से इसकी चर्चा की। तब लाला त्रिलोकचन्द ने आपसे कहा

"आप आत्माराम जी के नाम कुछ प्रश्न लिख कर मुझे दे दें। मैं उनके पास जाकर उनके उत्तर उनसे लेकर आपको ला दूंगा।"

अस्तु मुनि सोहनलाल जी महाराज ने निम्नलिखित पांच प्रश्न लिख कर आत्माराम जी के लिए लाला त्रिलोकचन्द को दिये—

प्रश्न १. संवेगी लोग मूर्ति पूजन के प्रमाण रूप में यह कहते हैं कि द्रोपदी ने अपने विवाह के अवसर पर प्रतिमा पूजन किया था। सो द्रोपदी ने किस जिन की प्रतिमा का पूजन किया था ? स्थानांग सूत्र में तीन प्रकार के जिन, केवली अथवा अर्हन बतलाए गए हैं—

अवधि ज्ञानी, मनःपर्यय ज्ञानी तथा केवल ज्ञानी।

फिर उस प्रतिमा की किस महात्मा ने प्रतिष्ठा करवाई थी ? उस प्रतिमा का मंदिर किस तीर्थंकर के उपदेश से बनाया गया था ?

ज्ञातृधर्म कथांग के सोलहवें अध्याय में ही यह बतलाया गया है कि द्रोपदी नानाकृत थी। अर्थात पिछले जन्म में वह

इस जन्म के भोगों के प्रति निदान करके मरी थी। अस्तु उसको इस प्रकार के भोग द्रोपदी जन्म में मिलना अनिवार्य था। फिर ज्ञातृधर्म कथांग के वर्णन से यह भी पता चलता है कि द्रोपदी का पिता राजा द्रुपद जैनी नहीं था, क्यों कि उसके यहां होने वाली दावत में छै प्रकार के निम्नलिखित आहार बने थे—

असनं, पानं, खाइयं, सायणं, मद्दं, मांसं।

यह संभव नहीं कि जैनी के यहां मद्य मांस का भोजन खाया जावे अथवा सार्वजनिक रूप से परोसा जावे।

इसके विपरीत पाण्डव लोग जैनी थे, क्यों कि उनके यहां मद्य तथा मांस को छोड़कर शेष चार प्रकार का भोजन ही अतिथियों को परोसा गया था।

फिर द्रोपदी ने जिस जिन प्रतिमा का पूजन किया था, उसके सम्बन्ध में यह कैसे माना जावे कि वह जिन प्रतिमा जैन तीर्थंकर की ही थी, क्यों कि जिन शब्द के अर्थ निम्नलिखित हैं—

भूत, देवता, कामदेव, अवधिज्ञानी, भगवान्, गौतम बुद्ध, वासव, इन्द्र और अर्जुन।

जैसा कि मेदिनी कोष में लिखा है—

'जिनोऽर्हति च बुद्धे च पुंसि स्याज्जित्वरे त्रिषु।'

जित्वर शब्द के विषय में भी मेदिनी कोष में कहा गया है—

जेता, जिष्णुश्च जित्वरः
जिष्णुर्ना वासवेऽर्जुने।

सो यह किस प्रकार माना जावे कि उसने जिन प्रतिमा का पूजन करते समय जैनमूर्ति का ही पूजन किया? महाभारत

आदि प्राचीन ग्रन्थों में यह विधान है कि कुमारी कन्या अपने विवाह के एक दिन पूर्व किसी देवता का पूजन करने जाया करती थी। रुक्मिणी के सम्बन्ध में यह वर्णन आता है कि वह कामदेव का पूजन करने गई कि कृष्ण ने वहीं से उसका हरण किया। रामायण में कहा गया है कि सीता जी पार्वती का पूजन करने गई थीं कि वहां उनकी भेंट धनुष तोड़ने से पूर्व फूलों के लिए आये हुए राम लक्ष्मण से हुई।

यह स्पष्ट है कि राजा द्रुपद जैनी नहीं थे। अतएव द्रोपदी ने जिस 'जिन प्रतिमा' का पूजन किया, या तो वह कामदेव की अथवा स्वयं अर्जुन की थी, क्योंकि जैसा कि ऊपर मेदिनी कोष का प्रमाण दिया गया है, जिन शब्द का अर्थ अर्जुन भी है।

ज्ञाता धर्म कथांग में आपके कहने के अनुसार द्रोपदी ने 'जिन प्रतिमा' का पूजन करते समय 'णमोत्थुणं' पाठ पढ़ा है। सो यह बात भी प्रामाणिक नहीं है। क्योंकि ज्ञाता धर्म कथांग की प्राचीन प्रतियों में इस अवसर पर 'णमोत्थुणं' पाठ नहीं मिलता। ज्ञाता धर्म कथांग की ऐसी एक प्राचीन प्रति पूना के भंडारकर इंस्टीट्यूट के पुस्तकालय में है तथा दूसरी प्रति दिल्ली के श्रावक मोहनलाल जी के पास भी है। इन दोनों प्रतियों में से किसी में भी इस अवसर पर णमोत्थुणं पाठ नहीं है। अतएव ज्ञाता धर्म कथांग में इस अवसर पर दिया हुआ 'णमोत्थुणं' पाठ निश्चय से क्षेपक है।

प्रश्न २—'न्हाएकयवत्नीकम्मा' शब्द का अर्थ क्या है? यदि इसका अर्थ घर का देव मानोगे तो भूत आदि सिद्ध होंगे। क्योंकि तीर्थंकर देव किसी के भी घर के देव न हो कर अणगार और देवाधिदेव हैं, अथवा यदि उनका अर्थ भूत आदि मानोगे

तो सम्यक्त्व में दूषण लगता है। कामदेव श्रावक के रूप को पढ़ कर देखो।

प्रश्न ३—ओघनिर्युक्ति के प्रमाण से आत्माराम जी ने द्रौपदी जी को विवाह से पूर्व मिथ्यादृष्टि सिद्ध किया है। देखो आत्माराम जी के द्वारा किये हुए प्रश्नों में पांचवा प्रश्न जो उन्होंने संवत् १९२३ में बूटेराय जी से किये थे। आपके दोनों प्रमाणों में से किसको सत्य माना जावे। आप परस्पर विरोधी कथन करने के दोष से किस प्रकार बच सकते हैं ?

प्रश्न ४—मूर्ति पूजा का उपदेश किस अर्हन् ने किस स्थान पर किया है। तीर्थंकर भाषित सूत्रों में पांच महाव्रतों तथा श्रावक के द्वादश व्रतों का उपदेश पूर्ण विधि से किया गया है, तो उनमें मूर्ति की विधि विधान क्यों नहीं किया गया ?

प्रश्न ५—जब तीर्थंकर देव सहस्रों जीवों को दीक्षा देते हैं तथा सहस्रों को ही श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण करवाते हैं तो मूर्ति की प्रतिष्ठा भी करवाते होंगे, सो किस अर्हन् ने मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई और उसका वर्णन किस सूत्र में किया गया है ?

आप कहते हो कि रायप्रसेनी ने सूर्याभ देवता द्वारा देवलोक में जिन प्रतिमा की पूजा किये जाने का वर्णन है। किन्तु जहां स्वर्ग में जिन प्रतिमा का वर्णन है, वहां भूए प्रतिमा (भूत प्रतिमा) तथा जक्ख प्रतिमा (यक्ष प्रतिमा) का भी वर्णन है। यदि वहां जिन प्रतिमा होती तो उसके साथ गणधर प्रतिमा तथा साधु प्रतिमा भी होनी चाहिये थी, उनके न होने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है वह जिन प्रतिमा जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा न हो कर किसी अन्य देवता की प्रतिमा है।

स्वर्ग में तोरण आदि प्रत्येक वस्तु की पूजा की जाती है। उनके अपने पिछले देवों की मूर्तियां भी वहां रहती हैं। प्राचीन भारत में भी इस प्रकार की मूर्तियां कला के आदर अथवा इतिहास की दृष्टि से रक्खी जाती थीं। भास कवि के प्रतिमा नाटक में अयोध्या के बाहिर एक ऐसे प्रतिमा मन्दिर का वर्णन किया गया है, जिसमें दशरथ से पूर्व के सभी रघुवंशी राजाओं की मूर्तियां थीं। जब राम के बन गमन के बाद भरत अपनी ननसाल से अयोध्या वापिस आए तो उनको उस प्रतिमा मंदिर में दशरथ की मूर्ति को देख कर यह पता चला था कि उनके पिता का स्वर्गबास हो चुका है।

स्वर्ग की मूर्तियों का वर्णन नख शिख से किया जाता है। जब कि तीर्थंकर भगवान् का वर्णन शिख नख से किया जाता है। इसके अतिरिक्त सूर्याभ देवता के वर्णन में मूर्ति के नेत्रों में लालिमा का वर्णन है, जो केवल भोगी पुरुषों के नेत्रों में ही सम्भव है। त्यागियों के नेत्रों में लालिमा नहीं हो सकती।

सूर्याभ देवता की जिन प्रतिमा के स्तन भी हैं, जब कि भगवान् के स्तन नहीं होते, ऐसी स्थिति में यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि सूर्याभ देवता के विमान में मिलने वाली मूर्ति जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा है ?

आप लोग नन्दीश्वर द्वीप में तीर्थंकरों की मूर्तियों के अस्तित्व को किस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं ?

भगवान् के द्वारा नन्दीश्वर द्वीप के वर्णन को सुन कर जो लब्धि धारी साधु नन्दीश्वर द्वीप गया था, उसने वहां जा कर जो कुछ किया, उसको 'वंदयिता' पद से सूत्र में प्रकट किया गया है। बन्दना, स्तुति अथवा गुणों का वर्णन करने को कहते

हैं। इसका यह अर्थ तो नहीं है कि वहां मूर्ति थी, जिसकी उस लब्धिधारी मुनि ने पूजा की। 'वंदयिता' पद से पूजन का भी पता नहीं चलता, फिर आप आगम ग्रन्थों से मूर्ति पूजा किस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं ?

इसके अतिरिक्त आगमों में यह स्थान स्थान पर लिखा हुआ है कि देवता लोग अव्रती होते हैं। फिर नित्य पूजा करने के व्रत का निर्वाह किस प्रकार कर सकते हैं। यदि आप यह मानते हो कि वह कभी कभी पूजा कर लिया करते होंगे तो नित्य प्रक्षाल तथा पूजन न होने से वहां की प्रतिमाओं की अविनय होती होगी।

पूज्य मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज के द्वारा लिखे हुए इन प्रश्नों को लेकर बाबू त्रिलोकचन्द जी आत्माराम जी के पास गये। उन्होंने यह सभी प्रश्न उनको पढ़ कर सुना दिये। किन्तु उन्होंने उनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इसमें संदेह नहीं कि संवेगियों के अनेक ग्रन्थों में प्रतिमा पूजन का वर्णन है। किन्तु वह सभी ग्रन्थ नए हैं, उनमें प्राचीन कोई नहीं है। आगम ग्रंथों में तो मूर्ति पूजा का वर्णन कहीं भी नहीं पाया जाता।

संसार में सभी बातों का ज्ञान होने के चार साधन हैं—

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव।

नाम के बिना तो किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता। जिस किसी वस्तु का भी वर्णन किया जाता है नाम के बिना उसके विषय में कुछ भी पता नही चल सकता। नाम रखने में वस्तु के गुण का ध्यान नहीं रक्खा जाता है। यह प्रायः देखने

में आता है कि आंखों के अंधे का नाम नयनसुख रख दिया जाता है। वास्तव में नाम का प्रयोग व्यवहार के लिये ही किया जाता है, क्योंकि नाम ज्ञान का प्रधान साधन है।

काठ, पत्थर, चित्र, पासों आदि को किसी भी रूप में मान लेना स्थापना कहलाता है। स्थापना दो प्रकार की होती है।

एक तदाकार स्थापना, दूसरी अतदाकार स्थापना।

किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का उसी के आकार का चित्र अथवा मूर्ति बनाना तदाकार स्थापना है। जैसे महात्मा गांधी अथवा नेहरू जी का चित्र असली महात्मा गांधी या नेहरू जी न होते हुए भी उनके आकार का होने के कारण तदाकार स्थापना कहलाता है। अतदाकार स्थापना में किसी चीज़ को बिना आकार का ध्यान रक्खे किसी भी प्रकार की मान लेते हैं। जैसे शतरंज के पासों को राजा, मंत्री, ऊंट, हाथी, घोड़ा तथा पैदल मान कर दोनों खेलने वाले उनके द्वारा कृत्रिम युद्ध करते हैं। किन्तु उनमें से कोई भी पासा राजा, मंत्री ऊंट, हाथी, घोड़े या पैदल की शकल का नहीं होता। इसे अतदाकार स्थापना कहा जाता है।

तदाकार स्थापना तथा अतदाकार स्थापना दोनों से ही एक परिमित प्रयोजन को सिद्ध किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति चाहे कि वह शतरंज के घोड़े से खेलने के अलावा उस पर सवारी भी करले तो यह सम्भव नहीं है। इसका एक और उदाहरण भी हो सकता है।

कोई व्यक्ति अपना मकान बनवाने के लिये अपने प्रस्तावित मकान का नकशा नक्शेनवीस से बनवा कर उसे

म्युनिस्पिल कमेटी में मंजूरी के लिये भेजता है तो वह न तो उस रसोई घर में भोजन बनवा सकता है और न उसके स्नान घर में स्नान कर सकता है।

इसके अतिरिक्त सिनेमा में युद्ध, मार-पीट, नदी नालों तथा भोजन आदि के जो असंख्य दृश्य दिखलाये जाते हैं सो उन नदी नालों में न तो कोई स्नान कर सकता है और न उन दावतों में सम्मिलित होकर कोई भोजन कर सकता है।

यह सब तदाकार स्थापना है। आज महात्मा गांधी आदि राष्ट्रीय नेताओं की मूर्तियों को संगमरमर, पत्थर, चांदी आदि की बनवा कर स्थान स्थान पर रखवाने की प्रथा चल पड़ी है, किन्तु उनको केवल उनकी मूर्ति ही माना जा सकता है उनको वास्तविक महात्मा गांधी या नेहरू जी आदि मान कर उनके साथ महात्मा गांधी अथवा नेहरू जी जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार अपने जैन तीर्थंकरों की मूर्ति को चित्र कला अथवा मूर्तिकला की दृष्टि से समझा जा सकता है, किन्तु ऐसी स्थिति में उनको केवल मूर्ति ही मानना चाहिये उस मूर्ति को भगवान् नहीं माना जा सकता।

स्कूल के विद्यार्थियों को भूगोल की शिक्षा देते समय नकशे द्वारा सभी प्रकार के पर्वतों तथा नदियों का ज्ञान प्राप्त कराया जाता है। किन्तु उस नकशे में सुमेरु पर्वत का स्थान ही बतलाया जा सकता है, सुमेरु पर्वत का भाव उसमें किसी प्रकार भी नहीं आ सकता।

इस विषय में एक ठेकेदार का उदाहरण स्मरण रखने योग्य है। एक ठेकेदार एक बड़ा भारी मकान बनवा रहा था, जिसमें

कई सौ मिस्त्री, राज तथा मजदूर काम करते थे। उसने उनको दैनिक मजदूरी बांटने के लिये दस सहस्त्र रुपया मंगवाया, सो किसी को दस-दस रुपये दैनिक से लेकर रुपया-रुपया आठ-आठ आने तक करके सब रुपया बांट दिया गया। इस पर रुपया-रुपया आठ-आठ आने पाने वाले मजदूरों में असंतोष बढ़ गया कि ठेकेदार दस सहस्त्र रुपया सब स्वयं खा गया, और उनको केवल रुपया-रुपया तथा आठ-आठ आने दे दे कर ही टाल दिया गया। इस पर एक अन्य ठेकेदार ने अगले दिन दस सहस्त्र रुपया मंगवा कर अलग रख दिया, और दस सहस्त्र कंकड़ियां मंगवा कर उन मजदूरों के सामने एक एक कंकड़ी को एक रुपया मान कर सब में बंटवा दिया। जब इस प्रकार कम वेतन पाने वाले मजदूर संतुष्ट होगए तो उसने फिर उनको असली रुपया उसी हिसाब से बांट दिया। इसी प्रकार कंकरी को कंकरी ही माना जावेगा, असली रुपया नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार मूर्ति को मूर्ति ही माना जावेगा, असली भगवान मान कर उसकी पूजा नहीं की जा सकती।

कई मूर्तिपूजकों का कहना है कि वह मूर्ति को सामने रख कर भगवान का ध्यान करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वह मूर्ति के साथ साथ भगवान का ध्यान भी करके एक साथ दो वस्तु का ध्यान करते हैं, किन्तु शास्त्र का विधान यह है कि एक समय में एक विषय का उपयोग ही हो सकता है। दो वस्तुओं का एक साथ उपयोग कभी भी नहीं हो सकता।

न्याय दर्शन का भी यह प्रसिद्ध सिद्धान्त है

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्।

एक साथ दो वस्तुओं का ज्ञान न हो सकना मन का चिह्न है।

इस प्रकार उनका 'यह कहना कि हम मूर्ति को आधार बना कर भगवान् का ध्यान करते हैं ठीक नहीं है।

कुछ अन्य मूर्तिपूजक कहा करते हैं कि जिस प्रकार एक कमरे में वेश्याओं के चित्रों को देख कर उनके अन्दर राग भाव उत्पन्न होता है उसी प्रकार वीतराग मूर्तियों को देख कर मन में वीतराग भाव का उदय होता है। उनकी यह युक्ति भी युक्ति न होकर युक्त्याभास है। कारण कि उनके मन में सुन्दरता के प्रति आकर्षण अथवा राग भाव का उदय चारित्र मोहनीय कर्म की रति प्रकृति के उदय के कारण होता है, किन्तु वीतराग रूप धार्मिक भाव का उदय उन कर्मों के क्षयोपशम से होता है। मूर्ति से जिस प्रकार चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में सहायता मिलती है। उस प्रकार उसके क्षयोपशम में सहायता नहीं मिल सकती।

वास्तव में ज्ञान उपयोग से होता है। जब किसी बात में उपयोग होता है तो उसका ज्ञान जल्दी हो जाता है। किन्तु उपयोग न होने से उस बात का पता बिलकुल भी नहीं चलता। यह प्रायः देखने में आता है कि हम किसी व्यक्ति से कोई सुन्दर कहानी सुन रहे हैं। प्रायः कहानी सुनते सुनते हमारा ध्यान कहीं और चला जाता है और हम कहानी के सिलसिले को अपने मन में छोड़ कर उसको सुन नहीं पाते। कई बार तोपों की गर्जना होने पर हमारे कान के पर्दे तक फट जाते हैं, किन्तु जब हमारा ध्यान कहीं और होता है तो वह तोपों की भीषण गर्जना भी हमको बिलकुल सुनाई नहीं देती। इस प्रकार यह सिद्ध है मन एक समय एक बात को ही सोचता है। दो बातों का ध्यान एक साथ नहीं कर सकता। इससे न्याय शास्त्र के इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि

युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम् ।

इस लिये लोगों का यह कहना कि वह प्रतिमा के ध्यान के द्वारा भगवान् का ध्यान करते हैं, सिद्धान्त के विरुद्ध है। ऐसे व्यक्ति केवल प्रतिमा का ही ध्यान करते हैं, भगवान् का ध्यान नहीं करते।

इस प्रकार तदाकार स्थापना के स्वरूप को ठीक ठीक जान कर मूर्ति अथवा चित्र आदि में उस वस्तु के मूर्ति आदि की स्थापना ही माननी चाहिये, स्वयं उस वस्तु को ही मूर्ति अथवा चित्र रूप नहीं मान लेना चाहिये। ऐसा मानने वाले स्थापना निक्षेप के स्वरूप को ठीक नहीं समझते।

किसी वस्तु को उस वस्तु के त्रिकालाबाधित रूप में जानना द्रव्य निक्षेप है। जिस प्रकार किसी जीवित प्राणी को शरीर सहित होने पर भी जीव बतलाना, यद्यपि शरीर पुद्गल का बना होता है और उसमें जीव नहीं होता। किन्तु जीवित प्राणी के शरीर में जीवात्मा के संयोग के कारण हम उसको जीव कहते हैं कि किसी जीव को मत सताओ।' उसके विषय में हमारा यह कथन उसके त्रिकालाबाधित स्वरूप की अपेक्षा से है।

द्रव्य नाम के दो भेद हैं

एक आगम द्रव्य, दूसरा नोआगम द्रव्य।

किसी द्रव्य के स्वरूप को उसके शास्त्र वर्णित रूप में जानना आगम द्रव्य है नय है। किन्तु उसको ज्ञायक शरीर, उसके भावी रूप तथा उसके भूत तथा भविष्य के भिन्न भिन्न रूपों की दृष्टि से उसको जानने अथवा उसका वर्णन करने को

नोआगम द्रव्य निक्षेप कहते हैं। इस निक्षेप के द्वारा हमको सभी द्रव्यों के वास्तविक रूप का पता लगता है। इसी द्रव्य निक्षेप के द्वारा किसी भूतपूर्व हवलदार को हवलदार कह कर तथा भूतपूर्व जज को जज साहिब कह कर पुकारते हैं।

किसी वस्तु के वर्तमान रूप को जैसी की तैसी दशा में जानना या वर्णन करना भाव नय है। जैसे दफ्तर में क्लर्की करने वाले किसी हवलदार को क्लर्क ही कहना और हवलदार न कहना। पदच्युत राजा यदि जंगल में रह कर लकड़ी काटता हो तो उसे लकड़हारा ही कहना, राजा न कहना भाव निक्षेप है। इस भाव निक्षेप के द्वारा अप्रकृत वर्णन का निराकरण करके प्रकृत रूप का वर्णन किया जाता है।

नाम, स्थापना तथा द्रव्य निक्षेप इन तीनों निक्षेपों में वस्तु के द्रत्यक्ष स्वरूप का वर्णन किया जाता है। इस लिये भाव ही वन्दनीय है।

प्रायः लोग अज्ञानवश नाम, स्थापना तथा द्रव्य का वर्णन भाव रूप में करके न केवल अपने अज्ञान का परिचय देते हैं, वरन् अपने उस अज्ञान द्वारा अपने लिये असंख्य कर्मों का भी बंध करते हैं। अतएव किसी वस्तु तत्व के स्वरूप पर विचार करते समय उसका स्वरूप इन चारों निक्षेपों की दृष्टि से ठीक ठीक जानना चाहिये।

अम्बाला के १६३६ के उसी चातुर्मास में मुनि श्री गैंडेराय जी को ज्वर हो गया और दस्त लग गये तो आत्माराम जी संवेगी की ओर से आवाज़ आने लगी कि एक को तो लम्बा पा दिया (लम्बा डाल दिया), अब बाकी की बारी है। इस संबन्ध में यहां तक सुनने में आया कि मूठ चला कर समाप्त कर दिया

जावेगा इत्यादि इस पर मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज ने चैलेंज दिया कि "यदि कुछ शक्ती है तो उसे हमको दिखलाओ, गैंडेराम जी को इस समय असाता वेदनीय कर्म का उदय है। यह कष्ट साता वेदनीय का उदय होने अथवा असाता की मियाद समाप्त होने पर अपने आप शान्त हो जावेगा। जो साधु मंत्र अथवा मूठ आदि की बात सोचता है वह साधु नहीं हो सकता, वरन उसमें तो मनुष्यता का भी अभाव है।"

इसके बाद लगभग एक सप्ताह में मुनि श्री गैंडेराम जी का स्वास्थ्य ठीक हो गया और अम्बाले का यह चातुर्मास आनन्द पूर्वक समाप्त हो गया।

आत्माराम जी ने अपना चातुर्मास समाप्त करके जयपुर की ओर विहार किया। श्री सोहनलाल जी उसका पीछा करना चाहते थे। अतएव उन्होंने पूज्य आचार्य मोतीराम जी महाराज से यह अनुमति मांगी कि वह पांच वर्ष तक उसका पीछा करेंगे। क्योंकि उनको आशा थी कि इस बीच में वह कहीं न कहीं तो शास्त्रार्थ के लिये मुकाबले पर आवेगा। किन्तु आत्माराम जी अपने पीछे पीछे श्री मुनि सोहनलाल जी के आने का समाचार पाकर ऐसे भागे कि वह जयपुर में अल्प विश्राम कर वहां से आगे अजमेर तथा ब्यावर होते हुये मारवाड़ की ओर इस प्रकार शीघ्रता पूर्वक निकल गए कि उनका पता सुगमता से न लगाया जा सके। श्री मुनि सोहनलाल जी ने उसका ब्यावर तक पीछा किया। अन्त में पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज ने मुनि श्री सोहनलाल जी के पास संदेश भेजा कि

'जो भाग गया उसका पीछा छोड़ दिया जावे और मुनि सोहनलाल जी उसका पीछा न करके वापिस आजावें।'

मुनि श्री सोहनलाल जी ने इस अवसर पर राजस्थान में अच्छा प्रचार किया।

इसके पश्चात् संवत् १९४७ के पूज्य सोहनलाल जी के मालेरकोटला के चातुर्मास में भी आत्माराम जी का चातुर्मास मालेरकोटला में ही था। फिर संवत् १९४८ में भी वह अमृतसर में पूज्य सोहनलाल जी के साथ तथा आत्माराम जी एक ही नगर में थे। किन्तु आत्माराम जी बारबार बुलाये जाने पर भी शास्त्रार्थ करने से बचते ही रहे।

३३

गणि उदयचन्द जी का सम्पर्क

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण ग्रय।
अप्पा मित्त मामित्तं य, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ॥

उत्तराध्ययन सूत्र, अ० २०, गाथा ३६, ३७

आत्मा ही अपने दुःखों और सुखों का कर्ता तथा भोक्ता है। अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा मित्र है, और बुरे मार्ग पर चलने वाला आत्मा शत्रु है।

पूज्य मुनि श्री सोहनलाल जी जब आत्माराम जी के पीछे जयपुर से आगे बढ़े तो जयपुर के श्रावकों को आपकी विद्वत्ता, तप तथा त्याग की शक्ति देख कर बड़ी भारी श्रद्धा हुई। अतएव जब तक आप ब्यावर पधारे तब तक जयपुर वालों ने आपके पास जयपुर में चातुर्मास करने की विनती कई बार की, अस्तु, आपने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर संवत् १६४० का चातुर्मास जयपुर में करना स्वीकार किया।

जयपुर चातुर्मास में आपके साथ जो साधु थे, उनमें एक मुनि हरिचन्द जी महाराज भी थे। वह श्री मुनि नारायण-दास जी महाराज के शिष्य थे। किन्तु उनको अकाल में शास्त्रों का स्वाध्याय करने में आनन्द आता था। श्री सोहनलाल जी

महाराज ने उनको ऐसा करने से कई बार मना किया। किन्तु उन्होंने अपनी इस आदत को न छोड़ा। अन्त में कुछ समय के उपरांत मुनि हरिचन्द जी पागल हो गये। किन्तु श्री सोहनलाल जी महाराज ने उनको ठीक कर ही लिया।

जयपुर के चातुर्मास को समाप्त कर आपने वहां से विहार कर दिया। अब आपने, अलवर, दिल्ली, खेकड़ा आदि स्थानों में धर्म प्रचार करते हुए कांधला की ओर प्रस्थान किया। कांधला वाले आपके पास चातुर्मास की विनती लेकर दिल्ली तक आए थे। अतएव आपने विनती को स्वीकार करके संवत् १६४१ का चातुर्मास कांधले में किया। इस समय आपके साथ तीन मुनि और थे—

मुनि श्री गैंडेराय जी महाराज, तपस्वी सेवकराम जी के शिष्य मुनि घासीराम जी महाराज तथा मुनि हरिचन्द जी महाराज। आपने कांधले चातुर्मास में नौबतराय बैरागी को श्री गैंडेराय जी से दीक्षा दिलवा कर उसका नाम उदयचन्द रक्खा। यही बालमुनि आगे चल कर प्रसिद्ध गणि उदयचन्द जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बालक नौबतराय का जन्म विक्रम संवत् १६२२ में नाभा राज्य के एक राता नामक ग्राम में एक उच्च गौड़ ब्राह्मण वंश में हुआ था। उनके पिता श्री शिवजीराम एक साधन सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। उनके पास कई मकान तथा सौ बीघे जमीन थी। वह संस्कृत तथा ज्योतिष विद्या के अच्छे विद्वान् थे। आपकी पत्नी तथा बालक नौबतराय की माता का नाम सम्पत्तिदेवी था।

बालक नौबतराय को बाल्यावस्था से ही एकांत प्रिय था। साधु-संतों के संग में उसको विशेष आनन्द आता था।

एक बार नौबतराय के पिता ने जो उनकी जन्म पत्री पर विचार किया तो उनको स्पष्ट दिखलाई दे गया कि यह बालक एक उच्चकोटि का तपस्वी साधु बनेगा। अस्तु अब उन्होंने बालक नौबतराय की दिनचर्या पर विशेष ध्यान देना आरम्भ किया। उन्होंने उनको हिन्दी तथा संस्कृत का अध्ययन कराना आरम्भ किया।

कुछ दिनों बाद नौबतराय जी के पिता ने सोचा कि नौबत को साधुओं की संगति छुड़ाने के लिये उसे दिल्ली भेज देना चाहिये। दिल्ली के एक लाला पन्नालाल जी ओसवाल धनिक उनके घनिष्ट मित्र थे। वह स्थानकवासी जैन होने के साथ साथ अत्यधिक धार्मिक प्रकृति के थे। अस्तु पंडित शिवजीराम ने नौबतराय को लाला पन्नालाल के पास दिल्ली भेज दिया।

लाला पन्नालाल के देवीदयाल नामक एक चाचा थे। उनकी दरीबे में पगड़ियों की दूकान थी। नौबतरात देवीदयाल जी के साथ उपाश्रय में जाने लगा। क्रमशः उसका सम्पर्क जैन मुनियों से बढ़ा और उसके मन के उनके चरित्र के प्रति अत्यधिक श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

नौबतराय को जब दिल्ली में रहते हुए पांच वर्ष होगए तो पूज्य मुनि कचौड़ीमल जी महाराज की सम्प्रदाय के साधुओं का चातुर्मास संवत् १९३९ में लाला पन्नालाल के मकान में हुआ। नौबतराय को अब जैन मुनियों की जीवनचर्या को निकट से देखने का अवसर मिला। अब उसको विश्वास हो गया कि संसार में आत्म कल्याण का सबसे उत्तम मार्ग जैन दीक्षा लेना है। नौबतराय को इसके पश्चात् संवत् १९४० में मुनि श्री गंभीरमल जी के दिल्ली चातुर्मास के समय उनके पास

रहने का भी अवसर मिला। नौबतराय ने उनके चरणों में बैठ कर आजन्म ब्रह्मचर्य रखने का नियम ले लिया।

पन्नालाल जी को जब बात मालूम हुई तो उन्होंने उसकी सूचना नौबतराय के पिता के पास राता भेज दी। वह दिल्ली आकर अपने पुत्र को समझा बुझा कर राता ले गये। यहां उनके विवाह की चर्चा भी चली, किन्तु उन्होंने साफ कह दिया कि उसको जन्म भर ब्रह्मचारी रह कर जैन दीक्षा लेनी है। एक सनातन धर्मी ब्राह्मण कुमार और जिन दीक्षा ले। इस समाचार से न केवल सारे परिवार में वरन् आस पास के अनेक नगरों में हलचल मच गई। किन्तु नौबतराय ने किसी की भी नहीं सुनी और एक बार अवसर पाकर राता से चुप चाप भाग कर फिर दिल्ली आगए। इस बार उसको सौभाग्यवश पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके साथ आपके सुप्रसिद्ध प्रधान शिष्य पंडित श्री गैंडेराय जी महाराज भी थे। नौबतराय उपाश्रय में उनके पास आने जाने लगा।

एक दिन नौबतराय ने श्री सोहनलाल जी महाराज से निवेदन किया कि

'गुरुदेव ! मैं आपके श्री चरणों में बैठ कर जिन दीक्षा लेनी चाहता हूं।"

इस पर उन्होंने उत्तर दिया

"दृढ़ निश्चय करलो तुमको क्या करना है ? तुम देखते हो कि जैन साधु की जीवनचर्या बड़ी कठोर होती है। यहां तो जीवित ही अपने को मृतक समझना होगा। संसार की भोग वासनाओं के लिये यहां अणुमात्र भी अवकाश नहीं है। यहां

तो अपने आप को दिन और रात साधना की अग्नि में तपाना और आत्मा के वास्तविक रूप को निखारना होगा। क्या तुम शिर के बालों को उखाड़ने की बात जानते हो? यह पता है कि उसमें कितना कष्ट होता है? क्या तुम उस कष्ट को प्रसन्न भाव से सहन करने को तयार हो?"

मुनि श्री सोहनलाल जी के यह शब्द सुन कर नौबतराय ने उनको उत्तर दिया

"गुरुदेव! मैं जैन साधुओं की जीवनचर्या से पूर्णतया परिचित हूं। मैं किसी और कारण से साधु नहीं बनना चाहता। मैं तो केवल आत्म कल्याण के लिये ही साधु बनना चाहता हूं। अतएव इस मार्ग में आने पर कितने ही कष्ट क्यों न हों, मुझ पर कितनी भी आपत्तियां क्यों न पड़ें मैं उन सब को सहन कर आत्म कल्याण के लक्ष्य पर पहुंचने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने का नियम मैं पहिले ही ग्रहण कर चुका हूं।"

इस पर मुनि सोहनलाल जी प्रसन्न होते हुए बोले

पूज्य श्री—"अच्छा! तुमने आजन्म ब्रह्मचर्य का नियम लिया हुआ है?"

नौबतराय—जी हां, गुरुदेव!

पूज्य श्री—तब तो तुम्हारा मार्ग प्रशस्त है।

नौबतराय—तो फिर कृपा कीजिये, गुरुदेव!

पूज्य श्री—क्या घर से माता पिता की आज्ञा मिल चुकी है?

नौबत—नहीं, गुरुदेव! आज्ञा मिलने की सम्भावना भी नहीं है।

पूज्य श्री—बिना अभियातकों की आज्ञा प्राप्त हुए जैन साधु किसी को भी अपना शिष्य नहीं बनाते। अतः पहिले अपने माता पिता की आज्ञा प्राप्त करो।

नौबत—बिना आज्ञा शिष्य बनाने में क्या बाधा है ?

पूज्य श्री—यह भी एक चोरी है। साधु को प्रत्येक प्रकार की चोरी का यावज्जीवन त्याग होता है।

नौबत—यदि आज्ञा न मिले तो ?

पूज्य श्री—तो का क्या प्रश्न ? लगन होने पर सब कुछ मिल सकता है। यह ध्यान रहे कि अन्दर की ज्वाला बुझने न पावे।

नौबतराय के पिता पं० शिवजीराम इन दिनों राता गांव छोड़ कर फगवाड़ा आगए थे। एक बार वह नौबतराय को दिल्ली से समझा बुझा कर फगवाड़ा ले आए। इस बार नौबतराय ने अपने विचार उनके सामने अत्यन्त दृढ़तापूर्वक रख दिये।

अब समझाने बुझाने से हार कर उसके साथ अत्यधिक कठोर व्योहार किया गया। मारना, पीटना, भूखे रखना आदि अनेक प्रकार के अत्याचार उनके साथ किये गए। जब वह इस प्रकार भी न मानते तो उनको कोठे में बन्द करके बाहिर से ताला जड़ दिया जाता था। इस प्रकार उनके ऊपर मर्यादा से अधिक अत्याचार किये गए। किन्तु वह अपने निश्चय से तिल मात्र भी न डिगे।

अन्त में वह एक बार अवसर पाकर वहां से फिर अकेले ही निकल भागे। वह मार्ग की आपत्तियों को सहन करते हुए दिल्ली में लाला पन्नालाल की दूकान पर ही आ गये। लाला पन्नालाल ने उनके सारे वृतान्त को सुन कर उनसे कहा।

"अब तुमको रोकना व्यर्थ है। तुम्हारी ज्योति वह ज्योति नहीं, जिसे कोई बुझा सके। अच्छा, अब तुम जिस पथ पर आगये हो उस पर आगे बढ़ो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम एक महान् संयमी तपस्वी मुनि बनो और जैन धर्म के अन्तरिक्ष में सूर्य के समान चमको।"

अन्त में नौबतराय जी लाला पन्नालाल से पूज्य श्री सोहन-लाल जी महाराज का पता लेकर कांधला जा पहुंचे। यह समय पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के संवत् १९४१ के चातुर्मास का था। जिसका पहिले वर्णन किया जा चुका है। अतएव वहां तपस्या तथा धर्म ध्यान की धूम मची हुई थी।

नौबतराय ने पूज्य श्री के चरणों में पड़ कर उनसे दीक्षा देने के लिये निवेदन किया। उन्होंने फिर वही प्रश्न किया

पूज्य श्री—माता पिता की आज्ञा ले आये हो?

नौबतराय—आज्ञा तो नहीं मिली।

पूज्य श्री—फिर दीक्षा किस प्रकार हो सकती है।

नौबतराय—आज्ञा मिले या न मिले। मैं तो अब वापिस लौट कर घर नहीं जाऊंगा। कृपा कर अब आप मुझे दीक्षा दे दें। मन आकुल हो गया है अब मैं अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता।

पूज्य श्री—यह तो नहीं हो सकता। हम शास्त्र के विधान का उल्लघन नहीं कर सकते। कुछ भी हो, प्रथम आज्ञा प्राप्त करो, फिर दीक्षा की बात होगी।

लाचार होकर नौबतराय ने कांधले से ही अपने पिता को पत्र लिखा।

पंडित शिवजीराम पत्र पाते ही कांधला आए। लोगों ने शिवजीराम को बहुत समझाया, किन्तु वह अनुमति देने को तैयार न हुए। अन्त में कांधले के जैनियों ने एक युक्ति से काम लिया। उन्होंने नौबतराय के पिता से कहा

"आप ब्राह्मण हैं और किसी भी अब्राह्मण के हाथ का खाना नहीं खाते। छुआ छूत का विचार आपमें अत्यन्त उग्र है। किन्तु आपका पुत्र न जाने कहां कहां घूमा है? किस किस के हाथ का उसने खाया है? क्या आप ऐसे पुत्र के साथ अपना भोजन पान का सम्बन्ध रक्खेंगे? यदि आप उसके साथ भोजन पान का सम्बन्ध रक्खेंग तो आपकी ब्राह्मण जाति में उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? आप जरा विचार से काम लें।"

इस बात को सुन कर पंडित शिवजीराम विचार में पड़ गए। उन दिनों छुआ छूत का भूत आज कल की अपेक्षा अधिक भयंकर रूप में उच्च जाति कहलाने वालो को दबाए हुए था। अन्त में उन्होंने नौबतराय को दीक्षा लेने की अनुमति देकर उन्हें अग्नि परीक्षा में सफल होने का आशीर्वाद दिया।

अब क्या था। कांधला से जैन संघ में हर्ष की लहर दौड़ गई। उन्होंने अत्यन्त धूम धाम से दीक्षा महोत्सव करने की योजना बनाई। यद्यपि नौबतराय तथा पूज्य श्री दोनों ही इस धूम धाम के विरुद्ध थे, किन्तु श्रावकों ने नहीं माना। और नौबतराय जी को भादों सुदी एकादशी संवत् १६४१ को श्रद्धेय मुनि गैंडेराय जी के द्वारा दीक्षा दिलाई गई। अब नौबतराय जी का नाम मुनि उदयचन्द रखा गया।

किन्तु मुनि उदयचन्द जी को दीक्षा लेते ही परीक्षा की अग्नि में तपना पड़ा। आप पर मलेरिया का भयंकर आक्रमण हुआ। जिसमें आपको पन्द्रह बीस दिन तक अत्यधिक कष्ट सहन करना पड़ा। किन्तु आपने उस कष्ट को अत्यन्त धैर्यपूर्वक सहन किया। आपकी सहनशीलता को देख कर पूज्य सोहनलाल जी ने कहा

'उदय अपने समय में एक महान् तेजस्वी मुनि बनेगा।'

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने अपने मुनि मंडल सहित कांधला के चातुर्मास के बाद मेरठ और मुजफ्फरनगर जिलों के देहाती क्षेत्रों में भ्रमण किया। ग्रामीण जनता ने पूर्ण भक्ति भावना से आपके मुनि संघ का स्वागत किया। आप जहां भी पहुंचते श्री संघ में हर्ष का समुद्र हिलोरें लेने लगता। आपके व्याख्यान में इतनी अधिक भीड़ होती थी कि आप प्रायः सार्वजनिक रूप से खुले चौक में भाषण दिया करते थे। नव दीक्षित मुनि उदयचन्द ने भी गांवों के धर्म प्रचार में भाग लिया।

आपका मुनि संघ विहार करता हुआ मेरठ जिले के बड़ौत नगर पहुँचा। यहां तपस्वी मुनि श्री लीलाधर जी महाराज, मुनि श्री हरनामदास जी (सुप्रसिद्ध महामुनि श्री दयाराम जी महाराज के गुरुदेव) महाराज और मुनि श्री शिवदयाल जी महाराज आदि संत विराजमान थे। सुप्रसिद्ध पण्डिता आर्या श्री पार्वती जी महाराज भी उन दिनों बड़ौत में ही थीं। वह बाल मुनि उदयचंद जी की विलक्षण ज्ञानचेतना को देख कर बहुत प्रसन्न हुई। वहां से चल कर पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज अपने मुनि मण्डल सहित ग्रामानुग्राम धर्म प्रचार

करते हुए दिल्ली पधारे। वहाँ से आपने पंजाब की ओर प्रस्थान किया। अब आप जींद, कैथल' समाना, पटियाला तथा नाभा आदि क्षेत्रों में धर्म प्रचार करते हुए मालेरकोटला पहुंचे। मालेरकोटला वाले आपसे बहुत समय से चातुर्मास की विनती कर रहे थे। अतएव संवत् १९४२ का चातुर्मास आपने मालेरकोटला में किया।

मालेरकोटला के चातुर्मास में आपका प्रभाव वहां के राज्य कर्मचारियों पर बहुत अच्छा पड़ा। आपके उपदेश के प्रभाव से मालेरकोटला राज्य भर में हिरण आदि का शिकार खेलना बन्द कर दिया गया।

मालेरकोटला का क्षेत्र पंजाब प्रांत में जैनपुरी के नाम से विख्यात था। उस समय वहां एक सहस्र से अधिक जैनियों के घर थे।

मालेरकोटला के चातुर्मास के बाद आप वहां से विहार करके रामपुरा होते हुए पूज्य महाराज आचार्य मोतीराम जी के दर्शन करने लुधियाना पधारे। इस अवसर पर आपने उनको अपनी ब्यावर तक की उस यात्रा का वृत्तांत सुनाया, जो आपको आत्माराम संवेगी का पीछा करते हुए करनी पड़ी थी। यात्रा का सब वृत्तांत सुन कर पूज्य मोतीराम जी महाराज बहुत प्रसन्न हुए।

लुधियाने से विहार करके आपने फगवाड़ा, होशियारपुर, जालंधर छावनी, जालंधर नगर, कपूरथला तथा जंडियाला में धर्म प्रचार करते हुए अमृतसर में पदार्पण किया। अमृतसर की जनता आपके उपदेश से बहुत प्रसन्न हुई। वहां से विहार

करके आप पट्टी, कसूर, लाहौर तथा गुजरानवाला में धर्म प्रचार करते हुए स्यालकोट पधारे।

स्यालकोट वाले आपसे बहुत समय से चातुर्मास की प्रार्थना कर रहे थे। अतएव आपने संवत् १६४३ का अपना चातुर्मास स्यालकोट में ही किया। चातुर्मास के अवसर पर यहां बहुत अच्छा धर्म प्रचार रहा। यहां अमृतसर के श्री नत्थूराम जी जैन ओसवाल ने आपसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। आपने उसकी पात्रता को देखते हुए उसे श्री गैंडेराय जी का शिष्य बनाया।

स्यालकोट का चातुर्मास समाप्त करके आप जम्मू की ओर पधारे। जम्मू वाले आपसे पधारने का आग्रह बहुत समय से कर रहे थे। आपने उनकी विनती स्वीकार कर उनको भी अपने धर्मोपदेश का लाभ दिया। आपके व्याख्यान का यहां भारी प्रभाव पड़ा। काश्मीर के महाराज प्रतापसिंह, उनके राज्य कर्मचारियों तथा अनेक जैन अजैन लोगों ने आपके उपदेश का लाभ उठाया। जम्मू से विहार करके आप फिर स्यालकोट की ओर चले। वहां से पसरूर, नारोवाल, कलानौर, अजनाला, मजीठ, अमृतसर, जंडियाला गुरू, सुलतानपुर, कपूरथला, जालंधर, होशियारपुर, जैजों, बंगा, नवाशहर, राहों, बलाचौर, रोपड़, नालागढ़, पुनः रोपड़, कुराली, खरड़ तथा बनूड़ में धर्म प्रचार करते हुए आप अम्बाला पधारे। यहां आपको मालेर-कोटला के संघ का चातुर्मास का निमंत्रण मिला। आप इस निमंत्रण को स्वीकार करके राजपुरा पटियाला तथा समाना में धर्म प्रचार करते हुए मालेरकोटला पधारे।

अस्तु आपका संवत् १६४४ का चातुर्मास मालेरकोटला में हुआ। इस चातुर्मास के बाद आपने यहां से विहार करके

लुधियाने जा कर पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज के दर्शन किये। रावलपिण्डी का श्री संघ आपसे चातुर्मास करने का आग्रह बहुत समय से कर रहा था। अतएव आप लुधियाने से विहार करके गुजरवाल, जगरांवा, बरनाला, भटिंडा, फरीदकोट, फिरोजपुर, कसूर, लाहौर, गुजरांवाला, वजीराबाद, कुंजां (जिला गुजरात), लालामूसा, जेहलम, रौतासपुर, कल्लर इत्यादि क्षेत्रों में धर्म प्रचार करते हुए रावलपिण्डी की ओर चले।

रावलपिण्डी का मार्ग लम्बा था, मार्ग की कठिनाइयां भी कुछ कम नहीं थीं। किन्तु धर्म प्रचार का अदम्य उत्साह मन में लिये मुनि मण्डल अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता ही गया। कितने ही स्थानों पर आहार पानी का अभाव रहा। ठहरने का स्थान भी ठीक ठीक नहीं मिला और मार्ग में पर्याप्त संकट का सामना करना पड़ा। किन्तु धर्म प्रचार के पंथ पर चलने वाले महापुरुषों को इस दुःख में भी सुख का ही अनुभव होता था। मुनि श्री उदयचन्द जी भी इस पूरे समय भर अपने गुरु श्री गैंडेराय जी सहित पूज्य श्री की सेवा में रहे और विद्याध्ययन करते रहे।

आप लोग रावलपिण्डी पहुँचे तो जनता में हर्ष का बारापार न रहा। मुनिराज उनके लिये साक्षात् भगवान् थे। जैन तथा अजैन सभी जनता उनके दर्शनों के लिये उमड़ पड़ी। रावलपिण्डी चातुर्मास के संवत् १९५५ के चार मास बड़े आनन्द पूर्वक धर्म प्रचार में व्यतीत हुए। रावलपिण्डी का धर्मध्यान तथा तपश्चरण उन दिनों ख्याति प्राप्त कर रहा था।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज शास्त्रों के अगाध पंडित थे। उन्होंने अपने चिन्तन तथा मनन के द्वारा शास्त्रों का गंभीर

ज्ञान प्राप्त किया था। इस समय आप मुनि उदयचन्द जी को जैन सूत्रों का अध्ययन कराया करते थे।

रावलपिण्डी के चातुर्मास के बाद मुनि संघ ने स्यालकोट की ओर विहार किया। रावलपिण्डी के अनेक भाई भी उनके साथ ही चले। मुनि संघ जब किला रोहतास पहुंचा तो वहां जेहलम निवासी श्री बिहारीलाल जी मिले। आप बहुत समय से वैराग्य भावना में बह रहे थे। आप अमृतसर के ओसवाल थे, किन्तु कारोबार जेहलम में करने के कारण जेहलम निवासी ही बन गये थे। आपकी दीक्षा लेने की लगन पुरानी थी। किन्तु घर वालों की अनुमति न मिलने से सकल मनोरथ न हो सके थे। इस बार उन्होंने घर वालों की अनुमति का समाचार सुना कर दीक्षा देने की प्रार्थना की। रावलपिण्डी वाले भाइयों को पता लगा तो उन्होंने वापिस रावलपिण्डी जा कर दीक्षा कराने का आग्रह किया। पूज्य श्री वापिस लौटना नहीं चाहते थे। किन्तु रावलपिण्डी वालों के अत्यधिक आग्रह के कारण आपको अपना विचार बदलना पड़ा। अस्तु आप वापिस रावलपिण्डी गए और वहां बिहारीलाल जी को दीक्षा अत्यन्त समारोह पूर्वक दी गई।

मुनि संघ कुछ दिनों रावलपिण्डी में रह कर फिर विहार के लम्बे मार्ग पर अग्रसर हुआ। पूज्य सोहनलाल जी ने ग्रामानुग्राम धर्म प्रचार करते हुए, मुसलमानों आदि से मांसाहार छुड़ाते हुए, हिंसक अनार्य देश में भी अहिंसा भाव की गंगा बहाते हुए, कल्लर, रौतास, गुजरात तथा कुञ्जाह में धर्म प्रचार करते हुए वजीराबाद पधारे। यहां आपको लाहौर के श्री संघ का चातुर्मास करने का निमंत्रण मिला। आपने उनका अत्यधिक आग्रह देखकर उनके निमंत्रण को स्वीकार कर लिया।

अब आप वजीराबाद से विहार करके डमका, पसरूर, स्याल-कोट, जायके, उसके, गुजरांवाला तथा सेखेकाल में धर्म प्रचार करते हुए लाहौर पधारे।

इस प्रकार आपका १६४६ का चातुर्मास लाहौर में हुआ।

पञ्जाब प्रांत में लाहौर प्रारम्भ से ही जैन समाज का प्रमुख केन्द्र था। जैन मुनि शान्तिचंद जी ने सम्राट अकबर से बकरीद के अवसर पर लाहौर में ही हिंसा कांड बन्द करवाया था। उपाध्याय समय सुन्दर जी ने भी लाहौर में ही रह कर 'राजानो ददते सौख्यं' इस आठ अक्षर के छोटे से वाक्य के आठ लाख अर्थ किये थे।

पूज्य श्री सोहनलाल जी के लाहौर के चातुर्मास में धर्म ध्यान का खूब ठाठ रहा। इस चातुर्मास में आप लक्ष्मणदास नामक एक बैरागी को ज्ञानाभ्यास करा रहे थे। चातुर्मास की समाप्ति पर लाला दुनीचंद ने पूज्य श्री सोहनलाल जी से प्रार्थना की

"बैरागी लक्ष्मणदास को दीक्षा मेरे घर से दी जावे।"

पूज्य श्री के इस प्रार्थना को स्वीकार कर लेने पर दीक्षा महोत्सव की तयारी की जाने लगी। इधर जैनी लोग दीक्षा महोत्सव की तयारी कर रहे थे, उधर धर्मद्रोही विद्रोहियों ने उसमें विघ्न डालना आरम्भ किया। किन्तु लाला दुनीचंद हताश होने वाले व्यक्ति नहीं थे। आपने डिप्टी कमिश्नर से मिल कर विरोधियों का कुचक्र असफल कर दिया और दीक्षा के जलूस की स्वीकृति ले ली। फल स्वरूप दीक्षा महोत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया गया। उसमें बाहिर की जनता भी बड़ी संख्या में आई थी। दीक्षा का जलूस भजन मंडलियों के साथ

नगर के मुख्य मुख्य बाजारों और चौराहों से होकर निकला और कहीं भी किसी प्रकार का विघ्न नहीं हुआ।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज लाहौर के चातुर्मास के बाद वहां से विहार करके अमृतसर, जंडियाला, कपूरथला, जालन्धर, होशियारपुर, फगवाड़ा, बंगा, जैजों, नवाशहर. राहों, बलाचोर, रोपड़, तथा नालागढ़, में धर्म प्रचार करते हुए दुबारा फिर रोपड़ आए। फिर आप वहां से चल कर माछीवाड़ा, समराला तथा खन्ना की जनता को धर्म संदेश देते हुए लुधियाना पधारे। यहां आकर आपने पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज के दर्शन किये।

लुधियाना में आपको समाचार मिला कि आत्माराम जी संवेगी ने विजयानन्द सूरि नाम से पंजाब के मूर्ति पूजक जैनियों में फिर अपना संगठन अच्छा कर लिया है। उसका संवत् १६४७ का चतुर्मास मालेरकोटला में होने का निश्चय हो गया था। वास्तव में जब तक पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज जीवित रहे आत्माराम जी की कुछ भी नहीं चलने पाई। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात उन्होंने अपने संगठन को दृढ़ बना लिया।

मालेरकोटला के स्थानकवासी भाइयों को जब अपने यहां आत्माराम जी को चातुर्मास का समाचार मिला तो वह बहुत घबराए। अब वह सामुहिक रूप में पूज्य आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज तथा मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज की सेवा में लुधियाना जाकर उपस्थित हुए। उन्होंने उनसे विनती की कि वह अपना १६४७ का चतुर्मास मालेरकोटला में ही करें। आपने परिस्थिति पर विचार करके उनकी विनती को स्वीकार कर लिया।

अब आप लुधियाना से विहार करके गूजरवाल, रायकोट, बरनाला, सनाम, तथा संगरूर, में धर्मप्रचार करते हुए मालेरकोटला की ओर चले।

इस बीच में आप रामपुर के भाइयों की विनती पूर्ण करने के लिये रामपुर भी पधारे यहां रत्नचन्द नामक एक बैरागी दीक्षा लेना चाहता था, यह महाशय जिला लाहौर के भगियारण नगर के जैन ओसवाल थे, पूज्य सोहनलाल जी महाराज ने उनको मुनि उदयचन्द जी से दीक्षा दिला कर उन्हें आर्थिक चर्चावादी की पदवी भी दी।

इस प्रकार दीक्षा देकर आप मालेरकोटला पधारे। आत्माराम जी की उपस्थिति के कारण मालेरकोटला के इस चातुर्मास को तीव्र संघर्ष का समझा जा रहा था। मुनि सोहनलाल जी के साथ इस चातुर्मास में मुनि विलासराय जी महाराज स्वयं आचार्य महाराज पूज्य मोतीराम जी महाराज, मुनि उदयचन्द जी महाराज तथा नवदीक्षित मुनि श्री लक्ष्मणदास जी थे। आपका चातुर्मास खूब धूमधाम से हुआ। स्थानकवादी तथा संवेगी दोनों ही पक्ष अपने २ सिद्धान्तों का का प्रचार खूब कर रहे थे, अनेक बार शास्त्रार्थ का प्रसंग भी उपस्थित हुआ। किन्तु श्री विजयानचन्द जी के शास्त्रार्थ के लिये तयार न होने से प्रत्यक्ष संघर्स न हो सका। किन्तु प्रत्यक्ष संघष न होने पर भी परोक्ष संघर्ष दैनिक हुआ करता था। श्रावकों के द्वारा शास्त्रचर्चाएं चलती रहती थीं। एक से एक बढ़कर युक्तियों के जाल बिछाए जाते तथा छिन्न भिन्न किये जाया करते थे, मुनि श्री सोहनलाल जी के साथ साथ मुनि उदयचन्द जी भी इस शास्त्रचर्चा में भाग लिया करते थे। मुनि उदयचन्द के सर्वथा नवीन युक्तिवाद एवं शास्त्रज्ञान को देख

कर पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज तथा मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज अत्यन्त प्रसन्न होते थे। इस शास्त्रचर्चा आदि का बहुत कुछ उत्तरदायित्व मुनि उदयचंद जी ने ही ले रक्खा था। यहां गणेशीलाल नामक एक संवेगी ने संवेगियत को छोड़ कर पूज्य महाराज मोतीराम जी की शरण ली। मालेरकोटला चातुर्मास के समय आपने एक मुसलमान को भी सम्यक्त्व धारण कराया, जिसका वर्णन आगे किया जावेगा।

मालेरकोटला का चातुर्मास समाप्त होने पर श्री विजयानन्द सूरि (आत्माराम) जी ने लुधियाना और जालन्धर होते हुए होशियारपुर ज़िले के अन्तर्गत मियानी, टांडा, उरमड़, श्रेयापुर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। यह सभी क्षेत्र स्थानकवासी थे, जिन्हें आत्माराम जी अपने प्रभाव में लाना चाहते थे। उनके साथ पच्चीस संवेगी साधुओं का पूरा दल था।

आत्माराम जी के इस विहार के सम्बन्ध में स्थानकवासी मुनि संघ में भी विचार विमर्श किया गया। मुनि उदयचंद जी महाराज ने मुनि सोहनलाल जी से प्रार्थना की

"मुझे उनका मुकाबला करने के लिये उधर जाने की अनुमति दी जावे। आपने बहुत कुछ कार्य किया है। अबकी बार यह सेवा मुझे दी जावे।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज मालेरकोटला के चातुर्मास आपकी तर्क बुद्धि का चमत्कार देख चुके थे। अतएव मुनि उदयचंद जी को प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी गई। मुनि उदयचंद अपने एकमात्र शिष्य लक्ष्मणदास को लेकर सहर्ष अपनी विजय यात्रा के पथ पर चल पड़े। आत्माराम जी जहां भी जाते मुनि

उदयचंद वहीं पहुँच जाते और सच्चे जैन धर्म का जय घोष जनता के हृदय में गुंजा देते। आपके उपदेश के कारण खुशालचंद नामक एक संवेगी संवेगयत को त्याग कर गणावच्छेदक श्री गणपतिराय जी के पास रायकोट पहुँचा। अन्य भी अनेक व्यक्तियों ने इस समय संवेगी मत को छोड़ा।

३४

युवराज पद

नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा

उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २८ गाथा ३०

ज्ञान के बिना जीवन में चारित्र के गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती।

पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज इस समय पर्याप्त वृद्ध हो चुके थे और वह यह सोच रहे थे कि संघ की व्यवस्था के कार्य को किस प्रकार चलाया जावे। कुछ वृद्ध मुनियों का यह भी कहना था कि अपने कार्य में सहायता मुनि सोहनलाल जी से लें और उसके लिये उनको युवराज पद दे दें। यह सारे विचार संघ में चल रहे थे, किन्तु उनको अन्तिम रूप देने में अनेक कठिनाइयां थीं।

मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज अपने संवत् १६४७ के मालेरकोटला के चातुर्मास के बाद वहां से विहार करके नाभा, पटियाला, राजपुरा, अम्बाला, उगाला, मलाणा तथा संडोरा में धर्म प्रचार करते हुए वहां से लौट कर डेराबसी की ओर चले। फिर आपने खरड़, कुराली, रोपड़ और नालागढ़ में प्रचार करके रोपड़ दुबारा आए वहां से आप बलाचौर, जैजों होशियारपुर, जालंधर तथा जेड़ियाला की जनता को धर्म संदेश देते हुए अमृतसर पधारे।

अमृतसर वाले आपसे चातुर्मास के लिये बहुत समय से विनती कर रहे थे। अतएव आपने अपना संवत् १९४८ का चातुर्मास अमृतसर में ही किया। इस समय संवेगी आत्माराम जी भी अमृतसर में ही थे। किन्तु पूज्य श्री के बार-बार शास्त्रार्थ का संदेश भेजने पर भी आत्माराम जी को आपका सामना करने का साहस नहीं हुआ। तो भी इस समय दोनों ओर से कई एक विज्ञापन निकले। जब जब मुनि श्री सोहनलाल जी चर्चा के लिये तयार हुए तो आत्माराम जी अमृतसर से चल पड़े।

मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज अमृतसर से विहार करके जंडियाला, जालंधर, फगवाड़ा और बंगा में धर्म प्रचार करते हुए जैजों (पथरांवाली) पधारे। यहां आपने संवेगियों को फिर पराजित किया।

आप जैजों से विहार करके होशियारपुर आए तो वहां भी आपसे प्रश्नोत्तर हुए किन्तु आत्माराम जी सूत्रों से मूर्ति पूजन सिद्ध नहीं कर सके। इस समय होशियारपुर में लाला बूटेराम जी, लाला चौकसमल तथा कृपाराम जी चौधरी प्रसिद्ध संवेगी थे। जब उन्होंने देखा कि श्री आत्माराम जी प्रतिमा पूजन को सूत्रों द्वारा सिद्ध नहीं कर सके तो उन्होंने इस विषय का मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज के साथ अच्छी तरह निर्णय करके उनसे ही सम्यक्त्व धारण किया। अब उन्होंने तपागच्छ को सूत्रों के विरुद्ध जान कर त्याग दिया।

होशियारपुर में ही आपने माघ कृष्ण पञ्चमी को अमृतसर निवासी ओसवाल जैन श्री विनयचन्द जी तत्तड़ वैरागी को दीक्षा दी। उसके साथ आपने कर्मचन्द जी राड़वंशी तथा विनयचन्द जी की माता लक्ष्मीदेवी को भी दीक्षा दी। आप

होशियारपुर से विहार करके टांडा मकेड़िया में धर्म प्रचार करके फिर वापिस होशियारपुर आए।

होशियारपुर का श्री संघ आपसे बहुत समय से अपने यहां चातुर्मास करने की विनती कर रहा था। अतः आपने इस बार उनकी विनती को स्वीकार कर सं० १९४९ का अपना चातुर्मास होशियारपुर में किया।

इस चातुर्मास के बाद आप होशियारपुर से विहार कर जैजों, वलाचौर, रोपड़, अम्बाला, स्याहवाद, करनाल, थानेसर, मोणक; सनाम, बरनाला तथा रायकोट में धर्म प्रचार करते हुए गूजरवाल पधारे। यहां आपको मालेरकोटला के श्री संघ की ओर से चातुर्मास का निमंत्रण मिला, जिसको आपने स्वीकार कर लिया।

अस्तु आपने संवत १९५० का अपना चातुर्मास मालेर-कोटला में किया।

मालेरकोटला के चातुर्मास के बाद आप वहां से विहार करके रायकोट, जगरावां, भटिंडा, रामामंडी, सिरसा, हिसार तथा खेड़ी में धर्म प्रचार करते हुए हांसी पधारे। यहां के श्री संघ ने आपसे अत्यधिक आग्रह पूर्वक वहां चातुर्मास करने का निमंत्रण दिया। आप उस निमंत्रण को स्वीकार कर वहां से विहार कर गए और तुस्साम, विहाणी, भिडलाडा तथा रतिया में धर्म प्रचार करते हुए हांसी पधारे।

तेरा पंथियों से शास्त्रार्थ

इस प्रकार आपने अपना संवत् १९५१ का चातुर्मास हांसी में किया। उन दिनों वहां जैन श्वेताम्बर तेरा पंथी साधुओं का भी चातुर्मास था, जिनमें मुनि माणिकचन्द जी प्रमुख थे।

इन दोनों का हांसी में एक साथ चातुर्मास होने से दोनों ओर से अपना अपना प्रचार किया जाने लगा। मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज के साथ मुनि श्री लालचंद जी महाराज भी थे।

इस समय स्थानकवासी गृहस्थों में उत्तर प्रदेश कांधला निवासी लाला घमंडीलाल जी हांसी आए हुए थे। तेरापंथी गृहस्थों में बीकानेर राज्य के नगर सरदार शहर के सेठिया लोग आए थे। दोनों पक्ष की ओर से पर्याप्त विज्ञापन निकलने के बाद आपस में यह चर्चा चली कि दोनों सम्प्रदाय के साधु आपस में शास्त्रार्थ करें। शास्त्रार्थ के नियम तय होने के उपरांत कांधला तथा सरदार शहर के दोनों गृहस्थों ने शान्ति-रक्षा का उत्तरदायित्व दोनों ओर से अपने अपने ऊपर ले लिया।

अस्तु एक भव्य पंडाल में मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज तथा तेरापंथी साधु माणिकचन्द जी में निम्न प्रश्नोत्तर के रूप में चर्चा वार्ता हुई।

मुनि सोहनलाल जी—आपके अनुकरण विषयक सिद्धान्त शास्त्रानुसार नहीं है।

मुनि माणिकचन्द—वह किस प्रकार ?

मुनि सोहनलाल—आपका कहना है कि

१—बाड़े में लगी हुई आग से जलने वाली गउओं को बचाने वाला एकान्त पापी है।

२—ऊंचे मकान से गिरते हुए बालक को बचाना एकान्त पाप है।

३—यदि कोई अनार्य पुरुष किसी तपस्वी साधु को फांसी लगा कर मारना चाहता है उसके बचाने वाला एकान्त पापी है।

४–मार्ग में पड़े हुए बालक को—भले ही वह गाड़ी अथवा मोटर के नीचे दब कर मरने वाला हो—बचाने वाला एकान्त पापी है।

५–यदि कसाई किसी गाय या बकरी को काट रहा हो तो उसको बचाने वाला एकान्त पापी है।

६–यदि किसी के पैर के नीचे कोई जीव असावधानी से आगया तो बता कर सावधान करने वाला एकान्त पापी है।

७–तेरा पंथी साधु के अतिरिक्त किसी अन्य साधु कुपात्र को आहार पाणी देना एकान्त पाप है।

८–तेरा पंथी साधु के अतिरिक्त किसी अन्य को दान देना, मांस खाना, मदिरा पीना तथा वेश्या गमन करना इन सब में समान पाप है।

९–पुत्र अपने माता-पिता की तथा स्त्री अपने पति की सेवा करे तो इसमें एकान्त पाप है।

१०–यदि किसी के घर में आग लग जावे तो उसमें से जलते हुए स्त्री बच्चों आदि को बचाना एकान्त पाप है।

मुनि माणिकचन्द—आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि तेरा पंथी इन बातों को मानते हैं।

मुनि सोहनलाल—इस विषय में आपके प्रथम आचार्य भीखम जी ने निम्न लिखित अनुकरण ढाल लिखी है।

"कोई लाय सूं बलताने काढ़ बचायो
बले कूए पड़ताने बचायो
बले तालाब में डूबता ने बाहर काढे

वले ऊंचा थां पड़ता ने भाल लियो तायो
ओ उपकार संसार तणों छे
संसार तणो उपकार करे छे
तिण के निश्चय ही संसार बधे ते जाण।"

ढाल ११ पृष्ठ ५२

"गृहस्थरे लागी लायो घर बारे निकलिया न जाओ।
वलता जीव विल विल बोले, साधु जाय किवाड़ न खोले॥"

ढाल २ पृष्ठ ५

"गृहस्थ भूलो उजाड़ बन में, अखी ने बल उजड़ जावे।
तिण ने मार्ग बतायने घर पहुंचावे, बल थको हुवो तो कांधे
बैठाये, ओ उपकार संसार तणो छे॥"

ढाल ११ पृष्ठ ५३

"साधु थी अनेरो कुपात्र छे।"

भ्रम विध्वंसन पृष्ठ ७६

मुनि माणिकचन्द—वाह, यह बात आपने खूब कही। स्थानकवासी तथा तेरहपंथी उन्हीं बत्तीस सूत्रों को मानते हैं। हमारा इस विषय में जो कुछ भी सिद्धान्त है वह सब आगमों के अनुकूल है।

मुनि सोहनलाल—नहीं, आपका सिद्धान्त आगमों के अनुकूल नहीं है।

मुनि माणिकचन्द—इसका कोई प्रमाण आप दे सकते हैं?

मुनि सोहनलाल—प्रमाण एक नहीं, अनेक दिये जावेंगे। आप ठाणांग सूत्र के चतुर्थ ठाणे को खोल कर देखिये। उसमें आपको निम्नलिखित वाक्य मिलेगा—

एगे आयाणुकंपाए नो पराणुकंपाए,
एगे पराणुकंपाए नो आयाणुकंपाए।
एगे आयाणुकंपाए वि पराणुकंपाए वि,
एगे नो आयाणुकंपाए नो पराणुकंपाए॥

ठाणांग सूत्र, चतुर्थ ठाण

भगवान् महावीर स्वामी ने इस वाक्य में चार प्रकार के मनुष्य बतलाए हैं। एक मनुष्य ऐसे होते हैं जो अपनी अनुकंपा तो करते हैं, किन्तु दूसरों की अनुकंपा नहीं करते। इनमें प्रत्येक बुद्ध, जिनकल्पी साधुओं तथा निर्दयी व्यक्तियों को गिना जाता है।

एक ऐसे होते हैं जो अपनी अनुकंपा तो नहीं करते, किन्तु दूसरे की अनुकंपा अवश्य करते हैं। इसमें भगवान् तीर्थंकर तथा मेतारज जैसे महान् परमार्थी मुनियों को गिना जाता है।

एक ऐसे होते हैं जो अपनी तथा दोनों की ही अनुकंपा करते हैं। इसमें स्थाविर कल्पी मुनियों को गिना जाता है।

एक ऐसे होते हैं जो अपणी या पराई किसी की भी अनुकंपा नहीं करते। इसमें अभव्य प्राणियों का समावेश किया जाता है।

इस चौभंगी से यही सिद्ध होता है कि जिस आत्मा में अनुकम्पा नहीं है, वह कभी भी आत्म कल्याण नहीं कर सकता।

मुनि माणिकचन्द—तो इस वाक्य के अनुसार हमको प्रथम कोटि के प्रत्येक बुद्धों तथा जिन कल्पी साधुओं में गिना जा सकता है।

मुनि सोहनलाल—उनमें क्यों आपको तो निर्दयी व्यक्तियों में गिना जाना चाहिये। क्योंकि न तो आप लोग जिन कल्पी हैं और न प्रत्येक बुद्ध हैं।

मुनि सोहनलाल जी के यह शब्द कहते ही उपस्थित जनता एक दम ताली पीट कर हंस पड़ी। इस पर सरदार शहर के सेठिया तथा पंथी श्रावक ऊधम करने लगे, किन्तु लाला घमन्डीलाल ने साहस से काम लेकर शान्ति स्थापित कर दी। तब मुनि माणिकचन्द वहां से लज्जित हो कर उठ गये और मुनि सोहनलाल वहां से विजय प्राप्त कर अपने स्थान पर आए।

मुनि श्री सोहनलाल जी ने हांसी के चातुर्मास के बाद वहां से विहार करके बिहाणी, रोहतक, कान्हौं, जिंद, कसूण, बड़ौदा, भिठमडा, दुहाणा, मोणक, सनाम, संगरूर, धूरी तथा मालेरकोटला में धर्म प्रचार करते हुए लुधियाने जा कर पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज की सेवा में संवत् १६५१ के अन्त में उपस्थित हुए। उन्हीं दिनों आपने कलानौर जिला गुरदास पुर निवासी श्री जमीतराय बैरागी को दीक्षा देकर उन्हें मुनि श्री गैंडेराय जी का शिष्य बनाया।

यह पीछे लिखा जा चुका है कि पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज बहुत समय से अपने कार्य को हल्का करने के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे। उनकी दृष्टि में सारे संघ में मुनि सोहनलाल जी विद्वत्ता, भाषण शैली, तपश्चर्या तथा संगठन शक्ति आदि गुणों में संघ की रक्षा करने योग्य थे। अतएव आपने यह निश्चय कर लिया था कि अबकी बार भेंट होने पर मुनि सोहनलाल जी को युवाचार्य पद दे दिया जावे।

युवाचार्य पद का महोत्सव

यह निश्चय हो जाने पर आपने मुनि श्री सोहनलाल जी सहित समस्त संघ के पास समाचार भेज दिया कि वह सब चैत्र कृष्ण त्रयोदशी को लुधियाना आकर युवराज पद के महोत्सव में सम्मिलित हों।

अतएव इस समाचार को पाकर अमृतसर से तथा देश के कोने-कोने से साधु, साध्वियां, श्रावक तथा श्राविकाएं लुधियाना आईं। चैत्र कृष्ण त्रयोदशी संवत् १९५२ विक्रमी को एक बड़ा भारी महोत्सव मनाया गया। इसमें चार तीर्थ के समक्ष मुनिश्री सोहनलाल जी को युवाचार्य पद की चादर दी गई। इस अवसर पर आर्या पार्वती जी को भी गणावच्छेदिका का पद दिया गया।

पंचांग के सम्बन्ध में विचार

युवाचार्य पदका यह महोत्सव बहुत बड़ा था। इसमें पंजाब भर के श्वेताम्बर साधु पर्याप्त संख्या में आए थे। इस सम्मेलन में मुनि श्री मयाराम जी ने जनता को सम्बोधित करते हुए निम्न प्रकार से व्याख्यान दिया।

"पूज्य आचार्य महाराज, युवाचार्य, गणावच्छेदिका जी, आचार्यों तथा मुनिगण, श्रावकाएं तथा श्रावक मेरे निवेदन को सुनें।"

"हमारे शासन के चार अंग हैं, जिनको चार अनुयोग कहा जाता है। वह यह हैं—

द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरितानुयोग तथा कथानुयोग।

दिगम्बर सम्प्रदायमें इनचारों अनुयोगों में से गणितानुयोग को करुणानुयोग तथा कथानुयोग को प्रथमानुयोग भी कहा जाता है, हमारे द्रव्यानुयोग, चरितानुयोग तथा कथानुयोग के साहित्य अत्याधिक विकसित होने पर भी गणितानुयोग का हमारा साहित्य बहुत कम है। वह इतना कम है कि वह न होने के बराबर है, जिससे साधु लोगों को व्रत पालन में कठिनाई होती है।

यथापि गणितानुयोग के मूल सिद्धांतों का वर्णन हमारे सूत्र ग्रन्थों में पर्याप्त किया गया है, किन्तु वह इतना कठिन है कि अनेक साधुओं की समझ में नहीं आता। फिर गृहस्थ तो उसको किस प्रकार समझ सकते हैं। इसी लिये उस पर व्यवहारिक दृष्टि से ध्यान नहीं दिया जाता और न उस के अनुसार शास्त्रीय ऐसे यह जैन तिथिपत्र ही बनाए जाते हैं। इसी कारण हमारे अनेक पर्वदिन आज भगवान की आज्ञानुसार नहीं निश्चित किये जाते, भगवान ने स्पष्ट सबसे इसको मिथ्यात्व कहा है। हम आज कल के पंचांगों को मिथ्यात्व मानते हुए भी उन्हीं का आलम्बन लेते हैं और उन्हीं के अनुसार अपने तिथिपत्र बनाते हैं और उन का नाम जैन तिथिपत्र रख देते हैं, फिर उसमें से उत्तराध्ययन सूत्र के नाम से अटकलपच्चो, त्रयोदशी तिथि को घटाते हैं। उसका शेष सब हिसाब मिथ्यात्व मत के आधार पर लगाया जाता है। इस प्रकार हम दोनों प्रणालियों को मिला कर 'आधा तीतर आधा बटेर' वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं।

आज सरकार के राज में सब को अपने अपने धर्म शास्त्रों के अनुसार आचरण करने की सुविधा प्राप्त है तो हम भी

अपने पर्वों का निश्चय अपने शास्त्रों के अनुसार करके भगवान की आज्ञानुसार आराधक क्यों न बनें।

इस विषय में यहां निवेदन करने से पूर्व पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज की आज्ञानुसार आर्या पार्वती जी की सहमति से मुनिमंडल इस विशय पर आपस में परामर्श करके यह निश्चय कर चुका है कि आगे के लिये मुनि श्रीचन्द जी द्वारा बनाए हुए तिथिपत्र के अनुसार तिथियां, पर्व के दिन तथा चातुर्मास आदि के दिनों का निश्चय किया जावे, अतएव भावी चातुर्मास जैन शास्त्रों के अनुसार ही होगा।

'आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि जैन शास्त्रों के अनुसार चातुर्मास चार मास का ही होता है, अधिक का नहीं होता' कारण कि वर्ष में जो मास बढ़ जाने के कारण दो दो बार आते हैं, वह आषाढ़ और पौष यह दो मास ही होते हैं, जो चातुर्मास में नहीं आते। इस लिये जैन साधुओं का चातुर्मास सदा ही चार मास का होता है।"

मुनि श्री मयाराम जी के इस कथन के बाद पंचांग के सम्बन्ध में सूक्ष्म दृष्टि से जब विचार किया गया तो उस में अनेक त्रुटियां दिखलाई दीं। मुनि श्री चन्द का बनाया हुआ तिथिपत्र भी त्रुटि रहित सिद्ध नहीं हो सका। अतएव इस विचार विमर्श के पश्चात् पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज बोले।

नवीन जैन पञ्चांग तयार करने का विषय युवाचार्य मुनि श्री सोहनलाल को सौंप दिया जावे। उन्होंने जैन ज्योतिष तथा लौकिक ज्योतिष दोनों का ही तुलनात्मक अध्ययन किया है। अस्तु उनको यह कार्य दिया जावे कि वह जैन शास्त्रों के

अनुसार इस विषय पर बिचार करके नया पञ्चांग बनावे। जब उनका बनाया हुआ पञ्चांग तयार हो जावे तो सभी पर्व तथा चातुर्मास के दिन उसी पञ्चांग के अनुसार मनाए जाया करें।"

आचार्य महाराज के इस कथन के उपरान्त सभी संघ ने सर्वसम्मति से नवीन जैन पञ्चांग बनाने का कार्य युवाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज के सुपुर्द कर दिया।

युवाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज भी इस कार्य को अपने सिर पर लेकर इस में पूर्ण शान्ती से लग गए, इन्होंने इस विषय की शास्त्रानुसार अत्याधिक छानबीन करके इस विषय में जैन शास्त्रों तथा अजैन ग्रन्थों दोनों का फिर अध्ययन किया। अन्त में इन्होंने बहुत ऊहापोह के बाद पहिले पांच वर्ष का और फिर उसे बढ़ा कर पैंतीस वर्ष का पञ्चांग बनाया। इन्होंने एक ऐसे नियम का आविष्कार किया कि उस नियम की सहायता से कुछ थोड़े परिवर्तन के साथ प्रत्येक पैंतीस पैंतीस वर्ष का पंचांग बन जाता था। इस प्रकार उन्होंने बीते हुए २५०० वर्षों के अतिरिक्त पञ्चम आरे के शेष साढ़े अठारह सहस्त्र वर्ष का पूरा पञ्चांग तैयार कर दिया, इस पञ्चाग में कुछ नियम साधारण थे, जिनके अनुसार पञ्चांग बनता था और कुछ नियम विशेष थे जिनका ध्यान प्रत्येक पैंतीस वर्ष का नया पञ्चांग बनाते समय ध्यान रखना पड़ता था।

३५

मुसलमान को सम्यक्त्व धारण कराना

कम्मणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

उत्तराध्ययन, अध्ययन २५, गाथा ३३।

मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और अपने किये हुए कर्मों से ही शूद्र होता है।

यह पीछे लिखा जा चुका है कि युवाचार्य श्री सोहनलाल जी ने अपना १६४७ का चातुर्मास मालेर कोटला में किया था। कारण कि आत्माराम जी संवेगी का चातुर्मास भी मालेर कोटला में ही किया जाना निश्चित हो गया था। किन्तु अत्यंत यत्न करने पर भी संवेगियों की ओर से शास्त्रार्थ के लिये सामने कोई भी नहीं आया।

आत्माराम जी के इस मालेर कोटला चातुर्मास के कारण जैन धर्म के सम्बन्ध में वहां एक उल्लेखनीय घटना हो गई।

इस्लाम ने अपने जन्मकाल से ही अपने को एक प्रचारक धर्म माना है। वह अपने धर्म का अनेक प्रकार से प्रचार कर

नए नए व्यक्तियों को मुसलमान बना कर अपनी गतिशीलता का परिचय देते रहते हैं, जबकि जैनी लोग नए व्यक्तियों को अपने धर्म में दीक्षित करने में उत्साह न रखते हुए इस बात का परिचय देते हैं कि जैन धर्म एक गतिहीन धर्म है। यह बात दिगम्बर जैनियों तथा संवेगियों पर पूर्णतया लागू होती है, किन्तु स्थानकवासियों पर आंशिक रूप में लागू होती है।

उन दिनों मालेर कोटला में बाहिर से आए हुए एक मौलवी अताउल्लाह अपने को इस्लाम का बड़ा भारी प्रचारक मानते थे। उन्होंने अपने धर्म वालों को यह दिखलाने के लिये कि जैन धम एक ईश्वर बिरोधी धर्म है—आत्माराम जी के पास जाकर कुछ वार्तालाप किया। मौलवी ने आत्माराम जी से जाकर प्रश्न किया

मौलवी—क्या आप खुदा को मानते हैं ?

आत्माराम जी—खुदा कोई नहीं है, वह केवल मूर्खों का भ्रम है।

मौलवी अताउल्लाह के साथ अन्य भी कई मुसलमान थे। आत्माराम जी के इस उत्तर को सुन कर वह लोग एक दम ताली बजा कर उठ खड़े हुए। बाहिर सड़क पर आने पर अताउल्लाह ने अपने साथियों से कहा

"देखा आपने ! मैं ने कैसी जल्दी उनके मुंह से कहलवा लिया कि खुदा कोई चीज नहीं है। भला बताओ तो उन जैनियों से बड़ा दूसरा कौन काफिर हो सकता है ? सुनते हैं यहां जैनियों के एक और लीडर मुनि सोहनलाल ने भी चौमासा किया है। चलो उनके रंग ढंग भी देखें। यक़ीनन खुदा की हस्ती से वह भी इंकार करेंगे।"

अताउल्लाह के यह कहने पर सब मुसलमानों ने उसका समर्थन किया और वह सब के सब उपाश्रय को चले।

उपाश्रय में आने पर मौलवी अताउल्ला ने युवाचार्य महाराज से भी वही प्रश्न किया—

अताउल्ला—क्या आप खुदा को मानते हैं ?

युवाचार्य जी—खुदा, गाड, सिद्ध, परमात्मा तथा ईश्वर यह सब एक दूसरे का अर्थ ही बतलाते हैं। वास्तव में उनमें कोई अन्तर नहीं है। जिसको मुसलमान खुदा कहते हैं उसी को सनातनी हिन्दू ईश्वर कहते हैं, ईसाई उसी को गाड कहते हैं और जैनी भी उसी को सिद्ध कहते हैं। किन्तु जैनी लोग इस बात को नहीं मानते कि 'उसकी मर्जी के बिना पत्ता तक नहीं हिलता।"

अताउल्ला—क्यों इस बात को मानने से क्या नुकसान है ?

युवाचार्य जी—इसको मानने का अर्थ यह हुआ कि संसार के जहां सब अच्छे काम खुदा की मर्जी से होते हैं। वहां चोरी, व्यभिचार, हत्या, चोर बाजारी, जुवा खेलना आदि सब बुरे कार्य भी उसी की मर्जी से होते हैं। यदि आप ईश्वर की मर्जी अच्छे और बुरे दोनों कामों में मानोगे तो आप यह नहीं कह सकते कि अमुक व्यक्ति को बुरे काम का बुरा फल मिला। दूसरे शब्दों में इस सिद्धान्त को मानने से ईश्वर ठीक इस प्रकार का बन जाता है कि

"चोर से तो कहे चोरी कर और साध से कहे कि जागते रहना।" अर्थात् इस सिद्धान्त को मानने से ईश्वर अत्यन्त कपटी तथा धोखेबाज सिद्ध होता है। दूसरे शब्दों में ईश्वर को आप संसार के कामों का कर्ता मान कर गाली देते हैं।

अताउल्ला—स्वामी जी ! आपने आज मेरी आंखें खोल दीं। धर्म के असली तत्व को मैं अब समझा हूं। तब तो महाराज ईश्वर को दुनियां का बनाने वाला भी नहीं मानना चाहिये ?

युवाचार्य जी—जैन धर्म ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानता। उसका सिद्धान्त है कि संसार के बनाने या उसको नष्ट करने से ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं। ईश्वर तो आत्मा की सबसे ऊंची अवस्था का नाम है और प्रत्येक व्यक्ति यत्न करके उस दर्जे तक पहुंच सकता है।

अताउल्ला—क्या महाराज ! मैं भी खुदा के दर्जे तक पहुंच सकता हूं ?

युवाचार्य जी—निश्चय से।

अताउल्ला—वह किस प्रकार ?

युवाचार्य जी—आपको प्रथम श्रावक के बारह व्रतों को धारण करना चाहिये। वह बारह व्रत भी अकेले अहिंसा में ही आ जाते हैं।

इसके बाद युवाचार्य महाराज ने मौलवी अताउल्ला के सामने श्रावक के बारहों व्रतोंका विस्तार पूर्वक व्याख्यान किया। उनको सुन कर मौलवी बोला

अताउल्ला—महाराज ! मैं तो आज समझा कि संसार में यदि कोई धर्म है तो जैन धर्म है। मेरा अहोभाग्य है कि मैं आपके पास आया। आत्मारामजी संवेगी के बाद आपके पास तो मैं इस आशा से आया था कि आपको बहस मुबाहिसे में हरा दूंगा। किन्तु आप तो बहस न करके दिल पर अधिकार करते हैं। अच्छा अब श्रावक के बारह व्रत दे कर आप मुझे भी अपना शिष्य बना लें।

युवाचार्य जी—तुम श्रावक के बारह व्रत ले सकते हो !

अताउल्ला—मैं श्री महाराज के चरणों की साक्षीपूर्वक यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं सर्वज्ञदेव अर्हन्त तथा सिद्ध के अतिरिक्त अन्य किसी को देव न मानूंगा। जैन धर्म के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म को धर्म न मानूंगा और भगवान महावीर की वाणी के अलावा किसी अन्य शास्त्र को न मानता हुआ श्रावक के बारह व्रतों का सदा पालन करूंगा।

मौलवी अताउल्ला के यह शब्द कहते ही सारी उपस्थित जनता एक साथ जोर से बोल उठी

"भगवान् महावीर स्वामी की जय।"

"पूज्य श्री आचार्य मोतीराम जी की जय।"

"युवाचार्य श्री सोहनलाल जी की जय।"

इसके पश्चात् मौलवी अताउल्ला ने युवाचार्य मुनि श्री सोहनलाल जी के साथ अपनी इस भेंट के विषय में कई उर्दू समाचार पत्रों में लेख लिखे।

युवाचार्य जी के लुधियाना निवास के अवसर पर ही जमीतराय तथा पुरुषोत्तम विजय नामक दो संवेगी साधु भी युवाचार्य महाराज के पास आए। उन्होंने प्रश्नोत्तर के उपरांत संवेगी सिद्धान्त का परित्याग कर युवाचार्य महाराज के चरणों में नये सिरे से श्वेताम्बर स्थानकवासी सिद्धान्त के अनुसार दीक्षा ली।

इस प्रकार युवाचार्य महाराज ने लुधियाना के अपने चातुर्मास में धर्म का अत्यधिक प्रचार किया।

३६

आचार्य पद

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेणय मुणी होइ, तवेण होई तावसी ॥

उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २५, गाथा ३२

समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है तथा तप से तपस्वी बन जाता है ।

युवाचार्य मुनि श्री सोहनलाल जी महाराज चातुर्मास के पश्चात् लुधियाने से विहार करके बांगर तथा खादर देश में धर्म प्रचार करते हुए दिल्ली पधारे । यहां आपने श्रावक से कुछ सूत्र धारणा करी कराई । उन दिनों दिल्ली में सूत्रों के विद्वान अच्छे गृहस्थ थे । आजकल भी दिल्ली में श्री मोहनलाल जी बत्तीसों सूत्र के जानकार हैं ।

युवाचार्य जी दिल्ली से विहार करके बड़ौत, बामनौली, बीनोली, ऐलम, कांधला, तीत्तरबाड़ा, पानीपत, करनाल, अम्बाला, रोपड़, बलाचौर तथा जैजों में धर्म प्रचार करते हुए होशियारपुर पधारे ।

आपने संवत् १६५३ का चातुर्मास होशियारपुर में किया । चातुर्मास के बाद आप जालंधर, कपूरथला, जंडियाला,

अमृतसर, नारोवाल तथा पसरूर में धर्म प्रचार करते हुए स्यालकोट पधारे।

स्यालकोट में ही आपने संवत् १६५४ का अपना चातुर्मास किया। चातुर्मास के बाद आप वहां से विहार करके जम्मू, पसरूर, गुजरानवाला, लाहौर, कसूर तथा पट्टी में धर्म प्रचार करते हुए अमृतसर पधारे। यहां आपने अपना संवत् १६५५ का चातुर्मास किया।

अमृतसर से विहार करके आप जंडियाला, कपूरथला, जालंधर, फगवाड़ा, बंगा, नवा शहर, बलाचौर, रोपड़, खरड, बनूड में धर्म प्रचार करते हुए अम्बाले पधारे। यहां आपने फाल्गुण बदि पञ्चमी संवत् १६५५ को तीन वैरागियों को दीक्षा दी, जिनके नाम यह हैं—

बीरबल, दौलतराम तथा, रामचन्द्र।

वहां से विहार करके आप उगाला तथा मूलाना में धर्म प्रचार करते हुए संडौरा आए। यहां आपने चैत्र शुक्ला द्वितीया संवत् १६५६ को कुन्दनलाल जैन अग्रवाल नामक एक वैरागी को दीक्षा दी।

आप संडौरा से विहार करके उगाला, शाहाबाद, थानेसर, जींद, नगूरा, बड़ोदा, टुहाणा, मोणक, समाम, संगरूर तथा धूरी में धर्म प्रचार करते हुए नाभा पधारे। यहां आप को पटियाला के श्री संघ की आग्रहपूर्ण विनती प्राप्त हुई। आप उसको स्वीकार कर समाना होते हुए पटियाला पधारे। इस प्रकार आपका संवत् १६५६ का चातुर्मास पटियाला में हुआ।

पटियाला के चातुर्मास के बाद आप नाभा, मालेरकोटला, गूजरवाल, छाड़, महोली, लुधियाना, फलौर, नकोदर, शाहकोट, सुलतानपुर लोधी तथा कपूरथला में धर्म प्रचार करते हुए जालंधर पधारे। यहां आपने होशियारपुर के श्री संघ की

आग्रहपूर्ण विनती को स्वीकार कर वहां चातुर्मास करने का निश्चय किया। यहां से आप वंगा तथा जैजों होते हुए होशियारपुर पधारे।

इस प्रकार आपका १६५७ का चातुर्मास होशियारपुर हुआ। इस बार होशियारपुर में संवेगी आत्माराम के शिष्य वल्लभ विजय का भी चातुर्मास था। वल्लभ विजय जी की आयु अभी कम थी। अतएव उन्होंने युवाचार्य श्री सोहनलालजी महाराज के साथ एक वकील से मध्यस्थता में चर्चा की। यह वकील रायबहादुर कुन्दनलाल का बहनोई था। वकील का नाम देवीदयाल जी था। वह जगरांवां के निवासी थे। बल्लभ विजय जी को इस चर्चा में बुरी तरह निरुत्तर होना पड़ा।

युवाचार्य महाराज चातुर्मास के बाद वहां से विहार करके फगवाड़ा, लुधियाना, रायकोट, जगरावां, भटिंडा तथा बरनाला में धर्म प्रचार करते हुए सुनाम आए। यहां आपने किशोरीलाल बैरागी को दीक्षा देकर उसे श्री बिहारीलाल जी महाराज का शिष्य बनाया। यहां आपने मालेरकोटला के श्री संघ की विनती को स्वीकार कर वहां चातुर्मास करने का निश्चय किया।

वहां से विहार करके आप संगरूर, धूरी, भूलड़हेड़ी, भदलगढ़ तथा नाभा में धर्म प्रचार करते हुए मालेरकोटला पधारे।

इस प्रकार संवत् १६५८ में आपने मालेरकोटला में चातुर्मास किया। मालेरकोटला में आपके व्याख्यानों की इतनी धूम मची कि सभी धर्म वालों पर उसकी प्रतिक्रिया हुई। आपके इस चातुर्मास में मौलवी अताउल्ला भी आपके दर्शन करने आया। एक कसाई को मौलवी अताउल्ला का आपकी

वंदना करना बहुत बुरा लगा। उसने प्रथम तो अताउल्ला को बुला कर युवाचार्य महाराज की निन्दा करते हुए उसे इस्लाम से विमुख होकर मुरतिद बन जाने पर बहुत कुछ कठोर शब्द कहे, किन्तु जब अताउल्ला ने उसको युक्तिपूर्वक उत्तर दिया तो वह युवाचार्य महाराज के पास शास्त्रार्थ करने आया। महाराज का उसके साथ निम्नलिखित वार्तालाप हुआ।

कसाई—मैंने सुना है कि जैनी लोग परमात्मा को सृष्टिकर्ता नहीं मानते।

युवाचार्य—हां, यह ठीक है।

कसाई—तो सृष्टि को किसने बनाया?

युवाचार्य—सृष्टि को किसी ने भी नहीं बनाया। यह अनादि काल से इसी प्रकार चली आती है। कभी कभी काल-क्रम से किसी किसी भाग में अपने आप भयंकर विनाश हो जाता है तो अज्ञानी लोग उसे प्रलय तथा वहां फिर जीवों की उत्पत्ति को सृष्टि की उत्पत्ति कहते हैं। किन्तु वास्तव में यह विश्व इतना बड़ा तथा निसीम है कि यहां ऐसी ऐसी घटनाओं को कुछ भी महत्व नहीं दिया जा सकता। फिर ईश्वर के साथ तो उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं। यदि तुम ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानोगे तो ईश्वर का कर्ता किसको मानोगे? फिर उसका कर्ता किसको मानोगे। इस प्रकार अनवस्था दोष आ जावेगा। फिर ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानकर आप उसको गाली भी देते हैं।

कसाई—वह किस प्रकार?

युवाचार्य जी—बात यह है कि तुम्हारे मतानुसार ईश्वर पापी तथा धर्मात्मा सभी को बनाता है। चोर, उठाईगीरों, लुच्चों, व्यभिचारियों और डाकुओं को भी वही बनाता है।

जब वह स्वयं ही इन सब को बनाता है तो उनको उनके बुरे काम का दंड देने का उसको क्या अधिकार है ? इस प्रकार तो वह उनके साथ धोखेबाजी करता है।

कसाई—लोगों के किये हुये आमालों का तो नतीजा दिया ही जावेगा।

युवाचार्य जी—जब उसकी मर्जी के बिना एक पत्ता तक नहीं हिलता तो उन बुरे आदमियों के सारे कार्यों का प्रेरक आपका खुदा ही सिद्ध होता है। फिर वह उन के द्वारा किये हुए बुरे कामों के उत्तरदायित्व से किस प्रकार बच सकता है ?

युवाचार्य महाराज के इस कथन से कसाई एक दम निरुत्तर हो गया और वह वहां से ऊलजलूल बकते हुए मुंह छिपाकर भाग निकला।

मौलवी अताउल्ला ने इस सारे वार्तालाप के समाचार को भी उर्दू अखबारों में निकलवा दिया।

आचार्य मोतीराम जी महाराज का स्वर्गवास

इधर युवाचार्य श्री सोहनलाल जी का चातुर्मास मालेर कोटला में था, उधर परम शान्त मुद्रा के धारक पूज्य आचार्य श्री मोतीराम जी महाराज तथा गणावच्छेदक श्री गणपतिरायजी महाराज इत्यादि साधुओं का चातुर्मास लुधियाना में था। चातुर्मास के बीच में ही श्री पूज्य मोतीराम जी महाराज को ज्वर आने लगा। उनका शरीर तो अत्यधिक वृद्ध था ही, अतएव ज्वर भयंकर प्रमाणित हुआ। उधर उनकी आयु भी समाप्त हो चुकी थी। अतएव आश्विन कृष्ण द्वादशी संवत् १६५८ को लुधियाना में ही उनका स्वर्गवास हो गया।

श्री पूज्य महाराज के स्वर्गवास के समाचार से समस्त जैन संघ में शोक छा गया। लुधियाना के श्री संघ ने अत्यंत समारोह पूर्वक उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की।

उधर पटियाला का श्री संघ अपने यहां विहार की विनती लेकर युवाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज के पास मालेरकोटला पहुंचा। आपने उनके आग्रह को देखते हुए उनकी विनती को स्वीकार कर लिया और चातुर्मास समाप्त होने पर मालेरकोटला से विहार करके नाभा होते हुए पटियाला जा पधारे।

आचार्य पद का महोत्सव

अब यह सबको दिखलाई दे गया कि युवाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज ही पूज्य मोतीराम जी के पाट पर बैठेंगे। उनको यह भी दिखलाई दे गया कि उनके आचार्य पद पर बिठलाने का महोत्सव पटियाला में ही मनाया जावेगा। अस्तु देश के सब भागों से मुनि, आर्यिका, श्रावक तथा श्राविकाएं पटियाला में आ आ कर एकत्रित होने लगे। इस प्रकार पटियाला में गणावच्छेदक श्री गणपतराय जी महाराज तथा मुनि श्री लाल चन्द जी महाराज आदि २६ साधु एकत्रित हुए। इस महोत्सव के लिये मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी संवत् १६५८ बृहस्पतिवार का दिन नियत किया गया।

एक बहुत बड़े सामियाने में आचार्य पद महोत्सव का कार्य आरंभ किया गया। उसमें श्री संघ ने सम्मति करके अम्बाला निवासी लाला छज्जूमल जल्लामल, लाला शिशुराम पटियाला निवासी तथा अमृतसर निवासी श्रावकों की सम्मति से श्री पूज्य मोतीराम जी महाराज की आज्ञा का अनुसरण करते हुए अत्यन्त समारोह के साथ विधिपूर्वक श्री स्वामी सोहनलाल जी

महाराज को आचार्य पद पर स्थापित किया गया। तब से ही पत्रों में आपको श्री पूज्य सोहनलाल जी महाराज लिखा जाने लगा। आपकी देखरेख में श्री संघ और भी अधिक उत्साह के साथ अपने धार्मिक कार्य करने लगा, श्री पूज्य सोहनलाल जी महाराज भगवान महावीर स्वामी के उत्तराधिकारी श्री सुधर्म स्वामी के ८६वें पाट पर बैठे।

पटियाला के आचार्य पद महोत्सव के बाद श्री पूज्य सोहनलाल जी महाराज वहां से विहार करके राजपुरा, अम्बाला, थानेसर, करनाल, पानीपत तथा सोनीपत में धर्म प्रचार करते हुए दिल्ली पधारे। संवत् १६५६ का अपना चातुर्मास भी आपने दिल्ली में ही किया। यहां आपने रत्नचन्द बैरागी को भी दीक्षा दी।

दिल्ली में धर्म प्रचार करके आपने चातुर्मास के बाद उत्तर प्रदेश की ओर विहार किया।

आप खेकड़ा, बागपत, बड़ौत, बामनोली, बिनोली तथा अलम में धर्म प्रचार करते हुए कांधला पधारे। संवत् १६६० का चातुर्मास आपने कांधला में ही किया। इस चातुर्मास के बाद मार्गशीष कृष्ण सप्तमी संवत् १६६० को आपने कांधले में तीन दीक्षाएं दीं। उनमें एक पसरूर निवासी थे। यह रहीस लाला गैंडेराय साहिब दूगड़ के भतीजे तथा लाला गोविंदशाह के पुत्र थे। इनकी माता का नाम श्रीमती लक्ष्मी देवी था। इन बैरागी का नाम काशीराम जी दूगड़ था। उनको तेरह वर्ष की आयु में वैराग्य हो गया था। छै वर्ष तक उनका घर वालों के साथ झगड़ा रहा। वास्तव में पूज्य महाराज को यह एक अपूर्व रत्न मिला। आगे चलकर यह समाज का बड़ा भारी आधार सिद्ध हुआ, जिस से पूज्य श्री सोहनलाल जी ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया।

काशीराम जी के अतिरिक्त दूसरी दीक्षा श्री नरपतराय जी दूगड़ ओसवाल को दी गई। वह जनुका के रहने वाले थे और वहां से आकर पसरूर रहने लगे थे। यह लाला अमीचन्द जी शाह के पुत्र तथा नन्द शाह के भतीजे थे। यह बड़े भारी समृद्धिशाली कुल के थे।

इन दो के अतिरिक्त एक बैरागिन श्रीमती मथुरादेवी को भी दीक्षा दी गई। यह महिला भी अत्यन्त धनी कुल की थी। उसने कुमारी अवस्था में ही दीक्षा ले ली थी।

श्री पूज्य महाराज कांधला से चातुर्मास के बाद ऐलम चले गए थे। फिर आप दीक्षाएं देने के लिये मार्गशीर्ष बदी सप्तमी को कांधला दुबारा पधारे थे। कांधला के दीक्षा महोत्सव के बाद आपने दिल्ली आकर ज्ञानचंद को दीक्षा दी।

३७

शास्त्रार्थ नाभा

तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि, जम्बुकाः विपिने यथा ।
यावन्न गर्जत्यग्रे, सत्यसिद्धान्त केसरी ॥

विभिन्न शास्त्रों के अनुयायी वन में गीदड़ों के समान तभी तक गर्जा करते हैं, जब तक सत्य सिद्धान्त रूपी सिंह आकर गर्जना नहीं करता ।

श्री पूज्य सोहनलाल जी महाराज दिल्ली से विहार करके सोनीपत, पानीपत तथा करनाल में धर्म-प्रचार करते हुए फाल्गुण मास में कैथल पहुँचे। वहां से समाना होते हुए आप नाभा पधारे ।

जिन दिनों श्री पूज्य महाराज नाभा पधारे तो श्री वल्लभविजय जी संवेगी भी नाभा में ही थे । आपने तत्कालीन नाभा नरेश श्रीमान् हीरासिंह जी के पास सायंकाल के समय दरबार में जा कर आशीर्वाद दिया । आपने उनके सन्मुख एक लिखित निवेदन पत्र उपस्थित किया कि उनको स्थानकवासी मुनिराज विशेषकर पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के साथ शास्त्रार्थ करने दिया जावे । आपने उनके सन्मुख छै प्रश्न उपस्थित करके निवेदन किया कि मुझे इन छै प्रश्नों का उत्तर स्थानकवासी साधुओं से दिलवाया जावे ।

राजा साहिब ने उनके प्रश्नों को सुन कर उनसे कहा

"देखिये बाबा जी ! यदि स्थानकवासी जीत गये तो तुमको मुंहपत्ति (मुख वस्त्रिका) जो तुमने हाथ में ली हुई है, मुंह पर बांधनी पड़ेगी।"

बल्लभ विजय जी ने नाभा नरेश की इस शर्त को स्वीकार कर लिया।

इसके पश्चात् नाभा नरेश ने भाई तारासिंह से एक पत्र लिखवा कर उसे दो पंडितों के द्वारा पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की सेवा में भेजा। उन दोनों के नाम पंडित बासुदेव तथा श्रीधर जी थे।

श्री पूज्य महाराज ने उक्त पत्र को पढ़ कर दोनों पंडितों से कहा

"हम बल्लभ विजय के साथ स्वयं शास्त्रार्थ करना उचित नहीं समझते, क्योंकि वह कोई माननीय आचार्य या विद्वान नहीं है। अतः हमारी ओर से उनके साथ हमारे पोते शिष्य स्वामी श्री उदयचन्द जी महाराज शास्त्रार्थ करेंगे।"

यद्यपि मुनि श्री उदयचंदजी इस समय नाभा में नहीं थे, किन्तु वह श्री पूज्य महाराज का संदेश पाकर नाभा जा पहुंचे।

शास्त्रार्थ ज्येष्ठ बदि चतुर्थी संवत १६६१ से नाभा नरेश के ज्ञानगोष्ठी भवन में आरम्भ हुआ। इसमें स्वयं महाराज हीरा-सिंह और दूसरे भाई कहानसिंह, पं० श्रीधर जी तथा बाबा परमानन्द जी आदि प्रतिष्ठित विद्वान् उपस्थित रहते थे।

शास्त्रार्थ का मुख्य विषय मुखवस्त्रिका को बांधना अथवा न बांधना था। बीच बीच में मूर्तिपूजा, पात्र उपकरण की मर्यादा तथा शुद्धि की चर्चा भी विस्तार के साथ की जाती थी।

मुनि श्री उदयचंद जी की प्रशांत भावना, गंभीरता और विद्वतापूर्ण तर्कशैली का ऐसा चमत्कारपूर्ण प्रभाव पड़ा कि विरोधी पक्ष के लोगों ने भी उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। नाभा नरेश हीरासिंह जी तो महाराज श्री के उत्कृष्ट वैराग्य, त्याग वृत्ति एवं पांडित्य पर इतने अधिक मुग्ध हुए कि वह जब देखो तब उनका गुणानुवाद करते रहते थे। मुखवस्त्रिका के सम्बन्ध में वल्लभ विजय जी ने पूछा।

वल्लभ—मुखवस्त्रिका बांधनी कहां लिखी है ?

उदय—पहिले आप मुखवस्त्रिका का अर्थ कीजिये।

वल्लभ—मुखस्थ वस्त्रिका इति मुखवस्त्रिका।

उदय—हस्तवस्त्रिका तो नहीं ? जब सूत्रकार ही 'मुख वस्त्रिका' इस निश्चित शब्द का प्रयोग कर गए हैं, तो फिर उसको हाथ में क्यों कर रखा जा सकता है ? यदि यह हाथ में रखने के लिये होती तो सूत्रकार उसके लिये 'हस्तवस्त्रिका' शब्द का प्रयोग करते। क्या आप शास्त्रों के शब्दों को निरर्थक मानते हैं, जो मुखवस्त्रिका शब्द का अर्थ हाथ में रखना कहते हैं ? खुले मुख बोलना तो भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध है और दशों उंगलियों को मिलाकर और उनको मस्तक से लगाकर नमस्कार करने के लिये आज्ञा है। यदि मुखवस्त्रिका हाथ में होगी तो दशों नाखूनों को मिलाकर मस्तक पर कैसे लगाया जा सकता है ?

किन्तु वल्लभ विजय जी ने इस युक्ति का कोई उत्तर न देकर इधर उधर की कहना आरम्भ किया। इस पर भाई कहान-सिंहजी ने कहा—

कहानसिंह—महाराज ! मैं समझ गया कि आपका तथा इनका सिद्धान्त तो एक ही है, क्योंकि उन्होंने तो मुखवस्त्रिका बांधी हुई है और आप उसे हाथ में लिये बैठे हैं। अतएव आपका यह प्रश्न व्यर्थ है कि मुखवस्त्रिका मुख पर बांधनी चाहिये या नहीं ? आप मुँह खोलकर तो नहीं बोल सकते।

वल्लभ विजय—यदि हम भूल से या जल्दी में खुले मुख बोल भी जावें तो उसके लिये प्रातः सायं प्रतिक्रमण कर लेते हैं। उसमें इसका भी प्रायश्चित हो जाता है।

भाई कहानसिंह—वल्लभ विजय जी महाराज ! मैं समझ गया कि आपका तथा इनका सिद्धान्त एक ही है। क्योंकि उन्होंने तो मुखवस्त्रिका बांधी हुई है और आप उसे हाथ में लिये बैठे हैं, अतएव आपका यह प्रश्न सर्वथा व्यर्थ है कि मुख-वस्त्रिका मुख पर बांधनी चाहिये या नहीं।

मुनि उदयचन्द जी—तो भी हम मुखवस्त्रिका के विषय में कुछ बातें संक्षेप में बतलाना चाहते हैं।

महाराज नाभा—वह हम अवश्य सुननी चाहते हैं।

मुनि उदयचन्द—मुखवस्त्रिका वायुकाय आदि जीवों की रक्षा के लिये तथा जैन साधुओं की पहिचान के लिए मुँह पर धारण की जाती है।

मुँह की वायु से बाहिर के वायुकायिक जीवों की हिंसा होती है।

मुखवस्त्रिका केवल मुख पर बांधने के लिये है, न कि शरीर प्रयार्जन के लिये। जैन आगमों में मुखवस्त्रिका को जैन साधु के वेष का एक अभिन्न अंग माना गया है, जैसा कि निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध है—

"पडिग्गहो पायवन्धन पाय केसरिया पायठवणांच पडिलाइं तिन्नेव रयताणं · गोच्छाओ तिन्निए पक्कगा रओहरणं चोलपट्टक पायपूछणं मुंहणंतक मादियं एयं पिय संजमस्स उववूह णठयाए वाय दंस मसग सीय परिरक्खणठयाए इति।"

प्रश्न व्याकरणांग, अध्ययन १०

पात्र, पात्र बांधने की झोली, पात्र पोंछने का वस्त्र, आहार करते समय पात्रों के नीचे बिछाने का वस्त्र, तीन वस्त्र पात्रों के—एक ऐसा वस्त्र जो सभी पात्रों पर आ जावें, जिससे पात्रों में धूल न पड़े, लूहड़े तीन, प्रच्छादिका अर्थात् दो चादर सूती और एक लोई ऊनी या तीनों सूती, रजोहरण, चोलपट, आसन, मुखवस्त्रिका तथा पात्र जिसमें शौच के समय जल ले जाया जावे इत्यादि वस्तुएं संयम वृद्धि और सर्दी गरमी, डांस तथा मच्छर आदि से रक्षा के लिये ही हैं।

वल्लभ विजय जी के दादा गुरु बूटे रायजी ने अपने बनाये 'मुखपत्तिचर्चा' के पृष्ठ १४५ पर 'महानिशीथ सूत्र के निम्नलिखित पाठ का अवतरण दिया है—

"कण्णेट्टियाए वा मुहणंतगेण वा विणा इरियं
पडिकम्मे मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढं।"

महानिशीथ सूत्र, अध्ययन सात।

मुखपत्ति में जो धागा पड़ा हुआ है उसको कानों में बिना डाले यदि ध्यान करे तो दोपहर का दण्ड, मय 'मिच्छामि दुक्कडं' के आवे।

सनातन धर्मियों के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिव पुराण' में भी मुखपत्ति बांधने का वर्णन है—

"हस्ते पात्रं दधानाश्च तुण्डे वस्त्रस्य धारकाः ।
मलिनान्येव वस्त्राणि धारयन्तोऽल्पभाषिणः ॥"

शिवपुराण ज्ञान संहिता, अध्ययन २१, श्लोक २५ ।

हाथ में पात्र धारण करने वाले, मुख पर मुखपत्ति पहिनने वाले, मलिन वस्त्रों को धारण किये हुए थोड़ा बोलने वाले (जैन साधु होते हैं।)

सावचूरि यति दिनचर्या संवेगियों का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें लिखा है कि

"बत्तीसंगुल दीहं रयहरणं, पुत्तियाय अद्धेणं ।
जीवाण रक्खणट्ठा 'लिंगट्ठा' चेव एयंतु ॥"

बत्तीस अंगुल लम्बा रजोहरण और उससे अर्द्ध (सोलह अंगुल) मुख वस्त्रिका यह जीवों की रक्षा के लिये तथा 'पहिचान' के लिये भी रक्खे जाते हैं।

संवेगियों के आधुनिक ग्रन्थों में तो इसके अनेक प्रमाण मौजूद हैं, किन्तु यह मुखवस्त्रिका को मुख पर न बांध कर उसे हाथ में रखते हैं।

महाराज हीरासिंह जी—कहिये वल्लभ विजय जी ! क्या आप इन प्रमाणों को मानने से इंकार करते हैं ?

इस पर वल्लभ विजय जी चुप हो गए और महाराज नाभने शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करने का परवाना लिख कर मुनि उदयचन्द जी को दे दिया। इस पर वल्लभ विजय जी ने बहुत असंतोष प्रकट किया। सरकारी घोषणा में कहा गया था कि—

"श्री उदयचन्द जी महाराज का पक्ष पुरानी परम्परा के अनुसार है। हमारी सम्मति में जो बेष और चिह्न जैनियों के

लिए शिव पुराण में लिखे हैं, वह सब वही हैं, जो आज कल स्थानकवासी साधु रखते हैं। वास्तव में अपने प्राचीन चिह्नों का रखना ही उचित है।"

इस घोषणा-पत्र के प्रकाशित होते ही मुनि उदयचन्द के जयकारों से आकाश गूंज उठा। पंजाब के सब क्षेत्रों को इस विजय का समाचार तार द्वारा भेज दिया गया। इस बिषय में 'शास्त्रार्थ नाभा' नामक एक पुस्तक 'जैन धर्म प्रचार' सामग्री भण्डार, सदर बाज़ार, दिल्ली से प्रकाशित हो चुकी है। विशेष जिज्ञासा रखने वाले सज्जन उक्त ग्रन्थ का अध्ययन करें।

३८

स्थायी निवास

नो निण्हवेज्ज वीरियं ।

आचारांग सूत्र, श्रुत स्कंध १, अध्ययन ५, उद्देश्य ३ ।

अपने सामर्थ्य का अपलाप मत करो ।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज नाभा में शास्त्रार्थ के लिये मुनि श्री उदयचन्द जी को नियुक्त करके वहां से विहार कर पटियाला, अम्बाला, खरड़, रोपड़, बलाचौर, तथा बंगा में धर्म प्रचार करते हुए फगवाड़ा पधारे । यहां जालंधर के श्री संघ ने लाला रलाराम जी मैजिस्ट्रेट आदि के साथ आकर अपने यहां चातुर्मास करने की विनती की । पूज्य श्री ने उनके आग्रह को देखकर उसे स्वीकार कर लिया । अतएव आप वहां से होशियारपुर होते हुए प्रथम जालन्धर छावनी और उसके बाद जालन्धर नगर पधारे । इस प्रकार आपका संवत् १९६१ का चातुर्मास जालन्धर में ही हुआ ।

चातुर्मास के बाद आप कपूरथला पधारे । वहां आप से लाला नत्थू शाह तथा लाला बनारसीदास जैन रईस ने विनती की कि चुन्नीलाल वैरागी को दीक्षा कपूरथले में ही दी जावे । आपके स्वीकार कर लेने पर कपूरथले के भाइयों ने अत्यन्त समारोहपूर्वक उसका दीक्षा महोत्सव किया । वैरागी चुन्नीलाल

जी अमृतसर के ओसवाल थे। पूज्य श्री ने उसे मुनि श्री काशी-राम जी महाराज का शिष्य बनाया।

आप कपूरथला से विहार करके जंडियाला होते हुए अमृत-सर पधारे। आपने अपना संवत् १९६२ का चातुर्मास अमृतसर में ही किया। अमृतसर के चातुर्मास के समय आपने लाला ईश्वरदास बैरागी को दीक्षा दी। लाला ईश्वरदास अत्यन्त शक्तिशाली व्यापारी थे। वह ओसवाल दूगंड़ थे। उनकी दीक्षा अत्यन्त त्याग तथा वैराग्य का उदाहरण है। उनको मुनि श्री काशीराम जी महाराज का शिष्य बनाया गया। दीक्षा पूज्य श्री ने स्वयं दी।

अमृतसर के इस चातुर्मास के बाद आप वहां से विहार कर गये। किन्तु आपके चरणों में वेदना हो गई। आपको हवा लग जाने से वायु रोग होगया, जिससे आपके हाथ पैर कांपने लगे।

अमृतसर के श्री संघ को जब पूज्य श्री के शरीर में इस असाध्य रोग के हो जाने का समाचार मिला तो वहां बड़ी भारी चिन्ता हो गई। अब वहां के मुख्य मुख्य श्रावक लाला नत्थू शाह, जगन्नाथ, राधा किशन, लाला कृपाराम, नारायण दास, वसंता मल, जुहारे शाह, माधो शाह, लाला हुकमा शाह, लाला फग्गू शाह, भगवान दास, लाला दुनी शाह तथा संत राम आदि सब एकत्रित हो कर जंडियाला आए। यहां आप लोगों ने महाराज से निवेदन किया—

"गुरुदेव ! आपका शरीर अब विहार करने योग्य नहीं रहा है। अस्तु अब आपको आपत्ति धर्म का पालन करते हुए विहार करना बंद कर देना चाहिये और अमृतसर में स्थायी रूप से निवास करना चाहिये। आप जानते हैं कि अमृतसर के श्री संघ

को यह सम्मान पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज ने भी प्रदान किया था। अब आपके हाथ पैर कांपने लगे हैं। अस्तु आपको अब उनके दिखलाए हुए मार्ग को ग्रहण करना चाहिये।"

इस पर पूज्य महाराज ने उत्तर दिया—

"आप लोगों ने जो कुछ भी कहा है वह ठीक है। किन्तु अभी हमारी आयु कुल छप्पन वर्ष की है। वृद्धावस्था निश्चय से आ गई है। किन्तु यह शरीर तो भाड़े का टट्टू है। हम उसकी साज सम्हाल क्यों रक्खें ? हमारा विचार अपने भरसक विहार करते रहने का ही है।"

इस पर श्रावक लोग बोले

"पूज्य महाराज को उत्तर देने का साहस तो हम में नहीं है, किन्तु आप एक सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य हैं। फिर आपके कारण धर्म प्रचार भी कम नहीं होता। अतएव समाज का हित इसी बात में है कि उसके ऊपर आपकी छत्र छाया अधिक से अधिक समय तक बनी रहे। अस्तु हम लोगों ने यह निश्चय कर लिया है कि हम यहां से आगे महाराज को विहार न करने देंगे। और यदि महाराज यहां से आगे विहार करेंगे तो हम मार्ग में सत्याग्रह करेंगे।"

पूज्य महाराज ने कहा

"श्रावकों को इस प्रकार हमको अपना निश्चय बदलने को बाध्य नहीं करना चाहिये। अच्छा, अभी तो हम आराम करेंगे। इस विषय पर कल देखा जावगा।"

पूज्य महाराज से इस प्रकार उत्तर पाकर श्रावक लोग जंडियाला में ही ठहर गए। किन्तु प्रातःकाल होने पर पूज्य श्री ने श्रावकों से वार्तालाप किये बिना ही विहार कर दिया।

पूज्य महाराज विहार करके पन्द्रह बीस कदम ही चले होंगे कि उन्होंने उन सभी श्रावकों को अपने मार्ग में भूमि पर लेटे हुए पाया। इस दृश्य को देख कर उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आए और वह उन श्रावकों से कहने लगे—

"अच्छा, भाई! तुम उठो। तुम्हारे अनुरोध को स्वीकार कर हम वापिस अमृतसर चलते हैं।"

पूज्य महाराज के मुख से यह शब्द निकलते ही सब श्रावक एक दम बोल उठे

"पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की जय।"

इसके पश्चात् पूज्य श्री उन श्रावकों के साथ ही जंडियाला से विहार कर वापिस अमृतसर पधार गए।

अमृतसर आकर यद्यपि आपकी पर्याप्त चिकित्सा कराई गई, किन्तु आपका जंघाबल क्रमशः क्षीण से क्षीणतर ही होता रहा। इस प्रकार आप संवत् १९६२ से लेकर १९९२ तक लगातार तीस वर्ष तक अमृतसर रहे। आपके यह तीसों चातुर्मास अमृतसर में ही हुए।

३६

पदवी दान महोत्सव

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही? किंवा नाही य सेयपावगं॥

दशवैकालिक सूत्र, अध्ययन ४, गाथा १०।

'प्रथम ज्ञान है, पीछे दया'। इसी क्रम पर समग्र त्यागीवर्ग अपनी संयम यात्रा के लिये ठहरा हुआ है। भला, अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा? श्रेयस् और अश्रेयस् को या पुण्य एवं पाप को वह कैसे जान सकेगा?

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज जब रोग के कारण स्थायी रूप से अमृतसर में विराज गए तो संघ की बाह्य व्यवस्था का कार्य भिन्न भिन्न स्थविर मुनियों को सौंप दिया गया। इन मुनियों में ज्ञानी मुनि श्री मयाराम जी महाराज, आगम तत्ववेत्ता श्री आत्माराम जी महाराज, शास्त्रार्थ विशेषज्ञ मुनि उदयचन्द जी महाराज तथा युवक मुनि श्री काशीराम जी महाराज प्रमुख थे। संवत् १९६५ में पसरूर के श्रावकों ने पूज्य श्री की सेवा में आकर निवेदन किया कि श्री मुनि काशीराम जी महाराज पसरूर निवासी होने पर भी दीक्षा के बाद वहां नहीं गए हैं। अस्तु पूज्य महाराज ने मुनि काशीराम जी को वहां भेज दिया। इसी सम्बन्ध

में अपने कर्तव्य का पालन करते हुए मुनि काशीराम जी महाराज ने पंजाब का भ्रमण करते हुए फाल्गुण १९६५ में पसरूर नगर में शाह कोट निवासी श्री हरखचन्द जी बैरागी को दीक्षा दी। आप खण्डेलवाल जैन थे और पहिले जालन्धर में रहा करते थे।

मुनि श्री काशीराम जी महाराज ने संवत् १९६७ में भटिंडा निवासी श्री कल्याण मल जी बैरागी को दीक्षा दी। आप अग्रवाल जैन थे। कल्याण मल जी आगे चल कर बड़े भारी तपस्वी प्रमाणित हुए। उन्होंने केवल जल के आधार पर एक एक मास की तपस्या कई बार की।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने संवत् १९६८ में बैरागी ताराचन्द्र तथा बैरागी गंगाराम जी को दीक्षा दी।

दिगम्बर मत के प्रमाण

अमृतसर में पूज्य श्री के पास पानीपत से माधव मुनि का एक पत्र आया कि यहां के दिगम्बरी भाई नग्नता के विरुद्ध तथा स्त्री मुक्ति के विषय में अपने शास्त्रों के प्रमाण चाहते हैं। इस पर पूज्य महाराज ने उनको निम्न लिखित प्रमाण लिखवा कर भिजवाए—

साधुओं के लिये नग्न रहना आवश्यक नहीं

दिगम्बर शास्त्रों में वस्त्रों को परिग्रह न मान कर मूर्छा अथवा ममत्व को परिग्रह माना गया है। जैसा कि उमा स्वामी ने कहा है

मूर्छा परिग्रहः।

तत्वार्थ सूत्र, अध्याय ७, सूत्र १७

मूर्छा शब्द की व्याख्या दिगम्बर आचार्य पूज्यपाद ने तत्वार्थ सूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में इस प्रकार की है

"बाह्यानां गोमहिषमणिमुक्तादीनां चेतनाचेतनानां रागादीनामुपधीनां च संरक्षणार्जनसंस्कारादिलक्षणा व्यावृत्तिर्मूर्छा।"

गो, भैंस, मणि, मुक्ता आदि चेतन तथा अचेतन राग आदि उपधियों के संरक्षण, अर्जन तथा संस्कार आदि लक्षण रूप ममत्व को मूर्छा कहते हैं।

अमृतचन्द्र सूरि ने भी अपने ग्रन्थ "पुरुषार्थसिद्ध्युपाय" में यही कहा है—

या मूर्छानामेयं, विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः।
मोहोदयादुदीर्णो, मूर्छा तु ममत्वपरिणामः॥

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १११

मूर्छा को ही परिग्रह जानना चाहिये। मोह के उदय से उत्पन्न होने वाला ममत्व परिणाम ही मूर्छा है।

इस प्रकार वस्त्र परिग्रह नहीं, वरन् उनका ममत्व परिग्रह है। दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार वास्तव में परिग्रह तीन प्रकार का होता है--

एक क्षेत्र, वास्तु, सुवर्ण आदि दश प्रकार का बाह्य परिग्रह; दूसरा रति, अरति, काम, क्रोध आदि चौदह प्रकार का आभ्यन्तर परिग्रह तथा तीसरा शरीर परिग्रह।

इस प्रकार यदि शरीर में ममत्व है तो वस्त्र न रखने पर भी मुनि को परिग्रही कहा जावेगा और यदि वस्त्रों में उसका ममत्व नहीं है तो उसे वस्त्र धारण करने पर भी निर्ग्रन्थ कहा

जावेगा। इसी कारण दिगम्बर मान्यता के अनुसार तीर्थंकरों के अशोक वृक्ष, सिंहासन, छत्र, चमर, कमल आदि अष्टप्रतिहार्य तथा समोशरण रूप परिग्रह होते हुए भी उनको ममत्व के अभाव में निष्परिग्रही माना जाता है।

इसके अतिरिक्त तत्वार्थ सूत्र में निम्नलिखित सूत्र में साधुओं के भेद बतलाए गए हैं उनसे भी यही पता चलता है। उक्त सूत्र यह है—

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः।

तत्वार्थसूत्र, अध्याय ६, सूत्र ४६

निर्ग्रन्थों के पांच भेद हैं—पुलाक, बकुल, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक।

सर्वार्थसिद्धि में, उनके लक्षण करते हुए बतलाया गया है कि

उत्तर गुणों का पालन करने की अभिलाषा होते हुए भी जिनके व्रत कभी कभी ही पूर्ण होते हों, वह अविशुद्ध चरित्र वाले पुलाक के समान पुलाक मुनि होते हैं।

जो अपने व्रतों का पूर्ण पालन करते हुए भी शरीर उपकरण को सजाने के लिये यत्न करते हुए अपने मुनि परिवार में मिले रहते हैं—वह मोहग्रस्त बकुश मुनि कहलाते हैं। बकुश का लक्षण पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि में निम्नलिखित शब्दों में किया है—

नैर्ग्रन्थ्यं प्रतिस्थिता अखण्डितव्रताः शरीरोपकरण-विभूषानुवर्तिनोऽविविक्तपरिवारा मोहशबलयुक्ता बकुशाः।

कुशील दो प्रकार के होते हैं—प्रतिसेवना कुशील तथा कषाय कुशील।

अविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथञ्चिदुत्तर-
गुणविरोधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः।

परिग्रह का त्याग न करते हुए जिनके मूल गुण तथा उत्तर गुण पूर्ण होने पर भी जिनके उत्तर गुणों में दोष लग जाया करता हो उन्हें प्रतिसेवना कुशील कहा जाता है।

कषायों को वश में करके संज्वलन कषाय मात्र के आधीन कषाय कुशील कहे जाते हैं। ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थानवर्ती उन मुनिराज को निर्ग्रन्थ कहा जाता है जो केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले हैं।

स्नातक दो प्रकार के होते हैं—एक तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवल ज्ञानी तथा दूसरे चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली।

इस प्रकार इन मुनियों में तत्वार्थसूत्रकार उमा स्वामी तथा सर्वार्थसिद्धिकार पूज्यपाद ने वस्त्रों के अतिरिक्त अपने शरीर को सजाने तक की प्रवृत्ति बतलाई है। इससे प्रकट है कि वस्त्र के विरुद्ध दिगम्बर जैनियों का आग्रह उनके अपने ग्रन्थों के भी विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त मुनियों के द्वारा सहन की जाने वाली बाईस परिषहों में 'नाग्न्य' परिषह भी इसी बात को सिद्ध करती है।

जिस प्रकार आहार पानी न मिलने अथवा अन्तराय के कारण आहार पानी के कष्ट को सहन करना क्षुधा परीषह तथा तृषा परिषह होती है, उसी प्रकार वस्त्र न मिलने के कारण होने वाले कष्ट को सहन करना नाग्न्य परिषह है। जब कोई व्यक्ति नग्न हो ही गया तो उसका परिषह कैसा ?

श्वेताम्बर आगमों में जो जिनकल्पी का विधान किया गया है वह उनको कम से कम ग्यारह अंग का पूर्ण तथा बारहवें अंग में दशवें पूर्व की तीसरी वस्तु तक का पूर्ण ज्ञान तथा प्रथम संहनन होना आवश्यक है। अस्तु आजकल के दिगम्बर जैन मुनियों को जिनकल्पी नहीं कहा जा सकता। दिगम्बर आचार्य जिन सेन कृत आदि पुराण के सर्ग ११, श्लोक ७३ में भी साधुओं के जिन कल्पी तथा स्थविर कल्पी दो भेद मानकर जिन कल्पी में ज्ञान की विशेषता को माना गया है।

इसके अतिरिक्त दिगम्बर साधुओं के लिये कमण्डलु, पुस्तक, कलम, दवात, कागज, रूमाल, पट्टी आदि रखना भी अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर मुनि सर्दियों में घास के अन्दर दुबक कर सोते हैं। घास में तो जीवजन्तुओं की संभाल भी नहीं की जा सकती। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा उन जीवों की हिंसा होना अनिवार्य है।

फिर दिगम्बर शास्त्रों में दिगम्बर मुनि को नवम गुणस्थान तक पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक इन तीनों वेद का उदय माना है। अतएव उसको प्रयोग से दबा कर जितेन्द्रिय बनना पड़ता है।

इस प्रकार के अन्य भी अनेक दिगम्बर ग्रन्थों में मुनियों के वस्त्रों के पक्ष में लिखा हुआ मिल सकता है।

स्त्री मुक्ति

गोम्मटसार की गाथा ३८८ तथा ७१४ आदि कई स्थानों में स्त्री के लिये क्षपक श्रेणी तथा अवेदिपन आदि का उल्लेख किया गया है। गोम्मटसार कर्म कांड में कहा गया है

वेदा हारोत्तिय सगुणोघं णवरं संद थी खवगे।
किण्ह दुग-सुहतिलेसिय वामेवि णं तित्थयरसत्तं ॥

गोम्मट सार कर्मकांड गाथा ३५४

वेद से आहार तक की मार्गणाओं में स्वगुणस्थान की सत्ता है। विशेषता इतनी ही है कि क्षपक श्रेणी में चढ़ने वाले नपुंसक, स्त्री तथा पांच लेश्या वाले मिथ्यात्वी को सत्व में तीर्थंकर प्रकृति होती है।

इसका अभिप्राय यह स्पष्ट है कि स्त्री क्षपक श्रेणी में चढ़ती है किन्तु तीर्थंकर बनना अधूरा है। यह स्पष्ट है कि क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाला केवल ज्ञानी बन सकता है। और वह केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करेगा। फिर भले ही वह स्त्री हो, नपुंसक हो, चाहे पुरुष हो—

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में गुणस्थान क्रम से कर्म प्रकृतियों की व्युच्छित्ति का क्रम यह बतलाया गया है।

देसे तदिय कसाया, तिरिया उज्जोय णीच तिरिय गदी।
छट्ठे आहरदुग्गं, थीणतिगं उदय वोच्छिण्णा ॥२६७॥

अपमत्ते सम्मत्तं, अंतिम तिय संहदायऽपुव्वम्मि।
छच्चेव णोकसाया, अणिट्टिय भाग भागेसु ॥२६८॥

वेदतिय कोह माणं, माया संजलणमेव ॥२६९॥

पांचवें गुणस्थन में प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यञ्च आयु, उद्योत, नीच गोत्र तथा तिर्यञ्च गति का तथा छठे गुण स्थान में आहारक शरीरद्विक, तथा तीनों निद्रा प्रकृतियों का उदयव्युच्छेद हो जाता है ॥२६७॥

सातवें अप्रमत्त गुण स्थान में सम्यक्त्व प्रकृति और अन्त के तीन संहनन का, आठवें अपूर्व करण गुणस्थान में हास्यादि छै कषायों का ॥२६७॥ तथा नौवें अनिवृत्ति करण गुणस्थान में तीनों वेद तथा संज्वलन क्रोध, मान और माया इन तीन कषायों का उदय विच्छेद हो जाता है।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि पुरुष वेद, स्त्री वेद और नपुंसक वेद इन तीनों का नौवें गुणस्थान में उदय विच्छेद हो जाता है। बाद के गुणस्थानों में उनको अपने अपने वेद कषाय का उदय नहीं होता। नाम कर्म का उदय विद्यमान होने के कारण उनमें शरीर की रचनामात्र रहती है और वह अवेदी माने जाते हैं। पुरुष, स्त्री और नपुंसक यह तीनों क्षपक श्रेणी बांधते हैं, तेरहवें गुणस्थान में पहुंचते हैं और मोक्ष भी प्राप्त करते हैं।

धवल ग्रन्थ में आचार्य भूत बली तथा पुष्पदन्त कहते हैं।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु पमत्तसंजद प्पहुडि जाव अणि-अट्टि बादरसांपराइय पविट्ठ उवसमा खवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा ॥

षट्खंडागम जीवस्थान, द्रव्यप्रमाणानुगम धवला टीका
मुद्रित पुस्तक ३री, सूत्र १२६, पृष्ठ ४१६

स्त्रियों में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्ति बादर सांपराय प्रविष्ट उपशमक और क्षपक गुणस्थान तक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? संख्यात हैं।

आगे इसी पाठ में लिखा है कि १०८ पुरुष, २० स्त्री और १० नपुंसक क्षपक श्रेणी करते हैं और मोक्ष में जाते है। आगे एक और पाठ में लिखा है कि

वीसा नपुंसकवेया, इत्थीवेया य हुंति चालीसा।
पुंवेदा अडयाला, सिद्धा इक्कम्मि समयम्मि ॥

एक समय में एक साथ २० नपुंसक, ४० स्त्री तथा ४८ पुरुष सिद्ध होते हैं।

इन सब बातों से सिद्ध है कि दिगम्बर शास्त्र स्त्री मुक्ति के पक्ष में हैं।

इसके अतिरिक्त उमा स्वामी ने तत्वार्थ सूत्र में सिद्धों के निम्नलिखित भेद किये हैं—

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधित-
ज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः।

तत्वार्थ सूत्र, अध्याय १०, सूत्र ७।

सिद्धों में परस्पर कोई भेद न होते हुए भी उनके पूर्व मनुष्य रूप की अपेक्षा उनको क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या तथा अल्पबहुत्व के भेद से विभाजित किया जा सकता है।

यदि अकेले पुरुष ही सिद्ध होते तो यहां लिङ्ग की दृष्टि से उनका भेद करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

इस प्रकार पूज्य श्री ने यह सब प्रमाण माधव मुनि के लिये लिखवा कर पानीपत भिजवा दिये।

इस प्रकार सात आठ वर्ष तक संघ का कार्य निर्विघ्न चलता रहा। किन्तु पूज्य श्री मोहनलाल जी महाराज इस व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। वह समझ गए थे कि उनका रोग स्थायी है और उसके अच्छा होने की आशा नहीं है। अतएव वह अपने सिर से संघ के उत्तरदायित्व को कुछ कम करके उसको अपने शिष्य

प्रशिष्यों में विभक्त कर देना चाहते थे। इस प्रकार के विचार कई वर्ष तक उनके हृदय में उथल पुथल मचाते रहे। अन्त में उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि संघ के विशिष्ट कार्यकर्ता मुनियों को कुछ निश्चित उत्तरदायित्व देकर उसके अनुसार कुछ पदवियां दे दी जावें।

अस्तु आपकी प्रेरणा से विक्रम संवत् १९६९ के फाल्गुण मास में अमृतसर में पंजाब प्रान्त के जैन मुनिराजों का एक विराट् सम्मेलन किया गया। यह सम्मेलन न केवल अमृतसर के लिए, वरन् समस्त जैन समाज के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण था। इसमें भाग लेने के लिये पंजाब भर के मुनियों तथा आर्यिकाओं के अतिरिक्त श्रावक श्राविकाएं भी बड़ी भारी संख्या में आए थे। इस समय जनता के हृदय में उत्साह का समुद्र हिलोरें ले रहा था। श्रद्धेय तथा पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज के चरणों में एक महान् विचार कार्य रूप में परिणत हो रहा था।

उत्सव के समय पूज्य श्री ने मुनि श्री उदयचन्द जी महाराज को अपने समीप बुलाकर उनसे एकान्त में कहा।

"उदयचन्द! अब मैं वृद्ध हो गया हूं। जीवन का क्या पता कि क्या कब हो जावे। मेरी इच्छा अब अपने पद के उत्तरदायित्व के भार को हलका करने की है। अतएव मैं चाहता हूँ कि इस सम्मेलन में अपने किसी योग्य उत्तराधिकारी को नियुक्त कर दूं। मेरी इच्छा है कि तुम मुझ को इस विषय में सम्मति दो।"

अपने बाबा गुरु के इस प्रकार प्रेम तथा वात्सल्य भरे शब्दों को सुनकर मुनि श्री उदयचन्द जी ने उनके चरणों की वन्दना करते हुए उत्तर दिया

"भगवन्! मैं तो आपका एक क्षुद्र शिष्य मात्र हूँ। मैं इतने महत्वपूर्ण परामर्श देने का आप अनुभवी पुरुषों के सामने क्या अधिकार रखता हूँ।"

इस पर पूज्य श्री ने मुनि उदयचन्दजी से कहा।

"बात यह है कि युवाचार्य पद संघर्ष का कारण बन सकता है, जिसे मैं टालना चाहता हूं। यह बतलाओ कि इस विषय में सब का एक मत किस प्रकार प्राप्त किया जावे।"

इस पर मुनि श्री उदयचंद जी ने उत्तर दिया।

"सब की सम्मति लेने से यह काम नहीं होगा। आप हमारे मान्य आचार्य हैं। आप जो भी करेंगे, हम सब को वही स्वीकार होगा। मेरे विचार में इस विषय में सब मुनियों के हस्ताक्षर ले लेने चाहियें। किन्तु पदवी प्रदान करने का सब अधिकार आपको अपने हाथ में रखना चाहिये। आप अपनी ओर से जो कुछ भी करेंगे, उसमें किसी को भी आपत्ति न होगी।"

पूज्य श्री ने मुनि उदयचंद जी की इस सम्मति के अनुसार सभी मुनिराजों के हस्ताक्षर ले लिये। सभी ने प्रसन्नता से सारी सत्ता पूज्य श्री के हाथ में अर्पण कर दी। इस प्रकार पंजाब के श्रमण संघ ने अनुशासन का एक महान् एवं भव्य आदर्श उपस्थित किया।

पदवी प्रदान महोत्सव के लिये फाल्गुण शुक्ल छट विक्रम संवत् १९९९ का दिन निश्चित किया गया। इस अवसर पर जमादार की बड़ी हवेली के अन्दर मुनियों, आर्यिकाओं, श्रावकों तथा श्राविकाओं ने बड़े बड़े विद्वान् तथा तपस्वी मुनि-

राजों के व्याख्यान सुने। समारोह के अन्त में पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज ने निम्नप्रकार से पदवियां प्रदान कीं—

मुनि श्री काशी राम जी महाराज—युवाचार्य की चादर।

पंडित प्रवर मुनि श्री आत्माराम जी महाराज—उपाध्याय।

मुनि श्री कर्मचंदजी महाराज—बहुसूत्री।

मुनि श्री जड़ाउचंदजी महाराज—गणावच्छेदक।

मुनि श्री लालचंदजी महाराज—गणावच्छेदक।

मुनि श्री गणपतरायजी महाराज—गणावच्छेदक।

मुनि श्री मयारामजी महाराज एक अच्छे तथा प्रभावशाली साधु थे। उनको भी गणावच्छेदक बनाया गया।

मुनि श्री उदयचंदजी महाराज को आचार्य श्री जी ने गणी पद की चादर अर्पित की। यद्यपि मुनि श्री उदयचंद जी ने इस पद को लेने से बराबर इंकार किया, किन्तु पूज्य श्री के आग्रह तथा उपस्थित संघ की विनम्र प्रार्थना पर ध्यान देकर अन्त में उनको गणीपद स्वीकार करना ही पड़ा।

इस अवसर पर आचार्य श्री ने यह महत्वपूर्ण घोषणा की कि

"मेरे द्वारा दिये हुए यह सभी पद बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं। मैंने पदवी दान का यह जो कुछ कार्य किया है वह संघ की व्यवस्था के लिये ही किया है। उसकी सफलता आप सब की सद्भावनाओं पर ही निर्भर है। इस लिये आप सब एक सूत्र में बंध कर कार्य करो तथा इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी के शासन के गौरव को बढ़ाओ। यह सभी पद नाम के लिये नहीं, वरन् कार्य करने के लिये हैं। आप सब अपने अपने पद के प्रति सच्चे रहें।"

पूज्य श्री के इस भाषण के पश्चात् उनकी जय जयकार के शब्दों से आकाश गूंज उठा।

इस प्रकार यह महत्वपूर्ण पदवी दान महोत्सव समाप्त हुआ। महोत्सव के पश्चात् प्रायः सभी मुनिराज अमृतसर से विहार कर गए, किन्तु पूज्य श्री मुनि गैंडेराय जी आदि मुनियों सहित अपने रोग के कारण अमृतसर में ही रहे।

वास्तव में पूज्य श्री का यह समय अत्यन्त कठिन था। उनका रोग बढ़ता जाता था, किन्तु वह अपने तपश्चरण में त्रुटि नहीं होने देते थे।

पदवी दान महोत्सव से अगले वर्ष संवत् १९७० में उन्होंने नारोवाल निवासी तिलकचन्द जी ओसवाल को दीक्षा दिला कर उनको मुनि श्री नरपत राय जी महाराज का शिष्य बनाया।

आपके शासन में संवत् १९७२ में बंगा जिला जालन्धर में तीन दीक्षाएं हुईं। जम्मू राज्य के निवासी कस्तूरचन्द बैरागी को मुनि श्री गैंडेराय जी का शिष्य बनाया गया। स्यालकोट निवासी निहालचन्द जी ओसवाल को भी मुनि श्री गैंडेराय जी का ही शिष्य बनाया गया। इसके अतिरिक्त जम्मू राज्य के निवासी दीपचन्द जी बैरागी को श्री कर्मचन्द जी बहुसूत्री का शिष्य बनाया गया। निहालचन्द जी महाराज बाद में बहुत बड़े तपस्वी प्रमाणित हुए। आपने सोलह दिन तक के कई बार निर्जल व्रत किये। २१ दिन तक का भी निर्जल व्रत किया। जल के साथ तो आपने ६१ दिन तक का व्रत भी किया। तीस, पच्चीस, चालीस आदि दिनों के व्रत तो आपने अनेक बार किये।

अगले वर्ष पूज्य श्री के शासन में अमृतसर तथा अन्य स्थानों में चार दीक्षाएं हुईं—

१—पट्टी निवासी नगीनचन्द ओसवाल को मुनि पंडित नरपतराय जी का शिष्य बनाया गया।

२—मुनि श्री गैंडेराय जी महाराज ने जैजों में कपूरचन्द जी को दीक्षा दे कर उन्हें मुनि श्री नत्थूराम जी का शिष्य बनाया।

३—नवाशहर में गणी श्री उदयचन्द जी ने संडौरा निवासी रघुबरदयाल जी बैरागी को दीक्षा दी।

इन दीक्षाओं के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण दीक्षा अमृतसर में स्वयं पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने श्री शुक्लचन्द जी बैरागी को देकर उन्हें युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज का शिष्य बनाया। उनके तीनों नामों में से आचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने उनका शुक्लचंद नाम ही पसन्द किया।

यह दीक्षा आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा संवत् १६७३ को दी गई थी। वास्तव में यह दीक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। आगे चल कर यह मुनिराज जैन समाज के बड़े भारी आधार सिद्ध हुए। जिस समय पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के बाद युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज आचार्य बने तो मुनि श्री शुक्लचन्द जी को आचार्य काशीराम जी के स्वर्गवास के बाद युवाचार्य बनाया गया। किन्तु मुनि श्री शुक्लचन्द जी इतने त्यागी तपस्वी थे कि सादड़ी सम्मेलन के समय उन्होंने संघ की एकता के लिए अपने युवाचार्य पद को भी छोड़ दिया। आज कल आप अपनी अगाध विद्वत्ता के कारण पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज कहलाते हैं। अतएव अगले अध्याय में आपके चरित्र के ऊपर विस्तारपूर्वक विचार किया जाता है।

४०

मुनि शुक्लचन्द्र जी की दीक्षा

"एगे अहंमसि, न मे अत्थि कोइ
न याहमवि कस्स वि।"
एवं से एगागिणमेव
अप्पाणं समभिजाणिज्जा ॥

आचारांग सूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन ८, उद्देशक ६।

"मैं अकेला हूं। मेरा कोई नहीं है और न मैं ही किसी का हूं।" इस प्रकार मुनि अपने को अकेला ही समझे।

पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज का गृहस्थ जीवन का निवास स्थान जिला गुड़गांवा का एक दड़ौली नामक ग्राम था। यह ग्राम तहसील रिवाड़ी में रिवाड़ी नगर से लगभग बारह मील की दूरी पर है। आपके गृहस्थ जीवन के पिता पंडित बलदेव शर्मा जाति से गौड़ ब्राह्मण थे। यद्यपि वह जाति से गौड़ ब्राह्मण थे, किन्तु वह यजमान वृत्ति न करके व्यापार द्वारा ही अपने परिवार का पालन पोषण किया करते थे। वैसे आपके पास गांव में खेती योग्य भूमि भी इतनी थी कि उससे परिवार का कार्य संतोष-जनक रूप से चल जाया करता था। किन्तु आपने

व्यापार के स्वाभाविक नियम के अनुसार बाहर जाकर व्यापार करने का निश्चय किया। कुछ दिनों बाद आप अहमदाबाद जा पहुंचे। वहां आपने कटपीस का काम करना आरम्भ किया। जब आपका काम अहमदाबाद में अच्छी तरह जम गया तो वहाँ आपने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती महताब कुंवर को भी बुला लिया।

पंडित बलदेव शर्मा जी अहमदाबाद में अपना कटपीस का व्यापार शांतिपूर्वक करते थे कि उनकी धर्मपत्नी को गर्भ रहा। क्रमशः गर्भ पुष्ट होता रहा और दसवें महीने में उन्होंने विक्रम संवत् १९५२ भादों शुक्ल द्वादशी शनिवार को एक अत्यन्त होनहार बालक को जन्म दिया। ग्यारहवें दिन बालक का नाम करण संस्कार करके उसका नाम भोजराज रखा गया।

बालक के जन्म के पश्चात् घरवालों की भी खबर आने लगी कि आप आ जावें। माता पिता को भी अपनी जन्म भूमि की याद सताने लगी। अस्तु वह अहमदाबाद का कटपीस का व्यापार छोड़कर अपने गांव दड़ौली आ गए। यहां बालक को भोजराज न कह कर भवानीशंकर नाम से बुलाते थे।

अब बालक शुक्लचन्द्र द्वितीया के चन्द्रमा के समान दिन प्रति दिन बढ़ने लगा और उसकी माता उसकी बाल लीलाओं को देखकर अत्यधिक प्रसन्न रहने लगी।

गांव में जब बालक की आयु सात वर्ष की हुई तो उसका गांव में ही अक्षरारम्भ कराया गया। अध्यापक का नाम पं० भवानी शंकर होने के कारण बालक का नाम शुक्लचन्द्र रख दिया गया। क्रमशः बालक की पढ़ाई आगे चली और उसका सम्पर्क अन्य गांव के अनेक बालकों के साथ भी हो गया। दड़ौली

के जैसी शिक्षण सुविधा अन्य गाँवों में न होने के कारण अन्य अनेक गांवों के विद्यार्थी भी दड़ौली में पढ़ने आया करते थे। इन विद्यार्थियों में नाहड़ नामक गांव का एक ब्रह्मदत्त नामक विद्यार्थी भी था। शुक्लचन्द्र जी की उससे अच्छी मित्रता हो गई थी।

पंडित बलदेव शर्मा जी का कुछ दिनों गांव में रहने के उपरांत देहान्त हो गया। अस्तु आपके चाचा ने अबोहर मंडी जाकर एक बिसातखाने की दूकान खोल ली। यह दूकान आपने फर्रुखनगर निवासी लाला छज्जूमल के साजे में खोली थी। अब आपको पढ़ाई से हटाकर अबोहर मंडी की दूकान पर भेज दिया गया।

अबोहर में आपका समय प्रायः आमोद प्रमोद में ही व्यतीत हुआ करता था। उधर गांव में बुलाकर आपकी सगाई भी कर दी गई।

एक बार आपका मित्र ब्रह्मदत्त अपने गांव नाहड़ से चल कर आपके पास अबोहर मंडी में मिलने के लिये आया। अबोहर से वह आपको आग्रहपूर्वक अपने साथ अपने गांव नाहड़ ले गया।

जब आप ब्रह्मदत्त के साथ नाहड़ पहुंचे तो वहां ब्रह्मदत्त की माता ने आपके प्रति अत्यधिक प्रेम प्रदर्शित किया। किन्तु जिस समय वह आपको भोजन करा रही थी तो उसके नेत्रों में आंसू भर आए। आपने उसके नेत्रों में आंसू देख कर उससे पूछा—

शुक्लचन्द्र—माता! तुमको किस बात का दुःख है। तुम्हारे नेत्रों में आंसू क्यों आ गए?

माता—नहीं बेटा! कुछ नहीं। यों ही कुछ खयाल हो आया।

शुक्लचन्द्र—जरा मैं भी सुनूं कि किस बात का खयाल हो आया।

माता—अरे बेटा! बड़े बूढ़ों के मन में तो न जाने कितने विचार तूफान बन कर आया करते हैं। तुम उन सब को सुन कर क्या करोगे?

शुक्लचन्द्र—नहीं माता! यह बात तो आपको अवश्य बतलानी पड़ेगी। यदि आप मुझे वास्तव में ब्रह्मदत्त के जैसा समझती हैं तो आपको मुझसे अपने दु:ख को कहने में संकोच नहीं करना चाहिये।

माता—अच्छा बेटा! तेरा अत्यधिक आग्रह है तो सुन। यह जो तेरी सगाई हुड़ियाना की लड़की के साथ हुई है उस लड़की की सगाई पहले ब्रह्मदत्त के साथ हुई थी। बाद में जब ब्रह्मदत्त के पिता का स्वर्गवास हो गया तो लड़की वालों ने हमारी असहायता का ध्यान करके हमारे यहां से सगाई छुड़ा कर तुम्हारे साथ की।

शुक्लचन्द्र—अच्छा, यह बात है! तो माता, मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मैं उस लड़की के साथ कभी भी विवाह नहीं करूंगा।

माता—नहीं बेटा! यह कहानी तुमको सुनाने का मेरा यह अभिप्राय कभी नहीं था कि तुम इतनी कठोर प्रतिज्ञा कर लो।

शुक्लचन्द्र—किन्तु माता! वह मांग मेरे मित्र ब्रह्मदत्त की है। मैं उसको किस प्रकार स्वीकार कर सकता हूं?

माता ने आपको अपनी प्रतिज्ञा छोड़ने को बहुत कुछ कहा, किन्तु आपने अपने मन में अपनी इस भीषण प्रतिज्ञा पर सुमेरु पर्वत के समान अचल बने रहने का निश्चय कर लिया।

नाहड़ से आप अपने गांव दड़ौली आ गए। अब आप रातदिन इस चिंता में रहते थे कि हुड़ियाना के इस सम्बन्ध को किस प्रकार तोड़ा जावे ?

शुक्लचन्द्र जी की माता महताब कुंवर महेन्द्रगढ़, जिला पटियाला की बेटी थी। वहां की एक अन्य अग्रवाल लड़की भी दड़ौली में ब्याही थी। अतएव अपनी माता के नाते से शुक्लचन्द्र जी उसको मौसी कहा करते थे। वह भी आपको अपना भानजा मान कर आपकी बहुत खातिर किया करती थी। उसके लड़के के पास एक ऊंट था।

एक बार शुक्लचन्द्र जी ने उस मौसी के लड़के से प्रस्ताव किया कि ऊंट पर चढ़ कर कुछ सवारी की जावे। अस्तु ऊंट तय्यार कर लिया गया और यह तथा ऊंटवान दोनों उस पर बैठ कर गांव से बाहिर चले।

कुछ दूर जाने पर आपने ऊंटवान से हुड़ियाना चलने का प्रस्ताव किया। हुड़ियाना भी दड़ौली से कुछ अधिक दूर नहीं था। अस्तु आप कुछ ही घंटों में हुड़ियाना जा पहुंचे।

गांव में प्रवेश करने पर आपका एक वृद्धा मिली। आपने उससे प्रश्न किया

शुक्लचन्द्र जी—मां जी ! इस गांव की किसी लड़की की सगाई दड़ौली में हुई है ?

बुढ़िया—हां, हुई तो है। पहिले उस लड़की की सगाई नाहड़ में हुई थी। बाद में लड़के के पिता मर जाने पर उन्होंने वहां से सगाई छुड़ा कर उसकी दूसरी सगाई दड़ौली में की।

बुढ़िया बेचारी को क्या पता था कि पूछने वाला स्वय ही वह लड़का था, जिसके साथ उस लड़की की सगाई हो चुकी

थी। उसने उनको लड़की वाले का घर भी संकेत से बतला दिया। इसके पश्चात् शुक्लचन्द्र जी अपने ऊंट पर बैठे हुए उस लड़की वाले के मकान को देखते हुए उसके सामने से निकले। लड़की के पिता ने उनको देखते ही पहिचान लिया। वह उनसे बोला—

"आइये, आइये। आप इधर कैसे आ निकले ?"

शुक्लचन्द्र—मैं इधर ऊंट पर सैर करते हुए ऊंट वाले के साथ आया था कि यह मुझे इधर ले आया।

लड़की वाला—अब आप आ ही गए हैं तो कुछ देर विश्राम कीजिये और भोजन करके चले जावें।

शुक्लचन्द्र—भोजन तो हम करके आए हैं। दूसरे हम घर बिना कहे मार्ग बिना जाने इधर आए हैं। इसलिये हमारा इस समय यहां रुकना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

उसने कम से कम कुछ खा पी लेने का तो आप से बहुत कुछ आग्रह किया, किन्तु आप उसकी कोई बात स्वीकार न कर वहां से चल ही दिये। लाचार वह भी आपके साथ साथ आपको पहुंचाने की दृष्टि से चला।

आप उसके साथ साथ चले आते थे और मन में यह सोचते जाते थे कि विवाह का प्रसंग चला कर उससे किस प्रकार विवाह करने का निषेध करें। अन्त में जब वह आपको गांव के बाहिर पहुंचा कर पीछे लौटने लगा तो उसने आप से कहा

"हमारा विचार अब के फाल्गुण में विवाह करने का है। यह आप अपने घर वालों से कह दें।"

इस पर शुक्लचन्द्र जी बाले

"किन्तु मेरा विचार तो विवाह करने का नहीं है। मुझ से तो सगाई के समय पूछा तक नहीं गया। जब आपने अपनी लड़की की मंगनी नाहड़ में की थी तो आपको उसका विवाह भी वहीं करना चाहिये।

आपके यह वचन उसको बहुत बुरे लगे, और वह आपसे कहने लगा।

"इस बारे में मुझे आप से कोई भी बात नहीं करनी है। जब सब कुछ आप के चाचा से तय हो गया है तो इसमें सब कुछ वही करेंगे।"

यह कह कर वह लौट गया। उसने घर जाते ही एक पत्र दड़ौली को लिखकर उसमें शुक्लचन्द्रजी के गांव में आने तथा उनके साथ हुए वार्तालाप का सब समाचार लिख दिया। फिर उसने उस पत्र को एक आदमी के हाथ दड़ौली भेज दिया।

उधर शुक्लचन्द्र जी भी दड़ौली अपने घर आ गए। आपके आने के कुछ समय बाद हुड़याना से पत्र लेकर वह आदमी भी आ गया। आपके चाचा ने जब वह पत्र पढ़ा तो उनको बड़ा बुरा लगा। उन्होंने क्रोध में भर कर आप से पूछा।

"क्यों शुक्लचन्द्र ! तुम हुड़ियाना क्यों गये थे?"

तब आपने बात बनाते हुए उनको उत्तर दिया

"मेरा विचार न तो वहां जाने का ही था और न मैं वहां जान बूझ कर गया। मुझे वहां ऊँट वाला ले गया।"

तब आपके चाचा ने फिर पूछा।

"तो तुम वहां विवाह करने को इंकार कर आए?"

इस पर आपने थोड़ा साहस करके उत्तर दिया

"जब उस लड़की का वाग्दान नाहड़ हो चुका है तो मैं उससे कैसे विवाह कर सकता हूं ? मैंने उनसे कह दिया है कि मैं आपकी लड़की से विवाह नहीं कर सकता। आप उसका विवाह नाहड़ करें।"

आपके चचा को आपके यह शब्द सुनकर क्रोध हो आया। वह चिल्ला कर आपसे बोले।

"तो बड़े बूढ़ों के बीच में बोलने वाला तू कौन होता है ?"

उन्होंने इस प्रकार आपको बहुत डांट फटकार बतलाई। किन्तु आप सब कुछ चुपचाप सुनते रहे। आपने अपने विचार पर दृढ़ रहने का संकल्प और भी पक्का कर लिया।"

अब आप पर गांव में सब ओर से डाट फटकार पड़ने लगी। अस्तु आप दड़ौली से अबोहर मंडी चले आए और वहीं रहने लगे।

कुछ दिनों बाद ही फाल्गुण में आपका विवाह करने का नियमानुसार हुड़ियाने से पत्र आ गया। दड़ौली के आपके घर वालों ने आपके पास अबोहर मंडी समाचार भेजा कि वह आपको अविलम्ब दड़ौली भेज दें, किन्तु इस बार आपने अपने मन में कुछ अधिक साहस बटोर कर विवाह के लिए दड़ौली जाने से साफ इंकार कर दिया।

किन्तु चाचा ने आपको खूब डांट फटकार बतलाई और दड़ौली जाने के लिये जबर्दस्ती रेलगाड़ी में बिठला दिया।

अबोहर में आपके पास दो मकान थे। एक मंडी में किराये का था, जिसमें वह स्वयं रहते थे। दूसरा बस्ती से कुछ अलग था। इस मकान में सरगोधा निवासी एक धनिक गौड़ ब्राह्मण

महिला कुछ दिनों के लिये कारणवश आ कर ठहरी। शुक्लचन्द्र जी जब इस बार अबोहर में रहे तो उसके पास मकान खाली कराने की आशा से, प्रायः आया जाया करते थे। उसने आप को खोया खोया सा तथा चिंतित सा देख कर जो आप से इसका कारण पूछा तो आपने संकोच करते हुये उसे सारी घटना सुना कर कहा—

"मेरी चिन्ता का वास्तविक कारण यह है कि मैं विवाह तो करूंगा नहीं। अब इस विवाह की मुसीबत से किस प्रकार छूटूं।"

स्त्री—तुम्हारा यह सोचना तो उचित नहीं है। माता पिता संतान को जन्म देते हैं तो उसकी संतान का सुख देखने के लिये ही देते हैं। आपको उनकी इच्छा का आदर करके यह विवाह कर लेना चाहिये।

शुक्लचन्द्र—विवाह तो मैं किसी प्रकार भी नहीं करूंगा। चाहे मुझे घर से निकल कर देश विदेश भटकना ही क्यों न पड़े।

स्त्री—तब तो इसका यह परिणाम होगा कि एक बार आप को घर छोड़ कर जरूर भागना होगा।

शुक्लचन्द्र—यह तो मुझ को भी दिखाई दे रहा है।

स्त्री—ऐसी दशा में मैं आप से एक वचन लेना चाहती हूं।

शुक्लचन्द्र—वह क्या?

स्त्री—या तो आप इस विवाह को जैसे भी हो अवश्य कर लें, अथवा यदि आपको घर छोड़ कर भागना ही पड़े तो आप और कहीं न जाकर सीधे मेरे घर सरगोधा आवें। मेरा विश्वास है कि मैं आपके जीवन को व्यवस्थित करने में आपको विशेष सहायता दे सकूंगी।

शुक्लचन्द्र—खैर, आपके इस अनुरोध को मैं स्वीकार करता हूं।

इस प्रकार सरगोधा की उस महिला को आश्वासन देकर शुक्लचन्द्र जी अपनी दूकान पर अबोहर मंडी में रहने लगे। किन्तु जब उनको उनके चाचा ने विवाह के लिये गांव भेजने के लिये जबरदस्ती रेलगाड़ी में बिठला दिया तो उनको अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता हुई। शुक्लचन्द्र जी अपने चाचा द्वारा रेल में जबर्दस्ती बिठलाए जाकर अबोहर से तो चल पड़े, किन्तु गाड़ी के भटिंडा आने पर वह उसमें से उतर पड़े। उन्होंने अपने टिकट को फेंक कर वहां से सरगोधा का दूसरा टिकट लिया। सरगोधा में उस महिला ने आपकी बहुत अधिक खातिर की।

वास्तव में वह महिला एक धनी विधवा थी और उसके एकमात्र संतान उसकी एक पुत्री थी, जिसका विवाह शुक्लचन्द्र जी के साथ करके उनको वह घरजमाई बना कर रखना चाहती थी। इसीलिये शुक्लचन्द्र जी के जाने पर उसने उनके ऊपर खूब खर्च करना आरम्भ किया।

किन्तु उस विधवा का देवर उसकी सम्पत्ति का अपने को उत्तराधिकारी समझता था। अतएव वह उसकी घर जमाई रखने की योजना के विरुद्ध था। इसीलिये वह शुक्लचन्द्र जी से भी खूब जलता था।

आरम्भ में तो शुक्लचद्र जी ने उसके इस व्यवहार की उपेक्षा की, किन्तु बाद में जब आप को पता चला कि वह महिला मांसाहारिणी है तो आप को उस से घृणा हो गई। अब आपने उसके द्वारा दिया हुआ द्रव्य उसको वापिस करके सरगोधा छोड़ दिया।

सरगोधा से आप सीधे अमृतसर आए। अमृतसर में आपको अपने गांव दड़ौली का निवासी रामजी लाल नामक एक ब्राह्मण मिल गया। वह जैन श्रद्धा वाला था और दिल्ली में मुनि दीक्षा लेनी चाहता था। किन्तु उस समय उसकी माता ने उसके दीक्षा लेने में बाधा डाल दी थी। जब वह आपको बाजार में मिला तो उसने आप से कहा

रामजी लाल—कहो शुक्लचन्द्र ! यहां कहां घूम रहे हो। घर पर तो तुम्हारे परिवार वाले तुम्हारे लिये रो रो कर प्राण दे रहे हैं। अस्तु तुमको तुरन्त गांव जाकर अपने परिवार के दुःख को दूर करना चाहिये।

इस पर शुक्लचन्द्र जी ने उत्तर दिया-

शुक्लचन्द्र-घर तो अब मैं नहीं जाऊंगा। मैं अपने विवाह के सम्बन्ध में उनके विचारों को मानने को तयार नहीं हूं। यदि घर गया तो फिर वही सब चक्कर पड़ेंगे। अस्तु घर तो मैं अब नहीं जाऊंगा।

रामजी लाल-अच्छा जब तुमको घर नहीं जाना है तो तुम मेरे साथ चलो। मैं तुमको, ज्ञान, पुण्य तथा धर्म के नए नए स्थान दिखलाऊंगा। वह आपको अपने घर ले गया, जहां उसके पासके ग्रन्थों को देखकर आपको जैन धर्म का प्रथम वार परिचय मिला। बाद में वह आप को पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज के पास ले गया। पूज्य श्री ने आप को जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष इन नव तत्त्वों के सम्बन्ध में उपदेश देकर यह बतलाया कि इस अनादिकालीन भवसागर को मुनि दीक्षा लिये बिना पार नहीं किया जा सकता।

स्थानक के बाद रामजी लाल आप को अपने स्थान पर ले जाकर आप से बोला

"शुक्लचन्द्र ! जिस मार्ग पर तुम जा रहे हो वह तुम्हारे लिये कल्याणकारी नहीं है। इस प्रकार स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने से नवयुवक उच्छृंखल हो जाता है। तुमको अपना घर छोड़े लगभग तीन वर्ष हो गए। उस समय तुम्हारी आयु सतरह वर्ष की थी। अब तुम पूरे बीस वर्ष के हो चुके हो। युवावस्था बड़ी भयंकर होती है। तुमको अपनी युवावस्था को एक निश्चित मार्ग पर लगा देना चाहिये। यदि तुम ऐसा न करोगे तो संभव है कि तुम किसी पतन मार्ग के पथिक बन जाओ। इस लिये तुम को अब भी समय है। या तो तुम घर जाकर अपने को अपने घर वालों की इच्छा पर छोड़ दो, अन्यथा तुम जैन दीक्षा लेकर मुनि बन जाओ।

इस पर शुक्लचन्द्र जी बोले

"अच्छा, अभी मुझे कुछ दिन इन बातों पर विचार करने दो।"

रामजीलाल—तुम अभी अमृतसर में कितने दिन ठहरना चाहते हो ?

शुक्लचन्द्र जी—यदि आप मेरे यहां होने का समाचार घर न भेजें तो मेरा विचार यहां एक मास तक ठहरने का है।

रामजीलाल—तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो तुम यहां आनन्द-पूर्वक ठहरो। मैं तुम्हारे घर समाचार नहीं भेजूंगा।

इसके पश्चात् रामजीलाल ने आपको साधु बनाने की इच्छा से साधु प्रतिक्रमण याद करने को दिया। आपने भी उसे शीघ्र ही याद कर लिया।

अब रामजी लाल ने श्री पूज्य महाराज से शुक्लचन्द्र जी को दीक्षा देने की प्रेरणा की। क्योंकि आपके बालिग होने के कारण आपके संबंध में आपके माता पिता की अनुमति की आवश्यकता नही थी।

श्री पूज्य महाराज के सहमत होने पर रामजी लाल ने शुक्ल चन्द्र जी से कहा—

"शुक्लचन्द्र जी! अभी आप दीक्षा ले लो। दीक्षा मुझको भी शीघ्र ही लेना है, किन्तु मुझे अभी अपने पुत्र का विवाह करना है। अस्तु मैं उसका विवाह करने के उपरांत दीक्षा लूंगा।

आपके स्वीकार करने पर दीक्षा का सब सामान मंगवा लिया गया।

अब आपसे पूज्य श्री ने पूछा

"क्यों शुक्लचन्द्र! क्या तुम जैन दीक्षा लेना चाहते हो?"

आपने उत्तर दिया

"जी हां, मैं अपनी इच्छा से दीक्षा लेना चाहता हूं।"

पूज्य महाराज ने यही प्रश्न दो बार और भी किया और आपने तीनों बार एक ही उत्तर दिया।

अस्तु आपको आषाढ़ शुक्ल पूर्णमासी संवत १९७२ को दोपहर सवा तीन बजे पूज्य श्री ने स्वयं दीक्षा देकर तपस्वी मुनि रतन चन्द जी महाराज का शिष्य बनाया। अब आपको योग्य शिष्य बनाने की भावना से उनसे प्रकृति मिलाने के लिये आपको तपस्वी जी से ही पठन पाठन करवाने लगे।

मुनि रतनचन्द जी बड़े भारी तपस्वी थे। उन्होंने पैंसठ २ दिन तक के उपवास कई २ बार किये थे। पूज्य महाराज की

इच्छा थी कि आप उनकी सेवा करें। किन्तु मुनि रतनचन्द जी की आयु अधिक शेष नहीं थी। उन्होंने ६५ दिन के अंतिम उपवास के दिनों में एक पत्र लिखकर पूज्य श्री के पास रखकर उनसे निवेदन किया कि

"इस पत्र को मेरे उपवास के बाद खोला जावे।"

उस पत्र में आपने लिखा था कि मेरा ६५ दिन के उपवास के अंतिम दिन प्राणांत हो जावेगा। अस्तु उनका स्वर्गवास उनके बतलाए हुए ठीक समय पर हो गया।

मुनि रतनचंद जी का स्वर्गवास हो जाने पर आपको दूसरे साधु अपनी सेवा में लेने को फुसलाने लगे। एक दिन आपने अवसर देखकर पूज्य श्री से निवेदन किया।

शुक्लचन्द्र—गुरुदेव ! कई साधु मुझे इस बात की प्रेरणा करते हैं कि मैं उनकी सेवा में चला जाऊं। आप कृपा कर मुझे मेरे कर्तव्य कर्म का निर्देश करें।

जिस समय मुनि शुक्लचन्द्र जी ने यह शब्द पूज्य श्री की सेवा में निवेदन किये तो युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज भी वहीं उपस्थित थे।

पूज्य श्री ने आपको उत्तर दिया

"यदि तुमसे भविष्य में कोई मुनि ऐसी बातचीत करे तो अपने को युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज का शिष्य बतला दिया करना। अस्तु उस समय से आप अधिकतर युवाचार्य जी के साथ ही विहार करने लगे और संघ में भी युवाचार्य जी के ही शिष्य कहलाए।

४१

पञ्चाङ्ग सम्बन्धी विचार

एवं खु मुणी आयाणं ।
सया सु अक्खायधम्मे विधूय कप्पं
निज्झोसइत्ता ।

आचारांग सूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन ६, उद्देशक ३ ।

सदा पवित्रता के साथ धर्माराधन करने वाला, आचार पालन करने वाला मुनि धर्मोपकरण के अतिरिक्त सभी वस्तुओं का त्याग कर देता है ।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज इस प्रकार संघ के कार्य को विविध प्रकार की पदवियां देकर पूर्णतया व्यवस्थित करके अमृतसर में निवास करते रहे ।

संवत् १९७६ में उन्होंने अमृतसर में दयालचन्द जी बैरागी को दीक्षा देकर उनको तपस्वी मुनि ईश्वरलाल जी का शिष्य बनाया ।

मुनि शुक्लचन्द जी महाराज ने कुछ ही वर्षों में आगम ग्रंथों का अध्ययन कर अपनी असाधारण बुद्धि का परिचय दिया । आपने संवत् १९७८ में पूज्य श्री की आज्ञा से पसरूर में जम्मू निवासी श्यामचन्द जी बैरागी को दीक्षा दी ।

पूज्य श्री ने संवत १९८० में अमृतसर में नैनीताल निवासी कान्हचन्द जी वैरागी को दीक्षा दी। वह जाति के ब्राह्मण थे।

संवत् १९८२ में अमृतसर में लुहारासराय निवासी खूबचन्द जी वैरागी को दीक्षा देकर उनको दीपचन्द जी महाराज का शिष्य बनाया गया।

संवत् १९८३ में पूज्य श्री की आज्ञा से युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज ने दिल्ली में उत्तर प्रदेश निवासी प्रकाशचन्द जी वैरागी को दीक्षा दी।

संवत् १९८४ में अमृतसर में लुहारासराय निवासी फूलचन्द जी वैरागी को दीक्षा देकर उनको मुनि दीपचन्द जी महाराज का शिष्य बनाया।

संवत् १९८५ में पट्टी नगर में टेकचन्द जी वैरागी को दीक्षा देकर उन्हें गैंडे राय जी महाराज का शिष्य बनाया गया।

यद्यपि इस पूरे समय भर पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज स्थिर रूप से अमृतसर में विराजे रहे, किन्तु उनकी वृद्धावस्था के साथ २ उनकी निर्बलता भी बढ़ती जाती थी। अमृतसर जैन श्री संघ पूर्ण भक्ति भावना से उनकी सेवा का लाभ ले रहा था। एकाएक संवत् १९८५ में श्री पूज्य महाराज की तबियत अधिक बिगड़ गई। अब उनकी शारीरिक स्थिति अत्यधिक नाजुक हो गई। श्री पूज्य महाराज की सेवा करने के लिये युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज तथा महास्थविर मुनि गैंडे राम जी महाराज भी उन दिनों अमृतसर में ही विराजमान थे। पूज्य श्री के रोग का समाचार पाकर गणी उदयचन्द जी महाराज भी शीघ्र ही विहार करके अमृतसर आ गए।

उन दिनों एक ओर तो पूज्य श्री की रोगपरिचर्या की जा रही थी और दूसरी ओर उनका बनाया हुआ नया जैन पञ्चांग मुनियों में चर्चा का विषय बना हुआ था। पूज्य श्री का आगमाभ्यास गंभीर तथा तलस्पर्शी था। जैन ज्योतिष के तो आप प्रकाण्ड पंडित थे। चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि सूत्रों के रहस्य उनके लिये हस्तामलकवत् थे।

यह पीछे बतला दिया जा चुका है कि पूज्य सोहनलाल जी महाराज ने अपनी युवराज अवस्था में पूज्य श्री मोतीराम जी महाराज तथा मुनि संघ की इच्छानुसार नवीन जैन तिथिपत्र के निर्णय के कार्य को अपने हाथ में लिया था। उन्होंने आगम ग्रन्थों, सूर्य प्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों का गंभीर अध्ययन करने के पश्चात् एक नवीन जैन पञ्चांग की रचना भी कर दी थी। किन्तु जैन पञ्चांग बन जाने पर भी आपने उसको कार्यरूप में परिणत करने के लिये कोई आज्ञा संवत् १९७२ तक भी प्रचारित नहीं की। कुछ समय बाद श्री उपाध्याय आत्माराम जी महाराज इस सम्बन्ध में पूज्य श्री के साथ विचार विनिमय करने के लिये अमृतसर पधारे। आपने पूज्य श्री को वन्दना करके उनसे निवेदन किया—

"गुरुदेव! आपने जैन आगमों के सूक्ष्म तत्त्वों का गहन पारायण करके जैन पञ्चांग का निर्माण किया है, किन्तु सारा संघ अभी तक प्राचीन सनातनधर्मी शैली से बने हुए पञ्चांगों के अनुसार ही अपने चातुर्मास आदि मना रहा है, जो उचित नहीं है। मेरी आप से प्रार्थना है कि आप आचार्य के नाते अपने बनाए हुए जैन तिथि पत्र को प्रचारित करने की आज्ञा संघ को दें।"

इस पर पूज्य महाराज ने उत्तर दिया

"आत्माराम जी ! आपका कहना यथार्थ है। किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसको प्रचारित करने की आज्ञा देने से पूर्व मुझे इस सम्बन्ध में संघ की सम्मति भी जानने का यत्न करना चाहिये।"

पूज्य महाराज के यह शब्द सुनकर उपाध्याय जी बोले—

"मेरी तुच्छ सम्मति में तो इस विषय में आचार्य तथा उपाध्याय की सम्मति ही पर्याप्त है। प्राचीन काल में यही व्यवस्था थी। मैं इस पर पूर्णतया सहमत हूँ। अतएव आप इस सम्बन्ध में संघ में आज्ञा प्रचारित कर दें।"

इस पर पूज्य महाराज ने संघ में इस बात की आज्ञा प्रचारित कर दी कि भविष्य में सभी चातुर्मास नवीन जैन तिथि पत्र के अनुसार ही मनाए जावें।

पूज्य श्री की इस आज्ञा का मुनि संघ ने बहुसम्मति से स्वागत किया। अतएव इसके पश्चात् पंजाब के प्रायः मुनियों ने पूज्य श्री द्वारा बनाए हुए नवीन जैन तिथि पत्र के अनुसार ही चातुर्मास मनाए।

किन्तु मुनि लालचन्द जी महाराज, आर्या पार्वती जी महाराज तथा मुनि छोटेलाल जी महाराज के साधुओं ने इस नवीन जैन तिथि पत्र को न माना और उन्होंने अपने अपने चातुर्मास पुरानी शैली से ही किये। गणी उदयचन्द जी ने भी अपना चातुर्मास पूज्य श्री के नवीन जैन तिथिपत्र के अनुसार ही किया।

संवत् १९७३ के इस चातुर्मास के पश्चात् युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज, गणावच्छेदक मुनि श्री छोटेलाल जी महाराज, मुनि जड़ाऊ चन्द जी महाराज तथा मुनि हीरालाल जी महाराज रोहतक में एकत्रित हुए। वहां उन्होंने पारस्परिक वादविवाद करके यह निर्णय किया कि—

"जब हम लोग घग्घर नदी से पंजाब की ओर जाएंगे तो अपने अपने चातुर्मास जैन तिथि पत्र के अनुसार किया करेंगे, किन्तु जब हम घग्घर नदी के दूसरी ओर जाया करेंगे तो अपने चातुर्मास पुरानी परिपाटी पर ही किया करेंगे। क्योंकि उधर पुराने विचार रखने वालों की संख्या अधिक है।"

इस प्रकार समाज में पत्री परम्परा का एक भारी संघर्ष खड़ा हो जाने पर जालंधर में मुनियों का एक सम्मेलन किया गया। इस सम्मेलन में आर्या पार्वती जी महाराज तथा गणी उदयचन्द जी महाराज का जैन तिथि पत्र के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में अंतिम रूप से यह निश्चय किया गया कि—

"सभी जैन मुनि अपना अपना चातुर्मास केवल चार महीने का ही करें। क्योंकि एक तो जैन शास्त्रों के अनुसार लौंद सभी महीनों में नहीं हो सकता और दूसरे जैन मुनियों का चातुर्मास चार मास से अधिक का कभी भी नहीं होता।"

किन्तु कुछ मुनियों तथा आर्याओं ने इस निर्णय को भी न माना और पत्री तथा परम्परा इन दोनों दलों में कोई भी सामंजस्य अन्तिम रूप से न हो सका। मुनि श्री मिश्रीलाल जी महाराज ने तो इसी भावना के वशवर्ती होकर जैन तिथि पत्र के विरुद्ध सत्याग्रह भी किया, किन्तु उसमें उनको सफलता नहीं मिली।

जब पत्री का विरोध करने वालों का पक्ष पर्याप्त निर्बल पड़ने लगा तो वह सर मोती सागर तथा देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी एम०ए० जैसे प्रभावशाली गृहस्थों को पूज्य श्री के पास अमृतसर लाए। उन्होंने जब पूज्य श्री के साथ इस

विषय पर वार्तालाप करके मामले को अच्छी तरह समझा तो जैन पत्री की सराहना की। फिर उन्होंने यह भी कहा

"इस सम्बन्ध में पूज्य श्री का विरोध करने का किसी को अधिकार नहीं है। हां, उसको मानने या न मानने की सब को स्वतन्त्रता है। इस सम्बन्ध में मुनि मिश्रीलाल जी महाराज या किसी अन्य व्यक्ति का सत्याग्रह करना सर्वथा अनुचित है और वह सत्याग्रह न होकर दुराग्रह है।"

इस प्रकार पंजाब में जैन तिथि पत्र का प्रश्न कई वर्ष तक अत्यन्त गंभीर मतभेद का कारण बना रहा। इसमें विशेष बात यह भी थी कि दोनों पक्ष के आन्दोलक इस विषय की गहराई में जाकर उसको समझने का प्रयत्न न करते हुए कषाय के वशवर्ती होकर केवल आन्दोलन कर रहे थे, जो कि एक उन्नतिशील तथा जागृत समाज के अनुरूप नहीं था।

जब यह आन्दोलन मुनियों से होकर गृहस्थों में भी आ गया तो इस मतभेद को दूर करने के सम्बन्ध में पंजाब जैन सभा की ओर से कई बार प्रयत्न किया गया।

संवत् १९८१ विक्रमी में तारीख १६ जनवरी १९२४ को लाहौर में मुनि श्री लालचन्द जी महाराज की उपस्थिति में उनकी सम्मति तथा स्वीकृति से कुछ प्रतिष्ठित साधु मुनिराजों तथा १५ श्रावकों की एक कमैटी नियत की गई। लाला फत्तूराम व लाला खजांची राम को इस उपसमिति का मन्त्री बनाया गया।

इस कमैटी के आदेशानुसार मंत्रियों ने परिश्रम करके साधु मुनिराजों को जालन्धर नगर में एकत्रित करके उनका एक सम्मेलन किया। यह सम्मेलन लगभग एक सप्ताह तक चला। इस सम्मेलन में गणावच्छेदक मुनि श्री लालचन्द जी महाराज,

गणी उदयचन्द जी महाराज तथा महासती पार्वतीजी महाराज के मध्य पड़े हुए मतभेदों को दूर कर दिया गया।

इसके पश्चात् जंडियाला में फिर मुनिराजों को एकत्रित किया गया। यहां भी कुछ मतभेदों को दूर कर फिर सबको प्रयत्न करके अमृतसर में एकत्रित किया गया। यह वार्तालाप अमृतसर में कई दिन तक चलता रहा। अन्त में मुनिराजों, आर्यिकाओं तथा श्रावकों की सर्वसम्मति से २१ अप्रैल १६२४ को संवत् १६८१ विक्रमी में ही एक पूर्ण निर्णय कमैटी नियत की गई। इस कमेटी में आठ साधु श्री पूज्य महाराज की ओर से, आठ साधु विपक्ष की ओर से तथा १५ उन श्रावकों को रखा गया, जो १६ जनवरी १६२४ को लाहौर की कमैटी में रखे गए थे। इस प्रकार इस निर्णय कमैटी में कुल ३१ सदस्य रखे गए। इस समय सर्वसम्मति से यह भी तय किया गया कि इस कमेटी की बैठक २५ दिसम्बर १६२४ को होशियारपुर में की जावे। किन्तु होशियारपुर की इस बैठक में श्री पूज्य महाराज के आठों साधुओं के पहुँच जाने पर भी विपक्ष की ओर से कोई साधु महाराज नहीं आए।

इसके अगले ही दिन होशियारपुर में २६ दिसम्बर १६२४ को पंजाब जैन सभा की अन्तरंग कमेटी का अधिवेशन भी किया गया। इसके सभापति जम्मू तथा काश्मीर राज्य के भूतपूर्व सचिव दीवान बिशनदास जी सी० एस० आई०, सी० आई० ई० थे। इसमें कई नगरों के चुने हुए श्रावकों के अतिरिक्त होशियारपुर के प्रधान प्रधान श्रावक भी उपस्थित थे। इस बैठक में प्रस्ताव संख्या दो निम्नलिखित रूप में पास किया गया—

"चूंकि अभी तक भी निर्णय कमैटी ने पत्री के सम्बन्ध में

अपनी रिपोर्ट नहीं दी, अतएव निर्णय कमैटी के समस्त मुनिराजों तथा आर्यिकाओं की सेवा में यह प्रार्थना है कि वह २८ तथा २९ मार्च १९२५ से पूर्व अपनी आयोजना पूर्ण कर लें। यदि तदनन्तर पंजाब जैन सभा की आन्तरिक सभा यह निर्णय करती है और यदि निर्णय कमैटी की सम्मति हो तो एक छोटी सी सहायक उपसमिति नियत कर दी जावे, जिसमें निम्नलिखित चार सदस्य हों। यह उपसमिति पत्री सम्बन्धी प्रश्न पर सर्व सम्भव साधनों से जितना ज्ञान प्राप्त कर सके एकत्रित करके अपनी रिपोर्ट निर्णय कमैटी के सन्मुख उपस्थित करे। निर्णय कमैटी में उपस्थित होकर उस रिपोर्ट पर विचार किया जावे। और निर्णय कमैटी पूर्ण आयोजना तारीख २१ अप्रैल १९२४ के प्रस्ताव के अनुसार संग्रहीत करे। उपसमिति के लिये निम्नलिखित चार महानुभाव सदस्य बनाए ग —

१—लाला मुल्खराज जी बी० ए० गुजरांवाला,
२—लाला मोतीराम नाहर होशियारपुर,
३—बाबू हरजसराय बी० ए० अमृतसर तथा
४—लाला जगन्नाथ नाहर पट्टी।"

अब श्वेताम्बर स्थानकवासी पंजाब जैन सभा जंडियाला गुरु की ओर से इस प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणत करने के लिये उपरोक्त चारों सदस्यों के नाम अधिकारपत्र जारी करते हुए उनसे अपना कार्य शीघ्र ही आरम्भ करने की प्रेरणा की गई।

इस उपसमिति की नियुक्ति पर बाद में निर्णय कमैटी के प्रधान राय बहादुर दीवान बिशनदास साहिब तथा जेनरल सेक्रेटरी राय साहिब लाला टेकचन्द जी की व्यक्तिगत रूप में भी स्वीकृति ले ली गई।

इस उपसमिति की प्रथम बैठक २३ जनवरी १९२५ को अमृतसर में करके उसका नाम 'पत्री निर्णय कमैटी' रखा गया। इसका प्रधान लाला हरजस राय बी० ए० को तथा मन्त्री लाला मोतीराम को चुना गया।

इसके पश्चात् इस उपसमिति में आठ प्रश्न बना कर उनके उत्तर मंगवाने के लिये श्री पूज्य महाराज की सेवा में भेजा गया। इस समिति की २९ जुलाई १९२५ की गुजरांवाला की मीटिंग में सर्वसम्मति से १४५ प्रश्न तयार करके वह भी पूज्य महाराज की सेवा में भेज दिये गए। पूज्य महाराज ने १८, १९ तथा २० दिसम्बर १९२५ को चारों सदस्यों की उपस्थिति में इन प्रश्नों के उत्तर लिखवाए। बाद में उत्तर लिखने का काम उपसमिति ने अकेले लाला हरजस राय पर छोड़ दिया। उन्होंने इस कार्य को ११ मई १९२६ तक पूर्ण किया।

१ दिसम्बर १९२६ को इन उत्तरों पर विचार करने के लिये उपसमिति की बैठक लाहौर में हुई। इसमें रिपोर्ट के लिखने का कार्य लाला मुल्खराज जी बी० ए० गुजरांवाला तथा लाला जगन्नाथ जी नाहर पट्टी वालों को दिया गया। बाद में लाला मुल्ख राज ने भी अपना काम लाला जगन्नाथ नाहर के जिम्मे ही कर दिया।

किन्तु लाला जगन्नाथ नाहर द्वारा लिखी हुई इस रिपोर्ट को लाला मुल्ख राजजी बी० ए० तथा लाला हरजसराय जी बी० ए० ने पसन्द न कर उसे पक्षपातपूर्ण माना और अपनी ओर से एक स्वतन्त्र रिपोर्ट लिखी। इस रिपोर्ट को ४ जून १९२८ तक पूर्ण किया गया। इस रिपोर्त को श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा द्वारा 'रिपोर्ट पत्री निर्णय कमैटी' नाम से सन् १९२८ के अन्त में छपवा कर प्रकाशित किया गया।

इस कमैटी के विचारों का सारांश यह था-

१—हमारी सम्मति में श्री पूज्य साहिब का वीर निर्वाण सम्वत् को प्रचलित वीर निर्वाण सम्वत् से १३ वर्ष अधिक लगाना अयुक्त नहीं है।

२—हमारी सम्मति में युग के १८३१ दिन जो कि श्री पूज्य महाराज ने अपनी पत्रिका में लगाए हैं, जैन शास्त्रानुसार हैं और प्रत्यक्ष के विरुद्ध नहीं है। परन्तु हम श्री पूज्य महाराज से विनय करते हैं कि वह अगली बार छपने पर इस अधिक दिन के तिथि, घड़ी, पल, नक्षत्र करण आदि भी उसमें लगा दें।

३—हमारी सम्मति में आरे की गणना युगसंवत्सर की दृष्टि से जो श्री पूज्य महाराज ने की है वह ठीक है।

४—हमारी सम्मति में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के बोल युग की आदि के ही नव बोल हैं।

५—हमारी सम्मति में श्री पूज्य जी का लौकिक आषाढ़ को जैन श्रावण मानना ठीक है और प्रत्यक्ष के सर्वथा अनुकूल है।

६—हमारी सम्मति में श्री पूज्य सोहनलाल जी की पत्री के कुल, उपकुल, कुलापकुल और सन्निपात नक्षत्र शास्त्रों के अनुसार हैं।

७—हमारे विचार में जैन तिथिपत्रिका प्रत्यक्ष से मिलती है।

८—हमारा विचार है कि जैन शास्त्रानुसार जैन तिथि पत्रिका पर आचरण करने से संवत्सरी पर्व आदि घूमते हुए नहीं आवेंगे।

९—हमारी सम्मति में श्री पूज्य साहिब का सर्वदा चार मास का चातुर्मास करना जैन सिद्धान्त के अनुसार है।

१०—हमारे विचार में श्री पूज्य का केवल पौष और आषाढ़ को ही अधिक अर्थात् लौंद मास मानना जैन सिद्धान्तानुकूल है।

११—श्री पूज्य साहिब का चातुर्मास बैठने के पश्चात पचासवें दिन और चतुर्मासी विहार से सत्तर दिन पूर्व सम्वत्सरी करना भगवान् महावीर स्वामी की सच्ची परम्परा है।

१२—भाद्र शुक्ल पञ्चमी को सर्वदा संवत्सरी करना भगवान् महावीर की आज्ञा का यथार्थ अनुकरण है।

१३—श्रावण या और किसी मास में संवत्सरी करने की शास्त्र कदापि आज्ञा नहीं देता।

१४—प्रत्येक दो मास के पश्चात कृष्ण पक्ष में आषाढ़, भाद्र, कार्तिक, पौष, फाल्गुण और वैशाख मासों में तिथि घटाना जैन शास्त्रों के अनुसार है।

उपरिलिखित सिद्धान्त के विरुद्ध पक्खी पत्र तयार करना ठीक नहीं।

जैन शास्त्र के अनुसार जैन तिथि पत्रिका में एक युग के सूर्य के ६० मास, ऋतु के ६१, चन्द्र के ६२ और नक्षत्र के ६७ मास लगे हुए हैं और पांच संवत्सरों के सूर्य के १२० पक्ष और चन्द्र के १२४ पक्ष और ६२ अमावस्या और ६२ पूर्णिमा हैं।

अतः हमारी सम्मति में 'जो पत्रा है सो शास्त्र है, जो शास्त्र है सो पत्री है'।"

क्रमशः पत्री के सम्बन्ध में संघ में मतभेद इतना अधिक बढ़ा कि कुछ लोग दूसरा आचार्य तक बनाने का विचार करने लगे। गणी उदयचन्द जी से प्रस्ताव किया गया कि वह नए आचार्य का पद संभाल लें। किन्तु गणी उदयचन्द जी ने संघ

की एकता को बनाए रखने की दृष्टि से इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा

"हम सब पूज्य श्री के सेवक हैं। वे हमारे आचार्य हैं और हम उनके साधु। यह ठीक है कि इस समय विरोध चल रहा है और उनके साथ सम्बन्ध टूटा हुआ सा है, किन्तु हमको आचार्य श्री का सम्मान करना ही चाहिये। आचार्य श्री जी के पास के संत हमको वन्दना करें या न करें, हम अवश्य वन्दना नमस्कार के द्वारा आचार्य श्री जी का सम्मान करेंगे। आप लोगों के लिये न सही, किन्तु मेरे लिये आचार्य श्री जी के अतिरिक्त एक और वन्दना भी आवश्यक है। वह मेरे गुरुदेव को वन्दना है। गुरुदेव श्री गैंडेराय जी महाराज पूज्य श्री की सेवा में हैं। मैं उनको भी वन्दना करूंगा। गुरुदेव की विनय मैं नहीं छोड़ सकूंगा।"

गणी उदयचन्द जी के इन उद्गारों का आदर करते हुए विरोधी मत रखने वाले सभी साधु गणी जी को आगे करके पूज्य श्री की सेवा में पहुंचे। उन्होंने गणी जी के आदेशानुसार उनकी वन्दना आदि की सभी विधि की। जब इन साधुओं के साथ पत्री और परम्परा के प्रश्न-को लेकर चर्चा चली तो पूज्य श्री ने आगम पाठ निकाल कर सब साधुओं के सम्मुख रख दिये और उनके सम्बन्ध में चर्चा करने को कहा। इस पर गणी उदयचन्द जी ने सविनय निवेदन किया

"भगवन्! मैं तो श्री चरणों में प्रार्थना करने आया हूं, शास्त्रार्थ करने नहीं आया। आप जानते हैं कि यदि मैं वादी के रूप में आता तो उसका स्वरूप कुछ और ही होता। हम तो आपके सेवक हैं। हमारा काम प्रार्थना करना तथा आपका काम

उस पर ध्यान देना है। मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप वर्तमान समय की स्थिति को देखते हुए यदि पत्री का प्रचलन स्थगित कर देने की कृपा करें तो संघ में शांति स्थापित हो जावेगी।"

किन्तु आचार्य श्री ने पत्री के प्रचलन को स्थगित करना उचित न समझा और संघ में मतभेद बना ही रहा। तथापि कुछ लोग संघ में एकता स्थापित करने का प्रयत्न अब भी करते रहे।

पूज्य श्री मोहनलाल जी महाराज अपने समय के एक महान् एवं प्रधान सन्त थे। वह समाज में क्रांति करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि जैन समाज ब्राह्मण पञ्चाङ्गों के बन्धन से मुक्त होकर इस प्रकार आचरण करे कि जैन ज्योतिष का स्वतंत्र महत्त्व फिर स्थापित हो जावे। किन्तु उन्होंने देखा कि जनता प्राचीनता के पक्ष को छोड़ना नहीं चाहती और इधर शास्त्रानुसार पत्री प्रचारक दल प्रबल शक्तिशाली होता हुआ भी एकता का विरोधी नहीं था। इसी कारण पत्री तथा परम्परा पक्ष के बढ़ते हुए मतभेद को दृष्टि में रखते हुए अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस ने अपनी जेनरल कमेटी की एक बैठक २६ जून १६२६ को संवत् १६८८ में की। इसमें उसने प्रस्ताव नं० ११ के अनुसार निश्चय किया कि कुछ निश्चित व्यक्तियों का एक डेपूटेशन अमृतसर में श्री पूज्य महाराज की सेवा में उपस्थित हो कर उनसे इस विषय पर वार्तालाप करे। कांफ्रेंस ने इस डेपूटेशन का निम्न लिखित सात श्रावकों को सदस्य चुना—

१ सेठ गोकुलचन्द जी, दिल्ली
२ सेठ वर्द्धमान जी, रतलाम

३ सेठ अचलसिंह जी, आगरा
४ सेठ केशरीमल चोरडिया, जयपुर
५ भंडारी धूलचंद जी, रतलाम
६ लाला टेकचन्द जी, जंडियाला तथा
७ सेठ हीरालाल जी, खाचेरादवाला।

यह डेपूटेशन ता० ७, ८ तथा ९ अप्रैल १९३१ को अमृतसर में श्री श्री श्री १००८ पूज्य सोहनलाल जी महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ। इस डेपूटेशन के आने के अवसर पर अमृतसर में पञ्जाब भर के प्रमुख श्रावक भी आगए थे।

डेपूटेशन ने स्थानीय सद्गृहस्थों तथा अन्य स्थानों के गृहस्थों की उपस्थिति में श्री जी की सेवा में यथायोग्य नम्रतापूर्वक विनती की

"गुरुदेव! हमारी आपसे प्रार्थना है कि आप जैन तिथि पत्रिका के प्रचार को अभी स्थगित करके समाज की एकता को बढ़ाने में सहायता देने की कृपा करें और कांफ्रेंस द्वारा प्रकाशित टीप को स्वीकार करने की कृपा करें।"

डेपूटेशन का यह निवेदन सुन कर श्री पूज्य महाराज ने उत्तर दिया

"यद्यपि कान्फ्रेंस द्वारा प्रकाशित की गई रिपोर्ट में शास्त्रानुसार कई बातें विचारणीय तथा संशोधन की जाने योग्य हैं, किन्तु श्री संघ की एकता के विचार से हम अपनी संप्रदाय को इस टीप के अनुसार कार्य करने की आज्ञा देना स्वीकार करते हैं। तथापि कान्फ्रेंस का यह कर्तव्य होगा कि वह अपनी टीप को शास्त्रानुसार बनावे। इस कार्य के लिये तथा श्रद्धा प्ररूपणा, साधु समाचारी, दीक्षा आदि के सम्बन्ध में विचार करने के

लिये अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन का आयोजन करे। यह सम्मेलन किसी ऐसे स्थान पर शीघ्र से शीघ्र किया जावे, जहां पंजाब के साधु भी सुगमता से पहुँच सकें। इस सम्मेलन में इन सभी विषयों के सम्बन्ध में शास्त्रानुसार निर्णय किया जावे। यह आवश्यक है कि इस मुनि सम्मेलन में कान्फ्रेंस की वर्तमान टीप की अवधि समाप्त होने के पूर्व ही भविष्य के लिये नई टीप बनाली जावे। इस सम्मेलन में हमारे द्वारा तयार की हुई जैन ज्योतिष तिथि पत्रिका, कान्फ्रेंस की टीप तथा उपस्थित की जाने वाली किसी भी अन्य टीप अथवा तिथि पत्रिका पर विचार करके उसमें आवश्यक संशोधन किये जावें। उक्त सम्मेलन जिस पंचांग को भी बहु सम्मति से पास कर देगा कान्फ्रेंस का यह कर्तव्य होगा कि वह उसको समस्त भारत में प्रचलित करा कर उसको कार्य रूप में परिणत करे। यदि कान्फ्रेंस की ओर से एक वर्ष के अन्दर सम्मेलन के लिये प्रयत्न न किया गया तो एक वर्ष के पश्चात् हम उसकी टीप को मानने के लिये पाबन्द न होंगे।

"जैन संघ की एकता के लिए मैं पत्रा के प्रश्न को स्थगित कर देने को तयार हूं, परन्तु यह एकता लूली लंगड़ी नहीं होनी चाहिये। आप मेरे कहे अनुसार समस्त भारत के स्थानकवासी जैन मुनिराजों का एक सम्मेलन कराने का अविलम्ब प्रयत्न आरम्भ कर दें। इसी प्रकार स्थानकवासी जैन समाज के संगठन की सुदृढ़ नींव डाली जा सकती है। जब तक स्थानकवासी जैन संघ के सभी सम्प्रदायों की एक प्ररूपणा तथा एक समाचारी न होगी तब तक समाज का अन्धकारपूर्ण भविष्य प्रकाशमान नहीं बन सकेगा।"

इस पर डेपूटेशन ने पूज्य श्री से इस विषय में पूर्ण सहमति

प्रकट करते हुए उनको विश्वास दिलाया कि ऐसे सम्मेलन के लिये अविलम्ब प्रयत्न आरम्भ किया जावेगा।

डेपूटेशन ने १६ अप्रैल १६३१ के 'जैन प्रकाश' में अमृतसर की इस भेंट के पूर्ण विवरण को देते हुए समाज से अपील की कि वह 'अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन' को बुलाने के लिये पूर्ण शक्ति से प्रयत्न करे।

वास्तव में अभी तक यह योजना काफी दिनों से ढीली ढाली सी चल रही थी। लोगों के मन में विचार तो था, किन्तु उसे कार्य रूप में परिणत करने का साहस किसी को भी नहीं था। समाज को इस सम्बन्ध में एक गहरी प्रेरणा की आवश्यकता थी, जो उसको ठीक समय पर श्री पूज्य सोहनलाल जी महाराज से मिल गई। इस प्रेरणा के बाद समाज में वास्तव में बल आ गया, और यह योजना बद्धमूल हो गई। अब सारे समाज में अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन बुलाने का आन्दोलन आरम्भ हो गया।

४२

प्रधानाचार्य

न वि मुंडिएण समणो, न ओंकारेण बंभणो ।
न मुणो रण्णवासेन, न कुसचीरेण तावसो ॥

उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन २५, गाथा ३१

सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता, 'ओ३म्' का जप कर लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। निर्जन बन में रहने मात्र से कोई मुनि नहीं होता और कुशा के बने वस्त्र पहिन लेने से कोई तपस्वी नहीं हो सकता।

अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फ्रेंस का डेपूटेशन अमृतसर से आते ही अपने काम में लग गया। उसने अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस की एक जेनरल कमेटी बुलाई। कांफ्रेंस की कमेटी का यह अधिवेशन ११ तथा १२ अक्तूबर १९३१ को दिल्ली में हुआ। इसमें कमेटी ने यह स्वीकार किया कि 'अखिल भारतीय साधु सम्मेलन' को बुलाने की वास्तव में बड़ी भारी आवश्यकता है। अतएव उसने इस सम्मेलन को सफल बनाने के लिये एक उपसमिति बना दी। इस बैठक में यह भी तय किया गया कि अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन यथासंभव फाल्गुण संवत् १९८९ में किया जावे।

इसके अतिरिक्त यह भी तय किया गया कि कांफ्रेंस की अगली बैठक अप्रैल १९३२ में हो, जिसमें उक्त उपसमिति द्वारा बनाई हुई योजना पर विचार किया जावे। उपसमिति का संयोजक आगरा के सेठ अचलसिंह को बनाया गया।

सेठ अचलसिंह ने कांफ्रेंस के इस निश्चय के सम्बन्ध में जैन पत्रों में विज्ञप्ति भी प्रकाशित करा दी, जिससे सारे समाज में उत्साह की एक लहर दौड़ गई।

अब तो भारत के सभी प्रान्तों में प्रान्तीय सम्मेलन करके इस विषय में प्रयत्न किया जाने लगा। सर्व प्रथम राजकोट प्रांतीय साधु सम्मेलन तथा पाली माड़वाड़ मुनि सम्मेलन करने का निर्णय किया गया। इसी बीच में माघ सुदी १३ संवत् १९८८ तदनुसार २० फर्वरी १९३२ को साधु सम्मेलन समिति सभा ने जयपुर की अपनी बैठक में निश्चय किया कि अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन के लिये अजमेर के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया जावे, क्योंकि अजमेर भारत के मध्य भाग में है, जहां भारत के सभी भागों के जैन मुनि विहार करके पहुँच सकते हैं।

सम्मेलन का स्थान निश्चित हो जाने से अब भारत के सभी प्रान्तों के इस सम्बन्ध में प्रयत्न तेज हो गए। अब जनता में इस सम्बन्ध में उत्साहपूर्वक प्रचार किया जाने लगा।

अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन करने का प्रश्न जब गणी उदयचन्द जी के सामने आया तो वह बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु उन्होंने अपने मन में विचार किया कि

"जब तक प्रथम पंजाब प्रांत के मुनियों का एक सम्मेलन नहीं हो जाता, तब तक अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन सफल नहीं हो सकेगा। यदि प्रत्येक प्रान्त के असंगठित एवं

अव्यवस्थित मुनि वृहत् सम्मेलन में यों ही जाकर एकत्रित हो गए तो वह वहां किसी भी निर्णय पर नहीं पहुँच सकेंगे।"

अपने मन में यह विचार करके आप इस योजना के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिये पूज्य श्री की सेवा में अमृतसर गए। गणी जी ने पूज्य श्री की सेवा में बहुत दिनों तक ठहर कर उनके साथ अखिल भारतीय तथा प्रान्तीय दोनों प्रकार के मुनि सम्मेलनों के विषय में कई कई बार गम्भीर विचार विमर्श किया। पूज्य श्री ने दोनों ही सम्मेलनों के सम्बन्ध में अपने अनुभवपूर्ण विचार बतलाए।

बहुत कुछ विचार विमर्श के उपरान्त यह निश्चय किया गया, कि पंजाब के मुनियों का एक सम्मेलन चैत्र कृष्ण ६, ७ तथा ८ संवत् १९८८ को होशियारपुर में किया जावे। इस समाचार से पंजाब के मुनि संघ में उत्साह की लहर दौड़ गई। समय कम था। अतएव प्रायः मुनिराज यह समाचार पाकर शीघ्रतापूर्वक होशियारपुर आने लगे। सर्वश्री उपाध्याय आत्माराम जी महाराज, युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज, गणी उदयचन्द जी महाराज, पंडित श्री नेकचन्दजी महाराज, पंडित विनयचन्द जी महाराज, पं० नरपतराय जी महाराज, पंडित श्री रामस्वरूप जी महाराज आदि मुनि अपनी अपनी शिष्य मण्डली के साथ होशियारपुर पधारे। इस प्रकार यह सम्मेलन पंजाब के इतिहास में पहिला ही था।

सम्मेलन का कार्य प्रारम्भ होने पर सर्वसम्मति से गणी उदयचन्द जी महाराज को उसका सभापति चुना गया। उन्होंने अपने सफल नेतृत्व में सब कार्य शान्तिपूर्वक चलाया। पत्री और परम्परा के कटुतापूर्ण लम्बे संघर्ष के पश्चात् दोनों पक्ष के

मुनि प्रथम वार होशियारपुर सम्मेलन में ही एकत्रित हुए। संघ में सभी निर्णय सर्वसम्मति से किये गए।

इस सम्मेलन में अनेक प्रस्ताव पास किये गए, जिनमें से कुछ मुख्य मुख्य प्रस्ताव यह थे—

प्रस्ताव १. श्री सुधर्मागच्छाचार्य श्री मुनि पूज्य सोहन लाल जी महाराज संघ के परम हितैषी तथा दीर्घदर्शी हैं। आपकी अत्यन्त कृपा और विचार शक्ति द्वारा श्रीमती महासभा जागृत हुई है। आपश्री की कृपा से अखिल भारतीय जैन कांफ्रेंस ने उत्साहित होकर वृहत् मुनि सम्मेलन की नींव डाली और सब प्रान्तों में जागृति की, जिसका विवरण जैन प्रकाश पत्र में देख सकते हैं। पंजाब संघ जो कुछ समय से बिखरा हुआ था, आपश्री की कृपा से ही प्रेम सूत्र में बँध गया। जो परस्पर तर्क वितर्क में कटिबद्ध था आज सहानुभूति तथा जैन धर्म के प्रचारकार्य में लगा हुआ दिखलाई दे रहा है। आपश्री की कृपा से काठियावाड़, मारवाड़ और गुजरात कच्छ, दक्षिण प्रान्त में जो कई गच्छ परस्पर बिखरे हुए थे वह भी प्रेम सूत्र में संगठित हो गए हैं। उक्त महाचार्य के गुणों का अनुभव करते हुए उनको हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है।

पंडित मुनि राम स्वरूप जी द्वारा उपस्थित किये हुए इस प्रस्ताव का सर्वसम्मति से पास किया गया।

प्रस्ताव २. अखिल भारतीय कान्फ्रेंस की ओर से प्रकाशित पत्री पत्र की प्रतिरूप पत्री पत्र प्रकाशित किया जाना चाहिये।

प्रस्तावक —उपाध्याय आत्माराम जी महाराज

अनुमोदक—श्रीमती प्रवर्तिनी आर्या पार्वती जी महाराज

प्रस्ताव ३. सब आचार्यों के ऊपर एक प्रधानाचार्य होना चाहिये।

इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पास कर, उसे बृहत् सम्मेलन में उपस्थित करने का निश्चय किया गया।

प्रस्ताव ४. प्रत्येक गच्छ में एक आचार्य होना चाहिये और सब आचार्यों के ऊपर एक 'प्रधानाचार्य होना चाहिये। उसके नीचे मुनियों की एक कौंसिल होनी चाहिये।

युवाचार्य काशीराम जी महाराज के इस प्रस्ताव को सर्व-सम्मति से पास करके बृहत्सम्मेलन में उपस्थित करने का निश्चय किया गया।

इसके अतिरिक्त मुनियों, आर्याओं तथा श्रावकों के संगठन तथा व्रतपालन आदि के सम्बन्ध में भी अनेक प्रस्ताव पास किये गए। होशियारपुर सम्मेलन का लाभ उठाकर पंजाब के मुनि संघ को पूर्णतया सुसंगठित तथा नियमबद्ध बना लिया गया। वर्तमान आचार्य के वार्षिक पाट महोत्सव को भी मनाने का निश्चय किया गया। यह भी निश्चय किया गया कि अजमेर सम्मेलन में पत्री का प्रश्न उपस्थित हो तो पंजाब के मुनि उसका विरोध न करें। आपस के संघर्ष को वहां न छेड़ा जावे। इस बात को सब मुनियों ने मान लिया और कहा कि हम पत्री का विरोध नही करेंगे। उन्होंने यह भी निर्णय किया कि मुनि सम्मेलन का बहुमत से किया हुआ प्रत्येक निर्णय उनको मान्य होगा।

इस सम्मेलन में अजमेर में होने वाले अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन में जाने के लिये पांच प्रतिनिधियों का निर्वाचन भी किया गया।

होशियारपुर सम्मेलन के पश्चात् वहां से सभी प्रतिनिधियों ने अजमेर की ओर विहार कर किया। मार्ग पर्याप्त लम्बा था। कहां पंजाब और कहां मारवाड़ ? बड़ी लम्बी और कठोर यात्रा थी। किन्तु जैन मुनि आत्मिक कर्तव्य की तुलना में शारीरिक कष्ट की चिन्ता नहीं किया करते। प्रतिनिधियों में गणी उदयचन्द जी ही सब से वृद्ध थे। उनका शरीर रोगी भी था। किन्तु उनका मन रोगी नहीं था। अतएव उपाध्याय आत्माराम जी महाराज तथा युवाचार्य काशीराम जी महाराज के समान तेज न चलते हुए भी वह अपने मार्ग पर आगे बढ़ते ही गए। प्रायः प्रतिनिधियों ने १९८८ का चातुर्मास अजमेर के मार्ग में ही किया। गणी उदयचन्द जी ने यह चातुर्मास रामपुरा में किया।

चातुर्मास समाप्त होने पर उन्होंने फिर अजमेर की ओर विहार कर दिया। आप लोग मालेरकोटला, नाभा, कैथल, दिल्ली, अलवर, जयपुर तथा किशनगढ़ में धर्म प्रचार करते हुए अजमेर पहुंचे।

अजमेर की जैन तथा अजैन सभी जनता इस अवसर पर अत्यधिक प्रसन्न थी। इसको इस बात का गौरव था कि दूर दूर देश के मुनिराज मार्ग की अनेकानेक भयंकर कठिनाइयां सहन करते हुए अजमेर पधारे थे। गुजरात, कच्छ, काठियावाड़, मारवाड़, मेवाड़, पंजाब, उत्तरप्रदेश और मालवा आदि सभी प्रान्तों के मुनिराज अजमेर में आ रहे थे। वास्तव में स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय का विराट् रूप अजमेर में ही देखने को मिला। उसको देखकर इतिहासकार वल्लभी तथा मथुरा के जैन सम्मेलनों को स्मरण कर रहे थे। लगभग हज़ार पन्द्रह सौ वर्ष के बाद अजमेर को वल्लभी तथा मथुरा के जैसा सम्मान प्राप्त हुआ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष के बाद सर्व प्रथम पटना में, फिर लगभग ३०० वर्ष बाद मथुरा में और वीर निर्वाण संवत् ६८० में काठियावाड़ की राजधानी वल्लभी नगरी में श्री देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण के नेतृत्व में जैन साधु सम्मेलन हुआ था। इस वल्लभी सम्मेलन में ही जैन सूत्र ग्रन्थों को लिपिबद्ध किया गया था।

वल्लभी नगरी के बाद लगभग १५०० वर्ष के अन्तराल से समस्त आर्यावर्त के स्थानकवासी जैन समाज के सभी गच्छ, पेटासम्प्रदाय आदि के प्रतापी पूज्यवर जैन समाज के उत्थान तथा ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि, विचार विनिमय तथा बंधारण नियत करने के लिए अजमेर की भूमि पर एकत्रित हुए।

इस समय समस्त भारत में स्थानकवासी सम्प्रदाय के मुनियों की संख्या यह थी—

मुनि	आर्या जी	कुल संख्या
४६३	११३२	१५६५

उनमें से अजमेर सम्मेलन में उपस्थिति निम्नलिखित थी—

उपस्थित मुनि	उपस्थित आर्या जी	प्रतिनिधि मुनि
२३८	४०	७६

सम्मेलन चैत्र कृष्णा दशमी बुधवार संवत् १९८९ को प्रातःकाल ८॥ बजे आरम्भ हुआ। अंग्रेजी हिसाब से इस दिन ५ अप्रैल १९३३ थी। यह अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन लाखनकोटरी ममैयों के नौहरे में भीतर के चौक के वट वृक्ष के नीचे किया गया था। कुछ थोड़ी सी खुली बैठकों के बाद सम्मेलन को गृहस्थों के लिये बंद कर दिया गया। अन्त में

पन्द्रह दिन के वादविवाद के पश्चात् चैत्र शुक्ल १० संवत् १९९० को सम्मेलन की पूर्णाहुति की गई। इस दिन अंग्रेजी हिसाब से १९ अप्रैल १९३३ थी।

पूज्य सोहनलाल जी महाराज के शासन में इस समय कुल ७३ मुनि तथा ६० आर्या जी मिला कर कुल १३३ त्यागी-वर्ग था। इनमें से २५ मुनि पंजाब से ४८० मील पैदल चल कर सम्मेलन में पधारे थे। इन २५ मुनियों में निम्नलिखित पांच निर्वाचित प्रतिनिधि थे—

१ गणी उदयचन्द जी महाराज,
२ उपाध्याय आत्माराम जी महाराज,
३ युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज,
४ मुनि श्री मदनलाल जी महाराज तथा
५ मुनि श्री रामजीलाल जी महाराज।

उपरोक्त ७६ प्रतिनिधि समान आसनों पर गोलाकार में बैठे। उनके बीच में हिन्दी तथा गुजराती लिखने वाले मुनि बैठे थे। सम्मेलन में छब्बीसों सम्प्रदायों के प्रतिनिधि जैन धर्म के गौरव का पुनरुद्धार करने के लिये एकत्रित हुए।

मंगलाचरण के पश्चात् गणी उदयचन्द जी महाराज को सर्वसम्मति से इस सम्मेलन का शान्तिरक्षक चुना गया। आपके अतिरिक्त शतावधानी मुनि रत्नचन्द जी महाराज को भी उनके साथ चुना गया। आपने इंकार किया और डट कर इंकार किया। परन्तु इच्छा न होते हुए भी आप लोगों को यह पद स्वीकार करना ही पड़ा।

इस सभा की हिन्दी कार्यवाही को लिखने का कार्य उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज तथा गुजराती कार्यवाही के लिखने

का भार लघु शतावधानी मुनि सौभाग्यचन्द जी महाराज को दिया गया। उनकी सहायता के लिये मुनि श्री मदनलाल जी महाराज तथा मुनि श्री विनयऋषि जी महाराज को नियत किया गया।

आरम्भ में शतावधानी मुनि रत्नचन्द जी महाराज ने मंगलाचरण किया। फिर सम्मेलन के कार्य को सुगम बनाने के लिये २१ मुनिवरों की एक विषय निर्वाचिनी समिति बनाई गई। इसका कोरम ११ का रक्खा गया। विषय समिति की बैठक रात्रि को की जाती थी। सम्मेलन में निम्न लिखित निश्चय किये गए।

१—भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की समान समाचारी का प्रवर्तन एक सूत्र में ग्रथित करने तथा सम्मेलन के प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधि २७ मुनियों की एक समिति बनाई गई। इसमें पूज्य आचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज के निम्न लिखित चार प्रतिनिधि रक्खे गये—

१ युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज,
२ गणी उदयचन्द जी महाराज,
३ उपाध्याय आत्माराम जी महाराज तथा
४ मुनि श्री मदनलाल जी महाराज।

इस मुनि समिति के प्रति वार निम्नलिखित पांच मंत्री चुने गए—

काठियावाड़ के मंत्री—शतावधानी मुनि रत्नचन्द जी महाराज,
पञ्जाब के मंत्री—उपाध्याय आत्माराम जी महाराज,
मारवाड़ के मंत्री—मुनि श्री छगनलाल जी महाराज,

दक्षिण के मंत्री—पंडित मुनि श्री आनन्दऋषि जी महाराज,
मेवाड़ के मंत्री—मुनि श्री हस्तीमल जी महाराज ।

इस समिति के कार्य के लिये विस्तृत नियम भी बनाए गए।

इसके अतिरिक्त एक ज्ञान प्रचारक मण्डल की स्थापना भी पृथक् पृथक् क्षेत्रों के लिये की गई। इसके नियम भी विस्तार पूर्वक बनाए गए।

अजमेर के इस अखिल भारतीय साधु सम्मेलन को वयोवृद्ध पूज्य आचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने निम्न लिखित संदेश भेजा—

"जिन शासन हितैषी उपस्थित गच्छाधिपति तथा अन्य प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर

वन्दे जिनवरम्

'लगभग दो वर्ष पूर्व अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस का डेपूटेशन मेरे पास टीप के सम्बन्ध में अमृतसर आया था। उस समय मुझे अपनी चिर-कालीन मनोकामना उसके सन्मुख प्रकट करने का अवसर मिला। चार तीर्थ के कल्याण का साधन शासनाधार मुनिराजों का जो काल और दूरी के कारणों से शताब्दियों से भिन्न भिन्न विचार रख रहे हैं उनका एक स्थान पर एकत्रित होकर आपस में वार्तालाप करना और संघटित करने का मार्ग नियत करना ही मेरी मनोकामना थी। मुझे यह अनुभव करके अतिशय आनन्द हो रहा है कि शासन हितैषी और चतुर्तीर्थ प्रेमियों के अथक परिश्रम से वह शुभ दिन आ ही पहुंचा। अपनी वृद्धावस्था तथा शारीरिक निर्बलता के कारण मैं स्वयं इस सम्मेलन में सम्मिलित हो कर आपकी विचार चर्चा में सहयोग

देने में असमर्थ हूं और इस प्रकार मैं पारस्परिक साक्षात्कार का लाभ नहीं उठा सकता, तथापि मैंने अपने युवाचार्य और अन्य प्रतिष्ठित मुनिराजों को वीर शासन के कल्याण साधनों के चिन्तन में सहयोग देने के लिये भेजा है।

'इस सम्मेलन की ओर न केवल समस्त भारत के साधुमार्गी चतुर्विध संघ की, वरन् जैन धर्म की अन्य सम्प्रदायों की दृष्टि भी उत्सुकता से लगी हुई है। सम्मेलन से यह प्रबल आशा है कि वह सर्व संघ को एक धारा में प्रवाहित करने और जैन सिद्धान्त के आधार पर श्रद्धा और आचरण में एकयता लाने का कारण बनेगा। क्षमाश्रमण देवर्द्धि गणी ने जो कार्य डेढ़ हजार वर्ष पूर्व आरम्भ किया था, उस कार्य के पुनरुद्धार का भार भी आप पर होगा। सम्मेलन की परख उसके कार्यों से की जावेगी। साधु वर्ग जितना ऊंचा उठ सकेगा, उतना ही संघ के अन्य अंग उठ सकेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके विचार मंथन के फलस्वरूप श्री संघ का भविष्य अपूर्व मनोहर तथा उज्वल होगा तथा आप महानुभावों का सुदूरवर्ती देश देशान्तर का पर्यटन तथा उनके परिषहों का सहन करना शासन तीर्थ की वास्तविक यात्रा सिद्ध होगा।"

आपके इस संदेश को साधु सम्मेलन ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सुना।

इस सम्मेलन के लिये इतने अधिक मुनिराजों के अतिरिक्त उनके दर्शनार्थी ५० सहस्र के लगभग स्त्री पुरुष भी अजमेर आए थे। कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं को बीस सहस्र जनता के आने की आशा थी और इसी अन्दाज से उसने व्यवस्था भी की थी, किन्तु बाद में उसे अपनी सभी योजना में परिवर्तन करना पड़ा। लोंकानगर नाम से एक सुन्दर नगर बसा दिया गया

था। रात को तो उसकी छटा निराली ही प्रतीत होती थी। बिजली की रोशनी, दरवाजों तथा तम्बुओं के गुम्बज दूर से बड़े भव्य दिखलाई देते थे। लोंकानगर में लोग विशेष आनन्द का अनुभव करते थे। इस मेले में समाज के दस लाख से अधिक रुपये खर्च हुए। कहा जाता है कि जितना रुपया लगा उतना काम नहीं हुआ, किन्तु समाज की विकट परिस्थिति में उतना काम भी कम नहीं था। भिन्न भिन्न आचार्यों की पारस्परिक एकता इस सम्मेलन की एक भारी विशेषता थी। इससे नवयुवकों में भी क्रांति की एक नई लहर उत्पन्न हो गई। साधु सम्मेलन के साथ साथ कांफ्रेंस तथा नवयुवकों के सम्मेलन भी बड़ी धूमधाम से किये गए। यदि यह सम्मेलन न होते तो नवयुवकों को समाज की सच्ची स्थिति का ज्ञान न होता। इतने मुनिराजों के दर्शन क्या कोई मनुष्य सहस्रों रुपये खर्च करके भी अपने कुटुम्बियों को करवा सकता था ?

साधु सम्मेलन द्वारा अपने प्रथम प्रस्ताव में जो मुनिसमिति की स्थापना की गई थी, वह एक क्रांतिकारी कार्य था। वास्तव में यहीं से युगान्तर आरम्भ होता है। इस समय तक स्थानक-वासी समाज में पृथक् पृथक् आचार्यों के अनेक सम्प्रदाय थे। आरम्भ में इनकी संख्या बाईस थी, जो बाद में बढ़ कर लगभग बत्तीस तक पहुंच गई। उनमें आपस में एक दूसरे के साथ नहीं के बराबर सम्बन्ध था। यदि किसी को समस्त मुनि संघ से कुछ कहना हो या उनसे कुछ जानना हो तो तब तक इसका कोई भी साधन नहीं था। मुनि समिति की स्थापना करके साधु सम्मेलन ने संगठन का प्रमाण दिया।

इस समिति के लिये पन्द्रह कार्य नियत किये गए। इनमें कुछ कार्य तो ऐसे थे, जिनसे समिति का सिलसिला बना रहे

और वह एक युगान्तरकारी स्थायी संस्था बन सके। उसके शेष कार्य साधुओं के उच्च आचरण सम्बन्धी थे।

साधुओं का संगठन करना तथा सम्मेलन के प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करने का कार्य इसी समिति को दिया गया।

सम्मेलन का कार्य आनन्दपूर्वक चलता रहा। बीच-बीच में एक से एक भयंकर विघ्न बाधायें आईं, किन्तु गणी जी के कुशल नेतृत्व में सब समस्याएं सुलझती रहीं और सम्मेलन की गाड़ी बराबर आगे बढ़ती रही।

इस सम्मेलन की सब से अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसमें श्रद्धेय जैनाचार्य पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज को सर्वसम्मति से सम्मेलन का प्रधान चुनकर उनको प्रधानाचार्य बनाया गया। पूज्य श्री के चरणों में अखिल भारतीय जैन समाज की यह श्रद्धांजलि भारत के सभी मुनिराजों के लिये सम्मान तथा सौभाग्य का प्रतीक थी। यदि पंजाबी साधु तथा पंजाब कान्फ्रेंस के कार्यकर्ता राय साहब टेकचन्द तथा रतनचंद जी अमृतसरी आदि इसमें उत्साहपूर्वक भाग न लेते तो सम्मेलन सफल होना कठिन था।

इस सम्मेलन में जैन तिथि पत्र के प्रश्न को एक उपसमिति के सुपुर्द करके सम्मेलन को समाप्त किया गया। वास्तव में इस सम्मेलन के द्वारा जैन मुनियों की एकता को एक दृढ़ आधार मिल गया।

सम्मेलन के पश्चात् पंजाब के मुनिराज फिर अपने प्रथम मार्ग से पंजाब की ओर लौट पड़े।

अजमेर के अखिल भारतीय मुनि सम्मेलन का समाचार जब अमृतसर में पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज को सुनाया गया तो वह सरल भाव से कहने लगे

"मुझे तो वृद्धावस्था के कारण यह आचार्य पद ही भार स्वरूप प्रतीत हो रहा है। अब यह प्रधानाचार्य का नवीन उत्तर-दायित्व तो मुझे और भी भार में दबा देगा। किन्तु एकता के लिये चतुर्विध संघ की सहायता से सहने की शक्ति आ सकती है।"

संवत् १९९० में आपने अमृतसर में उत्तर प्रदेश सिलसली निवासी हुकुमचन्द जी बैरागी को दीक्षा दिलाकर उन्हें युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज का शिष्य बनाया। हुकुमचन्द जी केहरी श्रावक के पुत्र थे और जन्म से अग्रवाल जैन थे।

संवत् १९९१ में वसंत पंचमी के अवसर पर आपने अमृतसर में जयपुर राज्य के निवासी सुदर्शन बैरागी को दीक्षा दी।

संवत् १९९१ की माघ सुदी पंचमी को आपने अमृतसर में दीक्षा देकर उनको मुनि पण्डित शुक्लचन्द जी महाराज का शिष्य बनाया। यह आगे चलकर बड़े भारी तपस्वी प्रमाणित हुए।

इसके पश्चात् कुछ मास के बाद आपका स्वास्थ्य फिर निर्बल पड़ने लगा। किन्तु अजमेर के साधु सम्मेलन के उत्साह के कारण समाज के कार्य में लेशमात्र भी शिथिलता नहीं आई। पूज्य महाराज अपने स्वास्थ्य पर ध्यान न देते हुए भी अपने उपदेश द्वारा सब का बराबर कल्याण करते रहे।

अजमेर सम्मेलन द्वारा तिथि निर्णय करने का काम जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी कान्फ्रेंस को सौंप दिया गया था।

उसने अपनी जेनरल कमैटी की बैठक २० सितम्बर से २३ सितम्बर १६३३ तक करके निम्नलिखित ग्यारह सदस्यों की एक कमैटी इस विषय पर विचार करने के लिये बनाई—

१ राय साहिब टेकचन्द जी जंडियाला गुरु
२ सौभाग्यमल जी मेहता जावरा
३ दीवान बहादुर बिशनदास जी
४ चंदनमल जी कोचर जोधपुर
५ चन्दनमलजी भूथा—सतारा
६ जेठमल जी सेठिया बीकानेर
७ चन्दूलाल छगनलाल शाह अहमदाबाद
८ धूलचन्द जी सुराणा पीपाड़
९ धूलचम्द जी भण्डारी रतलाम
१० लाला हरजसराय जी अमृतसर
११ लाला मुंशीरामजी भावड़ा जीरा (पंजाब)

उमरशी भाई कच्छ देशलपुर वाले तथा जामनगर वाले श्री वीर जी भाई को भी ज्योतिष शास्त्र का विशेषज्ञ होने के नाते इस 'तिथि निर्णायक उपसमिति' की बैठक में उपस्थित होने का निमन्त्रण भेजा गया।

इस उपसमिति की बैठक १० तथा ११ नवम्बर १६३३ को जयपुर में की गई, जिसमें कुल ७ सदस्य आए।

इस बैठक में निश्चय किया गया कि इस सम्बन्ध में ज्योतिष विषय के ज्ञानी मुनिराजों तथा गृहस्थ ज्योतिषियों का मत प्राप्त करके निर्णय किया जावे। किन्तु तब से आज तक इस विषय में कोई भी उल्लेखनीय प्रगति नहीं बन सकी है।

४३

आत्म शक्ति

गुणेहिं साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहू गुण मुञ्चऽसाहू ।
वियाणिआ अप्पगमप्पएणं
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥

दशवैकालिक सूत्र, अध्ययन ६, उद्देशक ३, गाथा ११

गुणों से साधु होता है और अगुणों से असाधु होता है। अतएव हे मुमुक्षु ! सद्गुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़. जो साधक अपने आत्मा द्वारा अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर राग और द्वेष दोनों में सम भाव रखता है वह पूज्य है।

संसार में सदा से ही शक्ति की पूजा होती आई है। किन्तु शारीरिक शक्ति को बुद्धि की शक्ति के सामने सदा ही पराजय स्वीकार करनी पड़ती है। सिंह, हाथी, अजगर जैसे महापराक्रमी प्राणी भी मनुष्य की बुद्धि के सामने हार मानते हैं, किन्तु आत्मिक शक्ति के सामने मनुष्य की बुद्धि की शक्ति भी पराजित हो जाती है। साधु महात्माओं की आत्मिक शक्ति के चमत्कार के उदाहरण शास्त्रों में अनेक भरे पड़े हैं। चण्डकौशिक सर्प ने अपने अत्याचारों से गांव वालों का मार्ग चलना बन्द कर

दिया था, किन्तु भगवान महावीर स्वामी की आत्मिक शक्ति के सामने उसने सिर झुका कर हिंसा करना एक दम छोड़ दिया। भगवान् पार्श्वनाथ का जीव अपने मरुभूत हाथी के भव में अत्यन्त प्रचण्ड था, किन्तु वह अपने पूर्व भव के स्वामी राजा अरविन्द को मुनि रूप में देखते ही जातिस्मरण हो जाने तथा अरविन्द की आत्मिक शक्ति के कारण इतना शान्त हो गया कि पूर्णतया संयम का पालन करने लगा। साधु महात्माओं द्वारा शाप तथा अनुग्रह की घटनाओं से तो प्राचीन शास्त्र भरे पड़े हैं। हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज भी आत्मशक्ति का एक अक्षय भण्डार थे। यद्यपि वह यंत्र, मंत्र तथा तंत्र के साधन से एक दम दूर थे, किन्तु उनके तप की शक्ति इतनी अधिक बढ़ी हुई थी कि न केवल उनमें, वरन् उनके अनेक शिष्यों में भी अनेक प्रकार की लब्धियां उत्पन्न हो गई थीं। यहां तक कि उनमें भविष्य की बात को बतलाने तक की भी शक्ति थी। इस अध्याय में उनके जीवन की कुछ ऐसी ही घटनाओं का वर्णन करने का यत्न किया जावेगा।

× × × ×

एक गांव में कुछ दुष्ट व्यक्तियों ने अफवाह फैला दी कि जैन साधु बच्चों को ले जाते हैं। भला कहां तो अचौर्य महाव्रत के पालक जैन मुनि, जो माता पिता तथा अभिभावकों की अनुमति के बिना अल्पवयस्क बालकों को दीक्षा तक नहीं देते और कहां उन पर चोरी का अपवाद! किन्तु दुष्ट लोग अपने कार्यों में उचित अनुचित का विचार नहीं किया करते। पूज्य श्री एक बार सायंकाल के समय किसी गांव में प्रवेश करने वाले थे कि गांव से तीन व्यक्ति आते हुए दिखलाई दिये। उन्होंने जो जैन मुनियों को गांव की ओर जाते देखा तो क्रोध में भर कर कहने लगे

"अरे ! वह देखो ! बच्चे उड़ाने वाले जैन साधु गांव की ओर जा रहे हैं। इनको गांव में घुसने से रोकना चाहिये।"

आपस में इस प्रकार परामर्श करके उन तीनों ने आकर पूज्य महाराज को सैकड़ों गालियां देते हुए गांव में जाने से रोका। इतना ही नहीं, उन्होंने पूज्य महाराज की झोली को भी छीनने का प्रयत्न किया। किन्तु पूज्य महाराज बल में उनसे कम नहीं थे। उन्होंने बलपूर्वक अपनी झोली को ऐसी दृढ़ता से पकड़ लिया कि वह उनसे झोली न छीन सके और खिसिया कर रह गए। इस पर पूज्य महाराज उनसे बोले

"भाई ! क्यों जबरदस्ती करते हो। तुम नहीं चाहते तो हम गांव में नहीं जावेंगे।"

यह सुन कर वह लोग आप लोगों को छोड़ कर गांव में लौट गए और पूज्य श्री वहीं जङ्गल में बनी हुई कुछ झोपड़ियों में जा कर ठहर गए, क्योंकि उस समय दिन छिपने ही वाला था और उस गांव को छोड़ कर दूसरे गांव में दिन ही दिन में पहुंच जाना सम्भव नहीं था। इसी लिए आप जंगल के कुछ छप्परों में ठहर गए।

उधर वह तीनों व्यक्ति जब अपने घर पहुंच कर आराम करने लगे तो उनमें से जिस व्यक्ति ने पूज्य श्री को सबसे अधिक गालियां दी थीं, उसकी गर्दन को कोई अज्ञात व्यक्ति रात में इस प्रकार काट गया कि हत्यारे का किसी प्रकार पता न लग सका। उसके शेष दोनों साथियों ने जब इस समाचार को सुना तो वह बहुत घबराए। उनके मन में विश्वास हो गया कि यह उन्हीं महात्मा को सताने के पाप का दण्ड है।

अस्तु वह अपने घर से निकल कर तुरन्त जंगल में जाकर पूज्य श्री को खोजने लगे। उनके सौभाग्यवश उनको जंगल की झोंपड़ियों में पूज्य श्री के दर्शन हो ही गए। उन्होंने पूज्य श्री को देखकर उनके चरणों में पड़ कर उनसे निवेदन किया

"महाराज! हम बड़े पापी हैं, जो हमने कल गालियां देकर आपको कष्ट दिया। रात में हमारे तीसरे साथी की कोई अज्ञात व्यक्ति गरदन काट गया। आप हमको क्षमा करदें। कहीं ऐसा न हो कि हमारी भी उसके जैसी गति हो। हम आपकी शरण हैं।"

इस पर पूज्य श्री ने उत्तर दिया

"भाई! हम तो जैन साधु हैं। हमारे लिये तो शत्रु और मित्र, स्तुति करने वाले तथा गाली देने वाले सभी बराबर हैं। हम किसी को शाप नहीं देते, न हमने तुम्हारे उस साथी को ही शाप दिया है। उसको अपने कर्म का फल स्वयं ही मिल गया। इसमें हमारी लेशमात्र भी प्रेरणा नहीं है। तुम निश्चिंत रहो।"

यह सुन कर वह दोनों बोले

"महाराज! यह हो सकता है कि हमारे साथी को आपने शाप न दिया हो और न आपका उस पर क्रोध हो, किन्तु संभव है कि आपका रक्षक कोई देवता हो और यह उसी का कार्य हो। यदि ऐसा हो तो हम लोग अपनी भी कुशल नहीं मानते। आप कृपा कर हमारे अपराध को क्षमा कर दें। हमारे मन को शांति इसी से मिलेगी।"

इस पर पूज्य महाराज ने उत्तर दिया

"अच्छा भाई! हम तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं मानते, किन्तु यदि तुमको इसी प्रकार शांति प्राप्त हो सकती है तो हम तुम्हारे अपराध को क्षमा करते हैं।"

पूज्य महाराज के यह शब्द सुन कर वह दोनों बहुत प्रसन्न होते हुए अपने अपने घर चले गए।

× × ×

महात्मा गांधी ने जब सन् १९१९ में रौलट एक्ट के विरोध में देशव्यापी सत्याग्रह आन्दोलन करने की घोषणा की तो देश में उसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। ६ अप्रैल १९१९ को देश भर में हड़ताल होने के कारण अमृतसर में भी भारी हड़ताल हुई। उन दिनों पंजाब के राष्ट्रीय नेता डाक्टर सत्यपाल तथा डाक्टर किचलू माने जाते थे और वह दोनों ही अमृतसर में रहते थे।

अमृतसर के जिला मजिस्ट्रेट ने १० अप्रैल १०१९ को उन दोनों को अपनी कोठी पर बुलाकर चुपचाप किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया। इस पर जनता बड़ी भारी भीड़ में जिला मेजिस्ट्रेट से उनका पता पूछने उसकी कोठी की ओर चली। किन्तु मार्ग में सेना ने उस भीड़ को रोककर उस पर गोली चला दी। इस पर भीड़ भी हिंसा पर उतारू हो गई। उसने क्रोध में आकर नेशनल बैंक की इमारत में आग लगा कर उसके यूरोपियन मैनेजर को मार डाला। भीड़ ने पांच अंग्रेज स्त्री पुरुषों को मारा और बैंक, रेलवे गोदाम तथा अन्य सार्वजनिक इमारतों में आग लगा दी। अधिकारियों ने इस घटनाओं पर आग बबूला होकर सारा नगर सेना को सौंप दिया और व्यवहारिक रूप में सैनिक कानून (मार्शल ला) लगा दिया। आग लगाने में कुछ साधुओं का हाथ होने की अफवाह भी

थी। अतएव सैनिक अधिकारी प्रत्येक साधु को देखते ही उसे पकड़ कर अनेक प्रकार की यातनाएं देते थे। अनेकों को तो गोली भी मार दी जाती थी। इस समय तपस्वी मुनि श्री गैंडेराय जी महाराज जंगा जिला जालंधर में विहार कर रहे थे। उन्होंने यह समाचार सुनकर तुरन्त ही पूज्य महाराज की सेवा में जाने के लिये अमृतसर को विहार कर दिया। लोगों ने आप से बहुत कुछ मना किया, किन्तु आप न माने। जब आप विहार करते हुए अमृतसर के मार्ग में जंडियाला गुरु आए तो वहां आपको पुलिस ने रोका। वास्तव में यहां से अमृतसर तक पूरे मार्ग में पुलिस का तथा खास अमृतसर में गोरी सेना तथा गुरखों का पहरा था। जंडियाला गुरु में पुलिस ने आपको बहुत समझाया कि आप आगे न बढ़ें। आप को साधुओं पर किये जाने वाले सेना के अत्याचारों का वर्णन भी सुनाया गया। किन्तु आपने एक ही बात कही

"मुझे मेरे गुरु के दर्शन करने से इस समय संसार की कोई शक्ति नहीं रोक सकती।"

यह कह कर आप अमृतसर की ओर को बढ़ चले। जब आप अमृतसर के सामने आए तो आपने अपने संघ के साधुओं से कहा

"अब आप लघुशंका आदि से निवृत्त होकर थोड़ा ध्यान कर लो। तब सेना के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे।"

इस पर सब लोग लघुशंका आदि से निवृत्त होकर ध्यान करने लगे। आप लोग सड़क में खड़े २ ही लगभग पांच मिनट तक ध्यान करके आगे बढ़े तो उपाश्रय पहुंचने तक मार्ग में कोई भी आप से इस प्रकार नहीं बोला, जैसे आपको किसी ने भी न देखा हो। आपके साथ कुल चार या पांच साधु थे।

आपके उपाश्रय में पहुंचने पर पूज्य श्री आपको देख कर बोले

"गैंडे राय जी ! इस प्रकार की स्थिति में आप यहां क्यों चले आए ?"

इस पर आपने उत्तर दिया

"फिर आपकी सेवा कौन करता ?"

× × × ×

यद्यपि इन दिनों अमृतसर में सैनिक शासन के कारण किसी का भी बाहिर निकलना सुरक्षित नहीं था, किन्तु जंडियाला गुरु के निवासी राय साहिब टेकचन्द ने जैन साधुओं के जाने आने की कठिनाई को दूर कर दिया था। किन्तु उपाश्रय के समीप ही एक मकान का नाम जमादार की हवेली था। उसमें रहने वाली एक मेम को मार कर किसी ने उसके शव को उपाश्रय की ड्योढ़ी में डाल दिया था। इसी उपाश्रय में साधु लोग दूसरी मंजिल पर तथा पूज्य महाराज तीसरी मंजिल पर थे। शव के सम्बन्ध में जब तहकीकात करने नागरिक तथा सैनिक अधिकारी उपाश्रय की नीचे की मंजिल में आए तो सबको यह भय हो गया कि कहीं वह ऊपर आकर साधुओं को दिक न करें। किन्तु विधि की गति कुछ ऐसी हुई कि उन अधिकारियों को उपाश्रय की नीचे की मंजिल ही दिखलाई दी, दूसरी मंजिल, तीसरी मंजिल तथा ऊपर जाने के जीने उनको कुछ भी दिखलाई नहीं दिये। इस पर वह लोग कहने लगे।

"अच्छा ! यह मकान कुल इतना ही है ?"

साथ के लोगों ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया और वह लोग वहां से देख भाल करके वापिस चले गए।

× × × ×

अमृतसर का इस दुर्घटना में एक मकान में आग लग गई। वह आग ऐसी फैली कि उपाश्रय के पास के मकान में भी आ लगी। साधु लोग आग को देखकर महाराज से बोले

"गुरुदेव ! आग उपाश्रय में भी आ जावेगी। आप इसे छोड़ कर चलें।"

तब आपने उत्तर दिया

"आग उपाश्रय में कभी नहीं आवेगी। आप लोग निश्चिन्त होकर बैठे रहें। घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

आपके यह कहने के बाद आग और भी तेजी से फैलने लगी और उसकी लपटें उपाश्रय के किवाड़ों को छूने लगीं, जिससे वह काठ के किवाड़ काले पड़ गए। तब साधु लोग फिर घबरा कर बोले

"गुरुदेव ! अब तो आग अपने द्वार तक आ गई। अब तो इस स्थान को छोड़ दें।"

किन्तु आपने फिर वही उत्तर दिया।

"भई ! चिन्ता मत करो। आग यहां कभी नहीं आ सकती।"

आपके यह कहते २ आग ठण्डी हो गई और उपाश्रय उस आग से साफ बच गया।

× × × ×

यह सारी घटनाएं १० अप्रैल १६१६ को बैंक की लूट होने के साथ ही हो गईं। बैंक की लूट के कारण लोगों की धड़ाधड़ तलाशियां की गईं। जैसा कि तलाशियों में सदा ही होता आया है तलाशियों में अपराधी बच जाया करते हैं और धनिकों को

दिक किया जाया करता है। अमृतसर में भी उन दिनों यही हुआ। किसी को लेशमात्र भी सम्पन्न समझा जाता तो उसकी तलाशी तत्काल हो जाती थी और उसके किसी भी सामान को बैंक का बतला कर उसको गिरफ्तार कर लिया जाता था। इस सम्बन्ध में पुलिस तथा सेना के अत्याचार इतने अधिक बढ़ गए थे कि कोई भी सम्मानित व्यक्ति अपने सम्मान को सुरक्षित नहीं समझता था। लोग इस भय से कि कहीं उनकी किसी वस्तु को बैंक की न बतला दिया जावे अपनी मूल्यवान वस्तुओं को भी फेंक देते थे। एक बार कुछ श्रावकों ने आकर इस सम्बन्ध में पूज्य महाराज के सामने निवेदन किया तो पूज्य महाराज बोले

"इकवीस लोगस का पाठ अथवा ध्यान करते रहो और किसी का माल मत लो और अपना माल मत फेंको। इससे तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं होगी।"

लोगों ने यही किया और उन सब की पुलिस तथा सेना के अत्याचारों से रक्षा हो गई।

महात्मा गांधी ने रौलट बिल का देशव्यापी विरोध करने के लिये ३० मार्च १९१९ का दिन नियत किया था। बाद में इस दिन को बदल कर ६ अप्रैल कर दिया गया। किन्तु दिन बदलने की सूचना दिल्ली में ठीक समय पर नहीं पहुँची। इससे वहां ३० मार्च को ही जुलूस निकला, हड़ताल हुई और गोली भी चली। यद्यपि अमृतसर में १० अप्रैल से ही व्यवहारिक रूप में सैनिक कानून था, किन्तु जनता ने दिल्ली के गोलीकांड का विरोध करने के लिये यह तय किया कि १३ अप्रैल को जलियान-वाला बाग में एक विरोध सभा की जावे। इस सभा को करने का

निश्चय ११ अप्रैल को ही कर लिया गया था और इस के लिये अत्यधिक प्रचार किया गया था।

यह समाचार जब ११ अप्रैल को उपाश्रय में पहुंचा तो पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने कहा

"जलियांवाला बाग की सभा में भाषण सुनने कोई न जावे। वहां अनिष्ट की पूर्ण आशंका है।"

किन्तु जनता पर उत्साह का ऐसा भूत चढ़ा हुआ था कि अमृतसर के जलियान वाला बाग में १३ अप्रैल १९१९ को बीस सहस्र जनता एकत्रित हो गई। पूज्य सोहनलाल जी महाराज की चेतावनी पर अन्य जैनी तो रुक गए किन्तु उनकी चेतावनी का ध्यान न करके तीन जैन लड़के भी उस सभा में गए। इनके नाम थे—

बाबूराम, खजांची लाल तथा कुन्दन लाल।

इस बाग के चारों ओर दीवार थी और अन्दर जाने तथा बाहर निकलने के लिये केवल एक ही दरवाजा था। सभा में व्याख्यानों की धूम थी। जेनरल डायर ने सभा में सौ भारतीय सैनिक तथा पचास गोरे सैनिक लेकर प्रवेश किया। उसने बाग में घुसते ही सेना को गोली चलाने की आज्ञा दे दी। जेनरल डायर इस सभा पर तब तक गोलियां चलाता रहा, जब तक उसकी सेना के सब कारतूस समाप्त नहीं हो गए। कुल सोलह सौ फायर किये गए। सरकारी बयान के अनुसार इस गोली कांड से चार सौ मरे तथा एक हजार से लेकर दो सहस्र तक घायल हुए, किन्तु गैरसरकारी बयान के अनुसार मरने वालों की संख्या कई सहस्र थी। भारतीय सैनिकों के पीछे गोरे सैनिकों को लगा कर उनसे गोली चलवाई गई। जिस समय गोली चली तो लोगोंने दीवार पर चढ़ने का यत्न किया। कुछ

अधिक शक्तिशाली लोग चढ़ने वालों के ऊपर पैर रख कर बच भी निकले। किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। तीनों जैन लड़कों में से बाबूराम जेनरल डायर की गोलियों से वहीं मारा गया। खजांची लाल किसी प्रकार दीवार पर चढ़ कर निकल तो आया, किन्तु घर आकर वह दहशत के मारे बीमार पड़ गया और कुछ ही मास की बीमारी के बाद मर गया। कुन्दन लाल ने जो वहां से भागने के लिये धक्कम धक्का की तो उसके सब कपड़े बिल्कुल फट गए। किन्तु उस समय कपड़ों पर ध्यान देने की अपेक्षा प्राण बचाना मुख्य कार्य था। अतएव वह बिल्कुल नंगा होकर अपने घर आया।

जेनरल डायर ने जलियान वाला बाग के घायलों तथा मृतकों को रात भर वहां से नहीं हिलने दिया और न उनको जल तक ही मिलने दिया।

जेनरल डायर ने अमृतसर में ऐसा आतंक जमाया कि पानी के नलों को बन्द कर नगर की बिजली भी बन्द करवा दी। नागरिकों को सब के सामने आम तौर से बेंत लगाए जाते थे। एक गली में एक लेडी डाक्टर पर आक्रमण किया गया था। इस लिये उस गली में निकलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पेट के बल रेंग कर जाने दिया जाता था। इन बातों से नागरिकों में जलियान वाला बाग के गोली कांड से भी अधिक आतंक फैल गया और इसी कारण नवयुवक खजांची राम जलियान वाला बाग से बच कर भी बाद में उसकी दहशत से मर गए। पूज्य मोहन लाल जी महाराज को अपने ज्ञान बल से इन सब घटनाओं का अभ्यास हो गया था। इसी से उन्होंने लोगों को वहां जाने से रोका था।

× × × ×

एक बार आप उपाश्रय में बैठे थे कि एक अन्य स्थान के व्यक्ति ने आपके दर्शन करके कहा

"महाराज! मुझे लाहौर जाना है। मंगलीक सुना दीजिये।"

इस पर आप बोले

"कहीं जाने का कुछ काम नहीं। यहां उपाश्रय में ही बैठ और धर्म ध्यान कर।"

इस पर वह व्यक्ति बोला

"महाराज! मुझ पर ऐसा भयंकर मुकद्दमा चल रहा है कि उसमें जेल या फांसी कुछ भी हो सकती है। मैं जमानत पर छूटा हुआ हूं। इस लिये मेरा वहां जाना आवश्यक है।

इस पर आपने उत्तर दिया

"भोले! तब तू आपत्ति के मुख में जाता ही क्यों है? तुझे वहां जाने की क्या आवश्यकता है? तू यहीं बैठ और सामायिक कर।"

यह सुन कर वह वहीं बैठ गया और सामायिक ले कर अपने घर भी नहीं गया। अगले दिन उसको उसके वकील का तार मिला कि

"तुमको अदालत ने साफ छोड़ दिया है।"

× × × ×

आपके शिष्य तपस्वी मुनि श्री गैंडे राय जी महाराज भी लब्धिधारी मुनि थे। एक श्वेताम्बर मूर्तिपूजक लड़का उनको गोचरी जाते समय प्रति दिन छेड़ा करता था। वह कभी उनके श्वेत वस्त्रों का तथा कभी उनकी मुख वस्त्रिका का मखौल उड़ाया करता था। किन्तु श्री गैंडेराय जी महाराज उसको कभी भी

उत्तर न देकर सीधे स्वभाव निकल जाया करते थे। इससे उस का साहस और बढ़ गया और वह बिलकुल निकट आकर उनका मखौल उड़ाने लगा। वह लड़का मन्दिर में पूजन करके माथे पर तिलक लगा लिया करता था।

एक दिन उस लड़के ने श्री गैंडेराय जी का मखौल उड़ा कर कहा

"क्या तोबरा सा मुंह पर बांधा हुआ है।"

इस पर श्री गैंडे राय जी ने केवल इतना ही कहा

"अरे ! अपना टीका संभाल।"

मुनि श्री गैंडेराय जी यह कहकर उसकी ओर देखे बिना वहां से चले गए, किन्तु वह उसी समय पछाड़ खाकर गिरा और बेहोश हो गया। उसके मुख से रक्त की वमन भी हुई। लोगों ने उसकी दशा देखकर उसके द्वारा मुनि गैंडेराय जी के साथ किये हुए व्यवहार का यह समाचार सुनाकर उसके माता पिता को उस लड़के की दशा का समाचार भी सुनाया। वह तुरन्त भागे हुए वहां आए और उसे अपने घर ले गए। जब लड़का किसी प्रकार ठीक न हुआ तो उनको ध्यान हुआ कि बिना मुनि गैंडेराय की शरण गए यह ठीक नहीं होगा। अस्तु उन्होंने आपसे आकर कहा

"महाराज ! लड़का नादान था जो आपको प्रतिदिन सताता था। उसकी नादानी पर ध्यान न देकर आप उसे क्षमा करें।"

इस पर उन्होंने उत्तर दिया

"मेरे मन में उसके प्रति कोई विद्वेष की भावना नहीं है। मैंने तो उससे सीधे स्वभाव कह दिया कि 'अपना टीका

संभाल'। मैंने उसे कोई हानि नहीं पहुंचाई। मेरी ओर से उसको सदा ही क्षमा है।"

तब वह लोग बोले

"महाराज! जब आपकी ओर से उसको क्षमा है तो आप वहां कष्ट करके उसे मंगलीक सुना दें, क्योंकि बेहोश होने के कारण वह यहां आने योग्य नहीं है।"

इस पर मुनि गैंडेराय जी ने उनके साथ जाकर उस लड़के को मंगलीक सुनाई। मंगलीक सुनने पर वह होश में आ गया। कुछ दिनों बाद उसकी तबियत पूर्णतया सुधर गई।

× × × ×

एक बार पूज्य श्री गैंडेराय श्री महाराज स्यालकोट के पास दुबरजी नामक गांव के पास एक वृक्ष के नीचे ठहरे हुए थे कि पुलिस का एक थानेदार उनके पास आकर उनको धमकाने लगा। वह उनसे बोला

"क्या ढोंग करके बैठा है। अपनी तलाशी दे।"

इस पर आप उससे बोले

"भाई हम साधु हैं। हमारी क्या तलाशी लेगा ?"

दरोगा ने उनकी पुस्तकों तथा पात्रों में ठोकर लगाकर कहा 'दिखलाओ उनमें क्या है।'

इस पर गैंडेराय ने उससे कहा 'तू हमारी पुस्तकों तथा बर्तनों को पैर लगाता है।'

दरोगा—अच्छा तू मुझे नहीं जानता।

आप—हां, तुझे मैं जानता हूँ कि तू सरकार का मुंह लगा पुलिस वाला है।

इस पर वह क्रोध में भर कर आपकी ओर झपटा तो आपने कहा

"खबरदार जो आगे कदम बढ़ाया।"

इस पर वह कुछ सहम गया और आगे न बढ़ कर क्रोध में भरा हुआ अपने और सिपाहियों को बुलाने गया। जब वह नगर में आया तो जैन बिरादरी से यह समाचार जानकर पुलिस कप्तान ने संतों के साथ दुर्व्यवहार करने के कारण उसको बहुत फटकार पिलाई। कप्तान ने उसको आपसे क्षमा प्रार्थना करने को भी विवश किया।

यह पीछे बतला दिया गया है कि पूज्य श्री के कई संत बड़े भारी तपस्वी थे। तपस्वी मुनि गणपतरायजी महाराज तो बड़ा कठोर तप किया करते थे। वह ज्येष्ठ आषाढ़ में दो २ तीन तीन घंटे तक धूप में तप कर लाल हुई सीमेंट की छत पर लेट कर तप किया करते थे। उन्हें वाक् सिद्धि भी थी। पसरूर निवासी भगवान दास नामक श्रावक की बहिन को एक ऐसा रोग था कि अनेक इलाज करने पर भी वह अच्छा नहीं हुआ। तब किसी ने उस को बतलाया

"जिस समय तपस्वी मुनि गणपतराय जी महाराज धूप में तप करके उठें तो उनके पसीने के पानी को अपनी बहिन के शरीर पर लगाओ।"

उसने इस कार्य को करने का निश्चय कर लिया, और अगले दिन कपड़ा तथा कटोरा लेकर उस स्थान के पास ठहर गया, जहां मुनि गणपतराय जी महाराज तपे हुए सीमेंट की छत पर तप करते थे। जब वह तप करके उठने लगे तो भगवान दास ने भूमि पर गिरे हुए उनके पसीने को वस्त्र में

लेकर कटोरे में निचोड़ लिया। इसके बाद उसने उस पसीने को अपनी बहिन के शरीर पर लगाया तो उसका सारा रोग दूर हो गया। इससे पूर्व भगवान दास ने उनसे कई बार रोग निवारण करने की प्रार्थना की थी और वह हर बार यही कह दिया करते थे

' जा धर्म ध्यान कर। इससे सब कष्ट दूर हो जावेंगे।"

वास्तव में वह लब्धिधारी मुनि थे। अट्ठाइस लब्धियों में से उनको किसी न किसी लब्धि की प्राप्ति अवश्य हो चुकी थी।

× × × ×

एक बार मुनि श्री गणपत राय जी महाराज डेरा ममटी के स्थानक में विराजमान थे। वहां के श्री संघ ने आपसे अत्यन्त आग्रहपूर्वक वहां चातुर्मास करने की विनती की। तब आपने उत्तर दिया

"मैं पूज्य श्री की आज्ञा के बिना कहीं भी चातुर्मास करने की स्वीकृति नहीं दे सकता। मेरे चातुर्मास के लिये उन से ही विनती करनी चाहिये।"

इस पर डेरा ममटी के श्री संघ ने अमृतसर जाकर उनसे विनती की कि वह मुनि गणपतराय जी महाराज को डेरा ममटी में चातुर्मास करने की आज्ञा दे दें। तब पूज्य श्री ने उनको उत्तर दिया

"अभी आपके यहां उनका चातुर्मास होने का अवसर नहीं है।"

यह कह कर पूज्य श्री ने मुनि गणपतराय जी महाराज को एक अन्य स्थान में चातुर्मास करने की आज्ञा दी।

वर्षा ऋतु में डेरा ममटी में ऐसी भारी वर्षा हुई कि सारी बस्ती में पानी भर गया। तब जनता की समझ में आया कि पूज्य श्री ने मुनि गणपतराय जी महाराज को डेरा ममटी में चातुर्मास क्यों नहीं करने दिया था।

× × × ×

कानचन्द नामक एक बैरागी ने पंडित मुनि श्री शुक्लचन्द जी महाराज से दीक्षा देने की प्रार्थना की। इस पर आपने पूज्य महाराज के पास आकर कहा

शुक्लचन्द जी—गुरु देव ! कानचन्द बैरागी दीक्षा के लिये अत्यधिक आग्रह कर रहा है। आपकी इस विषय में क्या आज्ञा है ?

पूज्य महाराज—दीक्षा तुम भले ही दे दो, किन्तु वह मुनि-व्रत की कठिनाइयों से घबरा कर दीक्षा छोड़ देगा।

शुक्लचन्द जी—तब फिर उसे दीक्षा क्यों दी जावे ?

पूज्य महाराज—दीक्षा तो उसने लेनी ही है। किन्तु इस बार दीक्षा छोड़ कर वह दुबारा फिर दीक्षा लेगा और फिर भी आपके पास आकर फिर दीक्षा छोड़ेगा। वह तीसरी बार दीक्षा लेने फिर आवेगा और यदि तीसरी बार उसे दीक्षा मिल गई तो फिर वह दीक्षा में निभा रहेगा।

शुक्लचन्द जी—तब तो उसको दीक्षा दे देनी चाहिये।

पूज्य महाराज—ऐसा ही मेरा विचार भी है।

पूज्य महाराज से इस प्रकार अनुमति ले कर पंडित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज ने कानचन्द बैरागी को दीक्षा दे दी।

किन्तु दीक्षा ले कर वह उसके कठोर नियमों से शीघ्र ही घबरा गया। इसके बाद जब वह दिल्ली आया तो उसने मुनिव्रत छोड़ दिया।

इसके दो एक मास बाद वह पंडित मुनि शुक्लचन्द जी के पास दिल्ली की लेसवा गली में आकर दीक्षा देने की प्रार्थना फिर करने लगा। इस समय युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज भी वहीं थे। उनका नियम था कि पतित होने वाले को दुबारा दीक्षा न दी जावे। किन्तु पंडित मुनि शुक्लचन्द जी उसके भविष्य के विषय में पूज्य महाराज से सुन चुके थे। अतएव उन्होंने युवाचार्य जी को सहमत करके उसे दीक्षा दे दी।

इसके कुछ समय बाद वह कपूरथले में आकर वहां मुनिव्रत फिर छोड़ बैठा। इसके बास दिन बाद अमृतसर में वह पंडित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज के पास फिर उपस्थित हुआ। उसने उनसे दीक्षा देने की फिर प्रार्थना की। पंडित शुक्लचन्द जी ने पूज्य महाराज के पास आकर उनसे कहा

"गुरुदेव! कानचन्द बैरागी के विषय में आपकी बात ठीक उतरी। वह दो बार दीक्षा छोड़ कर अब तीसरी बार दीक्षा मांगने फिर आया है। आपकी इस में क्या सम्मति है?

पूज्य महाराज—उसे दीक्षा देनी है तो जल्दी देदो।

शुक्लचन्द जी—किन्तु मुहुर्त तो देख लें।

पूज्य महाराज—मुहुर्त देखने में फिर गड़बड़ी हो जावेगी।

पण्डित मुनि शुक्लचन्द जी मुहुर्त के विषय में सोचते ही रहे कि युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज का भिजवाया हुआ एक तार आपको मिला

"कानचन्द वैरागी को दीक्षा देने वाले से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं होगा।"

इस पर पूज्य महाराज पण्डित मुनि शुक्लचन्द जी मे बोले

"आपने विघ्न देख लिया ? फिर भी यदि तुम उसे दीक्षा देनी चाहो तो दे दो। मैं किसी प्रकार भी काशीराम जी को राजी कर लूंगा। भले ही कोई व्यक्ति दीक्षा लेकर छोड़ दे, किन्तु जितने समय वह दीक्षित रहेगा उतने समय तो उसका आत्म विकास होगा। क्योंकि जीव का क्षयोपशम कभी कभी ही जागता है। उस समय ग्रहण किया हुआ सम्यक्त्व तथा चारित्र उनको अगले जन्म में भी लाभ देता है। किन्तु युवाचार्य जी के तार के कारण पण्डित मुनि शुक्लचन्द जी ने उसको दीक्षा देना स्वीकार न किया।

× × × ×

तपस्वी मुनि रत्नचन्द जी ने आठ दिन का उपवास करके अठाई की हुई थी। उन्हीं दिनों युवाचार्य श्री काशीरामजी महाराज को लाहौर जाना था। अकेले मुनि रत्नचन्द जी उस मार्ग से पूर्णतया परिचित थे। वह सेवा भाव से उनके साथ जाना चाहते थे। युवाचार्य जी बोले

"रत्नचन्द जी ! तुम्हारा जाना उचित नहीं है। अठाई के अंत में तुम्हारा तेला है। तुम्हारे शरीर में अठाई के कारण निर्बलता रहेगी।"

इस पर रत्नचन्द जी बोले

"नहीं, मुझे इसमें कुछ भी कष्ट नहीं होगा। मैं आपको लाहौर पहुंचा कर यहां वापिस आकर पारणा कर लूंगा।"

यह कह कर आप युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज को पहुंचाने के लिये उनके साथ लाहौर चले। मार्ग में अटारी नामक एक गांव आया। वहां के रहने वाले अत्यन्त कठोर थे। साधु संतों के साथ तो वह अत्यधिक दुर्व्यवहार किया करते थे। जब तक आप लोग अटारी ग्राम के पास आए गोचरी का समय हो गया। तब तपस्वी मुनि रत्नचंद जी युवाचार्य जी से बोले

रत्नचन्द जी—आप सन्तों सहित यहां पधारें। मैं गांव से गोचरी ला के अभी वापिस आता हूं।

युवाचार्य—गोचरी करने तो आप चले जावें, किन्तु यहां के सिक्ख लोग बड़े कट्टर हैं। वह साधुओं का अपमान करने में नहीं चूकते। वह ऊंची हवेली वाला सिक्ख तो सन्तों को देख ही नहीं सकता। आप उसके घर गोचरी करने न जाना।

तपस्वी मुनि रत्नचन्द जी युवाचार्य जी की बात का कोई उत्तर न देकर गोचरी करने चले गए। आप सीधे ऊंची हवेली वाले उसी सिक्ख के यहां पहुंचे, जो साधुओं के साथ विशेष रूप से दुर्व्यवहार किया करता था। जब आप उसके घर पहुंचे तो वह गंडासे से कुट्टी काट रहा था। आपको देखते ही वह आपके ऊपर गंडासा लेकर दौड़ा। किन्तु जिस समय उसने आप पर गंडासा उठाया तो आप बोले

"अच्छा, मार।"

किन्तु यह कहते ही उसका हाथ जैसे का तैसा उठा हुआ ही रह गया। उसके शरीर के सब अङ्ग कीलित हो गए और उसके मुख से वाणी तक निकलनी बन्द होगई। उसकी माता ने जब उसकी यह दशा देखी तो वह उसको निश्चल खड़ा देख कर उससे बोली

"अरे ! इस प्रकार क्यों खड़ा है ?"

किन्तु वह उत्तर देने योग्य होता तो उत्तर देता। जब उसकी माता ने उसे छू कर देखा तो उस को उसकी यथार्थ स्थिति का पता चला। अब तो वह बहुत घबरा कर तपस्वी मुनि रत्नचन्द जी से बोली

माता—महाराज ! आपने इसे क्या कर दिया है ?

मुनि—मैं इसे क्या करता।

माता—महाराज यह अज्ञानी है। आप इसे क्षमा करें।

यह कह कर उसने तपस्वी मुनि रत्नचन्द जी की बहुत खुशामद की।

इस पर उन्होंने उसे स्तोत्र तथा मंगल पाठ आदि सुनाया। इससे उसके शरीर में गति आई। अब उसको वहां से हटा कर चारपाई पर लेटा दिया गया। किन्तु उसके शरीर में निर्बलता तब भी बनी रही।

अब तो घर के सभी रहने वाले तपस्वी मुनि रत्नचन्द जी का अत्यधिक आदर सत्कार करने लगे। उसकी माता ने उनको आहार पानी दिया, जिसको ले कर वह युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज के पास आगए। इस घटना से सारा अटारी कस्बा सीधा हो गया और वह प्रत्येक साधु को सम्मान-पूर्वक आहार पानी देने लगे।

पूज्य महाराज की आत्म शक्ति के यह थोड़े से उदाहरण हैं। वास्तव में घटनाएं इतनी अधिक हैं कि वह किसी एक व्यक्ति के अनुभव में नहीं आ सकती थीं। प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव उनके सम्बन्ध में पृथक् २ हैं, जिनको सबसे पूछकर लिखना असम्भव है।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की इतनी अधिक आत्म शक्ति का कारण न केवल उनकी विद्या थी, वरन उनका उच्च-कोटि का तप था। जैसा कि इस ग्रन्थ में पीछे लिखा जा चुका है, वह तथा तपस्वी मुनि श्री गैंडेराय जी महाराज अत्यन्त उच्च-कोटि के तपस्वी थे। इसी लिये उनका आत्मा इतना निर्मल हो गया था कि उसमें उनको प्रत्येक बात स्पष्ट दिखलाई देती थी।

यह पीछे बतलाया जा चुका है कि आप ज्योतिष शास्त्र के भी प्रकाण्ड पंडित थे। ज्योतिष का उनको केवल शास्त्रीय ज्ञान ही न होकर व्यवहारिक ज्ञान भी था। उनको प्रत्येक तारे की आकाश में गति का अच्छा ज्ञान था। इसी कारण जब कभी रात्रि को आंख खुलती थी, तो वह तारों के सम्बन्ध में कुछ सामान्य प्रश्न करके तत्काल ठीक २ समय बतला दिया करते थे।

उनकी जीवनचर्या नपी तुली थी। जब भी उनको देखो वह स्वाध्याय करते हुए ही दिखलाई देते थे।

यद्यपि उनका स्वर्गवास पर्याप्त बड़ी अवस्था में हुआ और उनके हाथ पैर तो आरम्भ से ही कांपने लगे थे, तो भी वह बैठते समय कभी भी सहारा लेकर नहीं बैठते थे।

खान पान का उनका संयम तो आश्चर्यजनक था। वृद्धावस्था की निर्बलता में भी उन्होंने मिठाइयों का त्याग किया हुआ था। कुछ समय तक वह दूध के साथ मीठा लेते रहे, किन्तु बाद में उन्होंने मीठे का बिल्कुल त्याग करके फीका दूध ही लेना आरम्भ किया। बाद में तो उन्होंने दूध लेना भी कम कर दिया था।

भोजन के सयम में उन्होंने फुलका लेना भी बन्द कर दिया था। उस समय वह शाक अथवा शाक का पानी लिया करते थे। इसमें भी यह विशेषता थी कि जो कुछ भी वह लेते चौबीस घंटे में एक बार ही लेते थे। बाद में संथारा करने पर तो उन्होंने कुछ भी नहीं लिया।

४४

महाप्रयाण

जीवियं नाभिकंखेज्जा, मरणं नो वि पत्थए।
दुहओ वि न मज्जेज्जा, जीविए मरणे तहा ॥

आचाराङ्ग सूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन ८, उद्देशक ८

साधक न तो जीवित रहने की लालसा रक्खे और न मरने की ही इच्छा करे। जीवन और मरण में से किसी में भी आसक्ति न करे।

संसार का यह नियम है कि उसमें उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु का विनाश होता है। सृष्टि के इस अनादिकालीन नियम से कोई वस्तु भी नहीं बच सकती। सुमेरु पर्वत जैसी जो वस्तुएं हमको सदा एक सी ही दिखलाई देती हैं, उनमें भी प्रतिक्षण असंख्यात परमाणुओं का परिणमन होता रहता है। किसी मकान को कितनी ही मजबूती से बन्द कर देने पर भी उसमें कहीं न कहीं से आकर धूल तथा मिट्टी जम ही जाती है।

जीवित प्राणियों के विषय में तो यह नियम और भी अधिक ठीक बैठता है। प्रत्येक प्राणी का जन्म मरने के लिए ही होता है। जैसा कि गीता में भी कहा गया है—

"उत्पादस्य ध्रुवो मृत्युः"

उत्पन्न होने वाले की मृत्यु अवश्यंभावी है।

स्वर्गवासी प्रधानाचार्य श्री सोहनलाल जी महाराज
आचार्य पद मार्गशीर्ष शुक्ला ५ सं० १९४८ वि०, स्वर्गवास आषाढ़ शुक्ला ६ सं० १९९३ वि०
(चित्र केवल परिचय के लिये है)

सनातन धर्मी पुराणों में जो कुछ व्यक्तियों को अमर माना गया है, यह बात उनकी ही युक्ति की कसौटी पर चढ़ाई जाने पर ठीक नहीं उतरती। वहां परशुराम, हनुमान, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतकर्मा, मार्कण्डेय ऋषि तथा काकभुसुण्ड जी इन सात व्यक्तियों को अमर माना गया है। आल्हाखण्ड के गाने वाले आल्हा के भक्त आल्हा को भी अमर मानते हैं। जाहर दीवान के भक्त जाहर पीर को अमर मानते हैं। इस प्रकार इस संसार में यद्यपि अमर कहलाने वालों की संख्या कम नहीं है, किन्तु उनकी अमरता केवल उनके भक्तों की कल्पना मात्र से अधिक कुछ भी नहीं है। फिर अमरता के सिद्धान्त के यह उपासक सृष्टि के अन्त में उन सबकी मृत्यु भी मानते हैं। ऐसी अवस्था में उनकी यह अमरता भी चिरस्थायी नहीं ठहरती।

जैन सिद्धान्त में तो द्रव्य का लक्षण ही सत् माना गया है—

"सद्द्रव्यलक्षणम् ।"

फिर इस सत् की परिभाषा में कहा गया है कि

"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।"

जिसमें उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्य हों वह सत् है।

अर्थात् जैन सिद्धान्त के अनुसार जिस किसी भी वस्तु का अस्तित्व है, उसमें उत्पत्ति तथा विनाश का रहना आवश्यक है और फिर भी ध्रौव्य के रूप में उस वस्तु के गुण उस की प्रत्येक दशा में बने रहते हैं।

वास्तव में उत्पत्ति तथा विनाश का नाम ही पर्याय बदलना है। सोने के कड़े के कुण्डल बनवा लेने से उसकी कड़ा रूप पर्याय नष्ट होकर कुण्डल रूप पर्याय बन जाती है और फिर भी उन दोनों पर्यायों में उस सोने का पीलापन तथा भारीपन

बना ही रहता है। इसी प्रकार इस जीव के अनेक जन्म होने पर भी जीव का अस्तित्व बराबर बना रहता है।

जीवित मनुष्य का मरण निश्चित है। आज हम संसार में सब किसी को मृत्यु से डरते हुए देखते हैं, किन्तु जब हम मृत्यु के यथार्थ स्वरूप पर विचार करते हैं तो उसमें भय जैसी कोई चीज दिखलाई नहीं देती। तात्विक रूप में विचार किया जावे तो मृत्यु कर्मों के भोग की एक मंजिल है। यदि प्राणी उसको अवश्यंभावी मान कर उसका शान्त मन से स्वागत करे तो मृत्यु सुन्दर दिखलाई देगी। क्यों कि शान्त भाव से मृत्यु का आलिंगन कर हम उनके कर्मों को भोग कर उनकी स्थिति को समाप्त कर देते हैं। फिर यदि संथारा अथवा समाधि मरण के रूप में मृत्यु का खयाल किया जावेगा तो हमारे अनेक कर्मों की ऐसी निर्जरा हो जावेगी, जिस से हम को अनेक जन्मों में लाभ होगा।

पूज्य सोहन लाल जी महाराज का शरीर असमर्थ तो हो ही चुका था। अब उनके शरीर में निर्बलता भी पर्याप्त आ गई थी।

अजमेर सम्मेलन से निवृत हो कर युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज ने अपना १९९० का चातुर्मास अजमेर ही में किया। गणी उदयचन्द जी महाराज ने पुष्कर में तथा उपाध्याय आत्माराम जी महाराज ने अपना १९९० का चातुर्मास जोधपुर में किया। शतावधानी मुनि रत्नचन्द्र जी महाराज अजमेर सम्मेलन में युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज से बहुत प्रभावित हुए थे। किन्तु यत्न करने पर भी वह अपना १९९० का चातुर्मास उनके साथ न कर पाए। युवाचार्य जी का सम्वत् १९९१ का चातुर्मास आगरे तथा उपाध्याय आत्माराम जी

महाराज का चातुर्मास दिल्ली में हुआ। इस चातुर्मास के बाद शतावधानी मुनि रत्नचन्द जी महाराज को युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज का साथ मिल गया और वह उनके साथ विहार करते हुए संवत् १९९१ में ही अमृतसर गए। जब यह दोनों संत अमृतसर जाने के लिये जंडियाला गुरु पहुंचे तो वहां उनको पूज्य अमोलक-ऋषि महाराज भी मिल गए। अब यह तीनों जंडियाला गुरु से विहार करके अमृतसर पहुँचे।

अमृतसर में उनका बड़ा भारी स्वागत किया गया। स्वयं पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज ने अमोलक-ऋषि महाराज का अभूतपूर्व स्वागत किया। अमोलक-ऋषि जी बड़े भारी विद्वान् थे। उन्होंने बत्तीसों सूत्रों का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य भी अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। पूज्य श्री के स्वागत से वह अत्यधिक प्रसन्न हुए। अमृतसर के स्थानक में उनके स्वागत में जो सभा हुई थी उसमें उन्होंने अपने हृदय के उद्गार इस प्रकार प्रकट किए

"पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज के विषय में लोगों ने मुझे भारी धोखा दिया। उन्होंने मेरे मन में यह वहम डाल दिया था कि उनको अपनी विद्या का भारी अभिमान है और वह नए विद्वान् तथा तपस्वी को प्रश्नोत्तर करके अपमानित किया करते हैं। इस बात को सुनकर यहां आने से मेरी तबियत भी हट गई थी। किन्तु युवाचार्य काशीराम जी महाराज के शील, स्वभाव आदि को देख कर मेरे मन में उनके गुरु के दर्शन करने की बड़ी भारी अभिलाषा थी। फिर उनका आग्रह भी मुझे अमृतसर आने की प्रेरणा कर रहा था। पंजाब और विशेषकर अमृतसर के भाइयों के डेपूटेशन ने तो मुझे यहां आने को विवश कर दिया। अस्तु मैं साहस करके मन में डरते

डरते अमृतसर आ तो गया, किन्तु यहां आकर मैंने पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज में जितनी नम्रता देखी वह मेरे जीवन में एक नया अनुभव है। वास्तव में बड़े आदमी प्रभुता पाकर और भी अधिक नम्र हो जाते हैं। प्रधानाचार्य का पद पाकर तो मैं उनके हृदय को मक्खन से भी अधिक कोमल पाता हूं। वास्तव में पंजाब और विशेषकर अमृतसर के चतुर्विध संघ का यह परम सौभाग्य है कि उसको पूज्य श्री जैसा धार्मिक नेता मिला।

"उन्होंने जो मेरा अभूतपूर्व स्वागत किया है यह भी उनके हृदय की कोमलता का एक प्रमाण है। वास्तव में मेरा ऐसा भारी स्वागत आज तक कहीं भी नहीं हुआ। प्रधानाचार्य श्री सोहन लाल जी महाराज ने मेरे साथ जो भव्य व्यवहार किया है उसके लिये मैं कुछ भी बदला नहीं दे सकता। आप बत्तीसों सूत्रों के विद्वान् तो हैं ही, लौकिक तथा जैन ज्योतिष के भी अभूतपूर्व विद्वान् हैं। कथानुयोग, गणितानुयोग, चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग-शास्त्रों के इन चारों अंगों के भी आप उद्‌भट विद्वान् हैं। मेरा सौभाग्य है कि मुझे आपके दर्शन का अवसर मिला।"

श्रावक वर्ग के साथ साथ जनता भी पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज के दर्शन करके बहुत प्रभावित हुई। उसने आपसे अत्यधिक प्रेमपूर्वक अमृतसर में चातुर्मास करने की विनती की। आपकी इच्छा भी वहां चातुर्मास करने की थी, क्योंकि आप प्रधानाचार्य महाराज के संग का लाभ उठाना चाहते थे, किन्तु आपको महाराष्ट्र में अपनी सम्प्रदाय का एक सम्मेलन करना था, अतः आप इच्छा न होते हुए भी अमृतसर से महाराष्ट्र की ओर विहार कर गए।

इस समय अमृतसर की जनता ने शतावधानी मुनि रत्न जी महाराज तथा युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज की सेवा में भी चातुर्मास की आग्रहपूर्ण विनती की। अतएव आप दोनों ने अपना संवत् १९९२ का चातुर्मास पूज्य श्री के चरणों में अमृतसर में करना स्वीकार करके वहां से विहार कर दिया।

शतावधानी महाराज को प्रधानाचार्य महाराज से बड़ी बड़ी आशाएं थीं। वह उनके संरक्षण में एक ऐसी शिक्षण संस्था की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें साधुओं को सभी विषयों की शिक्षा देकर उन्हें उच्चकोटि का विद्वान् बनाया जावे। इस सम्बन्ध में अमृतसर के भाइयों ने उनको पर्याप्त सहयोग का आश्वासन भी दिया था।

अमृतसर की विनती को स्वीकार करने के पश्चात् शतावधानी जी तथा युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज वहां से विहार करके पसरूर तथा जम्मू में धर्म प्रचार करते हुए स्यालकोट आए। स्यालकोट में आपके कारण बड़ी भारी धर्म प्रभावना हुई।

इधर संवत् १९९२ विक्रमी में पूज्य महाराज का स्वास्थ्य अमृतसर में कुछ अधिक खराब हो गया। इससे अमृतसर के श्रावक घबरा गए और उन्होंने युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज को पूज्य महाराज के चरणों में अविलम्ब पधारने के लिये अमृतसर से स्यालकोट टेलीफोन किया।

पूज्य महाराज की तबियत की साज संभाल करने के लिये श्रावक लोग उनके पास एकत्रित हो गए। तब एक श्रावक ने कहा

"पूज्य महाराज! अब आपकी तबियत कैसी है? हमने युवाचार्य महाराज को बुलाने के लिये स्यालकोट टेलीफोन कर दिया है।"

इस पर पूज्य महाराज एकदम चौंक पड़े। उन्होंने उस श्रावक को उत्तर दिया

"हमारी तबियत के कारण आप लोगों को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। युवाचार्य जी को अभी स्यालकोट में ही प्रचार करने दो। उन्हें यहां मत बुलाओ। मुझे अभी कोई खतरा नहीं है।"

इधर पूज्य महाराज के रोग का टेलीफोन पा कर युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज तथा शतावधानी मुनि रत्नचन्द जी महाराज को स्यालकोट में ठहरने का समाचार भी मिल गया। अस्तु आप वहां कुछ दिन और धर्म प्रचार करके लाहौर पधारे। स्यालकोट से लाहौर आने तक आपको कई दिन लग गए। उधर आपको स्यालकोट में ही पूज्य महाराज का यह संदेश भी मिल गया था कि 'अभी कोई खतरा नहीं है। आने में जल्दी न करें।"

किन्तु जब आप दोनों लाहौर पधारे तो पूज्य महाराज ने कहा कि

"युवाचार्य जी तथा शतावधानी जी को अब बुलवा लिया जावे।"

अस्तु आपको संदेश भेज दिया गया और युवाचार्य जी लाहौर से विहार करके जल्दी २ अमृतसर पहुँच गए।

पूज्य श्री का स्वर्गवास किस रोग से हुआ यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह पीछे बतलाया जा चुका है कि उनको वात रोग हो गया था, जिससे उनके हाथ पैर कांपा करते थे। किन्तु यह रोग सांघातिक कभी नहीं हुआ करता।

सन् १९९१ में आपकी क्लोम (Pancreas) ग्रन्थि बढ़ गई थी। यह ग्रन्थि बढ़कर मूत्र मार्ग को अवरुद्ध कर लेती है, जिससे मूत्र उतरना बंद हो जाता है। किन्तु मूत्रनाली में लोहे या रबड़ की नली डालने से यह ग्रन्थि पीछे को हट जाती है और मूत्र उक्त नली द्वारा बाहिर निकल जाता है। वृद्धावस्था में यह ग्रन्थि प्राय: बढ़ जाया करती है, जिससे प्राय वृद्ध पुरुषों को मूत्र करने में अधिक समय लगा करता है। पूज्य श्री को भी यह रोग संवत् १९९१ में हो गया था और उनको नली द्वारा मूत्र कराया जाता था। किन्तु आप का औषधि सेवन करने का त्याग था। अतएव नली द्वारा मूत्र निकलवाने के अतिरिक्त आप इस रोग का और कुछ भी उपचार नहीं करवाते थे। डाक्टर किशोर चन्द जी तथा लाला मुनि लाल जी ने इस विषय में पूज्य महाराज की निस्वार्थ भाव से बहुत समय तक सेवा की। आप का पेशाब नली द्वारा प्रायः यही दो सज्जन निकाला करते थे। आप लोगों के उपचार से तथा विविध प्रकार के प्राकृतिक प्रयोगों से पूज्य श्री की यह स्थिति बहुत कुछ ठीक हो गई। अस्तु पूज्य श्री का स्वर्गवास इस रोग से भी नहीं हुआ।

वास्तव में पूज्य श्री के स्वर्गवास का तत्कालिक कारण कोई रोग न होकर उनकी आयु की समाप्ति ही थी। आयु समाप्त होने पर सभी को शरीर छोड़ना पड़ता है और वही आपके साथ भी हुआ।

वास्तव में पूज्य श्री ने अपने स्वर्गवास के समय की भविष्यवाणी तेरह मास पूर्व ही कर दी थी। एक बार बात चीत के प्रसंग में आपने अपने पोते शिष्य पंडित मुनि शुक्लचंद जी महाराज से कहा कि

"मेरा अनुमान है कि अभी मैं बारह मास तक नहीं मरूंगा।"

इस पर पण्डित शुक्लचन्द जी ने पूछा

"फिर तेरहवें मास में ?"

इसका उत्तर देने से उन्होंने इंकार कर दिया। तब पण्डित शुक्लचन्द जी ने फिर पूछा

"तो चौदहवं महीने में ?"

इस पर आपने उत्तर दिया कि

"वहां तक काम नहीं चलता।"

इस प्रकार आपने पण्डित मुनि शुक्लचन्द जी को अपने स्वर्गवास का समय बहुत कुछ बतला दिया था। किन्तु यह बतलाने के साथ ही आपने उनको यह भी ताकीद कर दी थी कि "इस बात को किसी के सामने न खोला जावे, अन्यथा भक्त लोग भारी आफत मचा देंगे।"

आपके स्वर्गवास से तीन दिन पूर्व आपकी सेवा में निम्नलिखित मुनिराज थे—

१ युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज, २ मुनि ईश्वरदास जी महाराज, ३ मुनि हर्षचन्द जी महाराज, ४ मुनि माणिकचन्द जी महाराज तथा ५ तपस्वी मुनि सुदर्शनलाल जी महाराज।

अपने स्वर्गवास से तीन दिन पूर्व आषाढ़ शुक्ल तीज संवत् १६६३ को आपने मुनि सुदर्शनलाल जी से कहा

"तुमने मेरी बड़ी भारी सेवा की है। अभी तुमको तीन दिन का कष्ट और है। किन्तु यह बात किसी से कहना नहीं, क्योंकि इसको सुन कर सहस्रों व्यक्ति आ जावेंगे।"

इस प्रकार आपके तीन दिन भी निकल चले।

आषाढ़ शुक्ला पंचमी को आप ने रात्रि के साढ़े तीन बजे के लगभग युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज को उठाया और उनसे कहा

"प्रतिक्रमण प्रारम्भ करो।"

तब युवाचार्यजी बोले

"गुरुदेव ! अभी प्रतिक्रमण का समय नहीं हुआ।"

तब पूज्य महाराज बोले

"नहीं, अभी करो। आज समय ऐसा ही है।"

इस पर सब लोगों ने आपसे प्रतिक्रमण की आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण आरम्भ कर दिया। प्रतिक्रमण लगभग पौने पांच बजे समाप्त हो गया।

प्रतिक्रमण के पश्चात् आप बोले

"मेरे वस्त्रों की प्रतिलेखना करके उन्हें भूमि पर बिछा दो।"

इस पर युवाचार्य जी बोले

"गुरुदेव ! अभी तो आपकी तबियत ठीक है।"

तब आपने उत्तर दिया

"नहीं, अब समय आ गया।"

इस पर आपके वस्त्रों की प्रतिलेखना करके उन्हें भूमि पर बिछा दिया गया। इसके पश्चात् आपने प्रथम सबको जो कुछ शिक्षा देनी थी वह देकर फिर निन्दना तथा आलोचना की। फिर आप युवाचार्य श्री काशीराम जी से बोले

"मुझे संथारा करा दो। यह ध्यान रहे कि संथारा आरम्भ करने के बाद मुझ से कोई न बोले।"

यह कह कर आप भूमि पर मुंह ढक कर विधि सहित संथारा आरम्भ करके लेट गए। ऊपर के साधु आपको 'वृद्धालोचना' पाठ सुनाते रहे और आप मुंह ढांक कर लेटे रहे और किसी से कुछ भी नहीं बोले और न लेशमात्र भी हिले डुले। इस प्रकार आप ५॥ बजे प्रातः काल से लेकर ८ बजे तक निश्चेष्ट तथा निःशब्द लेटे रहे।

आपका आषाढ़ शुक्ला ६ संवत् १९९२ को सन् १९३५ ईस्वी में प्रातः आठ बजे अमृतसर में स्वर्गवास हुआ।

आपके स्वर्गवास का का समाचार टेलीफोन तथा तार द्वारा पंजाब भर में बात की बात में फैल गया। आषाढ़ शुक्ला छट को वहां बड़ा भारी साया था, जिस से उस दिन सहस्रों विवाह हो रहे थे। पण्डित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज इस समय नारोवाल में धर्म प्रचार कर रहे थे। वहां भी एक बारात आई हुई थी, किन्तु उस बारात के सभी बाराती दूल्हे और उसके पिता को अकेला छोड़ कर अमृतसर चले गए। दूल्हे के भाई तक बारात में नहीं ठहरे। प्रायः यही दशा और सब बारातों की भी हुई। इस प्रकार इस अवसर पर अमृतसर में पजाब भर से जन समूह उमड़ पढ़ा। शव के आस पास प्रत्येक समय दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। पंजाब के अनेक भागों से इस बात का अनुरोध किया गया कि जब तक हम न आवें उनका विमान न उठाया जावे।

इस समय लाहौर के श्री संघ ने अमृतसर वालों से आग्रह किया कि

"विमान बनाने का उत्तरदायित्व उन्हें दिया जावे।"

इस आग्रह को मान लिया गया।

इस पर लाहौर वालों ने एक ऐसा अद्भुत भव्य तथा सुन्दर विमान बनाया कि राजों महाराजाओं को भी ऐसा विमान नसीब होना कठिन है। इस विमान को बनाने के लिये देश के सर्व श्रेष्ठ कारीगरों को एक सहस्र रुपया मजदूरी दी गई थी। सारा विमान सोने का बना हुआ दिखलाई देता था। उसमें ऊपर चांदी के छत्र लगे हुए थे। विमान को लगभग एक बजे दोपहर उठाया गया। उसके साथ असंख्य जनसमुद्र था। शव यात्रा का जुलूस अमृतसर के गुरु बाजार, साबुनिया बाजार, कटड़ा अहलूवालिया तथा लोगढ़ दर्वाजा आदि नगर के सभी मुख्य २ बाजारों में से निकलता हुआ स्मशान की ओर बढ़ता जाता था।

पूज्य श्री के शव को विमान के अन्दर लम्बा लेटाया गया था। उन का मुख खुला था और उस पर मुख-वस्त्रिका बंधी हुई थी। उनके ऊपर अनेक दुशाले पड़े हुए थे। शव यात्रा के मार्ग में स्थान स्थान पर हिन्दुओं तथा मुसलमानों सभी ने सबीलें आदि लगा रखी थीं। कहीं ठण्डे जल का, कहीं शर्बत का तथा अनेक स्थानों पर लस्सी पिलाने का प्रबन्ध था। पान इलायची की खातिर को तो शव यात्रा वालों को संभालना कठिन हो रहा था। जुलूस ज्यों ज्यों आगे बढ़ता जाता था, पूज्य महाराज के शव पर अधिकाधिक दुशाले पड़ते जाते थे। स्थान स्थान पर केवड़ा तथा गुलाब की वर्षा की जा रही थी। कटड़ा अहलूवालिया में तो कई अजैनों ने भी उन पर दुशाले डाले। शव यात्रा के जुलूस में लगभग एक लाख की भीड़ थी। इस समय अमृतसर के

सभी मुख्य मुख्य बाजार बन्द थे। आप के ऊपर लगभग १७६ दुशाले डाले गए।

इस समय सारा अमृतसर शोक संतप्त हो रहा था। लोग धाएँ मार मार कर रो रहे थे। बात यह थी कि पूज्य महाराज के तीस वर्ष के निवास काल में लोग अत्यधिक समृद्ध बन कर माला-माल हो गए थे। उन के श्रद्धालु तो अत्यधिक धनी हो गए थे। अतएव पूज्य महाराज का वियोग होने पर उनका शोक करना उचित ही था। शव यात्रा का जुलूस आगे बढ़ता जाता था और सारा नगर शोक में डूबता जाता था।

जब शव यात्रा का जुलूस नगर से बाहिर निकला तो नगर में बड़े जोर की वर्षा हुई। इस वर्षा की यह विशेषता रही कि नगर के बाहिर इसका लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा और शव यात्रा का जुलूस सूखे का सूखा बना रहा।

शव यात्रा का जुलूस लगभग ५॥ बजे शाम को स्मशान भूमि में पहुंचा। वहां श्वेत तथा लाल चन्दन की एक अद्भुत चिता तैयार की गई। उसमें बीच बीच में गोला, किशमिश, मखाने, कमल गट्टे, सुपारी आदि अनेक मेवाओं का ढेर भी मिलाया गया। जिस समय आपके शव को स्वर्णमय विमान से उतार कर चिता पर रखा गया तो जलाने के स्थान पर सोना ही सोना बिखरा हुआ पाया गया।

चिता में आग दे दी गई और वह भव्य मूर्ति देखते ही देखते अदृश्य हो गई।

इस प्रकार अमृतसर का वह सौभाग्यसूर्य उनको तीस वर्ष तक अपनी ज्योतिर्मय किरणों से आप्लावित करके नियति के गर्भ में विलीन होकर अस्त हो गया। पंजाब का वह उद्धार-कर्ता उसको लगभग साठ वर्ष तक उपदेशामृत का पान कराकर

उसको पपीहा के समान स्वाति बूंद के लिये तरसता हुआ छोड़-कर स्वर्ग सिधार गया।

आपका जन्म संवत् १६०६ में तथा स्वर्गवास संवत् १६६२ में हुआ। इस प्रकार आपने कुल ८६ वर्ष की आयु पाई। आपने २७ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य और ५६ साल तक मुनि व्रत का पालन किया। इस बीच में २२ वर्ष तक तो आपने लगातार एकान्तर किये। आप जन्म भर ब्रह्मचारी रहे।

वास्तव में इस पंचम काल में आपके जैसा तप करना अत्यन्त कठिन है। आपने जिस धैर्य तथा साहस के साथ दीक्षा लेकर संयम का पालन किया वह अनुकरणीय तथा स्मरणीय है। आपकी फैलाई हुई ज्ञान ज्योति समस्त देश में अभी तक भी अपना प्रकाश फैला रही है।

यह आपकी विशेषता थी कि आप मनुष्य के अन्तरात्मा को पहचानते थे। अपने उसी ज्ञान के बल से आपने यह देख लिया कि आपके द्वारा जलाई हुई ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित रखने का कार्य केवल युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज ही कर सकेंगे। इसलिये आपने एक सार्वजनिक पदवी दान महोत्सव में उनको युवाचार्य की पदवी देकर यह घोषणा कर दी थी कि उनके बाद आचार्य पद श्री काशीराम जी महाराज को दिया जावेगा।

उपसंहार

आपके उत्तराधिकारी

पवाएण पवायं जाणिज्ज,

आचारांग सूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन ५, उद्देशक ६

गुरुपरम्परा से सर्वज्ञोपदेश को जानना चाहिये ।

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात फाल्गुण सुदि द्वितीया संवत् १९९२ को होशियारपुर में पाट महोत्सव का बड़ा भारी उत्सव मना कर युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज को आचार्य पद दिया गया।

आप पसरूर के निवासी थे। आपके पिता गोविन्दशाह लाला गंडामल के छोटे भाई थे। अतएव लाला गंडामल काशीरामजी के ताऊ थे। इस प्रकार आप पूज्य सोहनलालजी महाराज के गृहस्थ जीवन के ममेरे भाई थे। लाला गंडामल के पुत्र राय साहिब उत्तमचन्द काशीरामजी के तएरे भाई थे।

काशीराम जी को दीक्षा देकर पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने उनको पांच वर्ष के अल्प समय में ही सब शास्त्र पढ़ा दिये। वैसे प्रत्येक सूत्र ग्रन्थ के पढ़ाए जाने का समय नियत है, किन्तु आचार्य को अपने विद्यार्थी की तीव्र बुद्धि पर दृष्टि रखते हुए उसमें व्यतिक्रम करने का अधिकार है। वज्रस्वामी के विषय में भी इस अधिकार से काम लेकर उनको अल्प समय में ही आगमों का अध्ययन करा दिया गया था।

पूज्य श्री काशीराम जी महाराज के शरीर की कांति अत्यन्त देदीप्यमान थी। उनमें इतना अधिक तेज था कि उनके मुख पर दृष्टि गड़ाना कठिन था। उनका प्रताप भी इतना अधिक था कि उनके सामने सभी को झुकना पड़ता था। वास्तव में उनके जैसा कान्तिमान साधु देखने में नहीं आया। शास्त्र में आचार्य में जिन जिन गुणों का होना आवश्यक माना गया है, वह उन सभी गुणों से मंडित थे।

पूज्य श्री काशीराम जी महाराज को जैन समाज के उत्थान का रात दिन ध्यान बना रहता था। उनका यह क्रम था कि वह प्रत्येक चातुर्मास में बत्तीसों सूत्रों का स्वाध्याय किया करते थे। वास्तव में यह बत्तीसों आगम उनको बहुत कुछ कण्ठ याद हो गए थे। उन्होंने जैनियों में शीतला पूजन आदि मिथ्यात्वों को छुड़ा कर उनको सत्य मार्ग पर चलाया था।

पूज्य काशीराम जी महाराज ने अपने आचार्यकाल में दो विशेष कार्य किये—

व्यर्थ व्यय को रोकना तथा पतितों का उद्धार करना।

उन्होंने फजूल खर्ची को रोकने के लिये अनेक प्रयत्न किये। इस विषय में आपने प्रथम पग यह उठाया कि बारातों को अपने यहां अधिक न ठहराने की प्रेरणा करके उनका अधिक ठहराना एक दम बन्द कर दिया। अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस तो व्यर्थव्यय रोकने के प्रस्ताव ही पास करके रह जाती थी, किन्तु आप अपने उपदेश द्वारा उसके प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत करके समाज का हित सम्पादन किया करते थे। अनेक बार आप बिरादरी के झगड़ों को भी मिटाया करते थे। आपके प्रयत्न द्वारा आपके बीचबिचाव से

अनेक स्थानों पर भारी २ मतभेद दूर हो कर दोनों पक्ष आपस में प्रेमपूर्वक गले मिल जाते थे।

पतितों का उद्धार करना आपके जीवन की विशेषता थी। हिन्दुओं के प्रायः सम्प्रदायों तथा दिगम्बर जैनियों में अभी तक यह प्रथा चली आती है कि वह लेशमात्र भी सामाजिक अपराध का पता लगने पर अपराधी को जातिबहिष्कृत कर देते हैं। वास्तव में उन लोगों की इसी नीति के कारण भारत में मुसलमानों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई। यदि यह लोग सम्यक्त्व के स्थितिकरण अंग पर आचरण करते तो आज भारत में मुसलमानों की संख्या इतनी अधिक बढ़ कर हिन्दुओं की अनेक स्थानों में ऐसी शोचनीय अवस्था न हो जाती। पूज्य श्री काशीराम जी महाराज अत्यधिक दूरदर्शी थे। भारत के अन्य भागों की अपेक्षा हिन्दुओं की इस संकीर्ण नीति के दुष्परिणाम पंजाब को अधिक मात्रा में भोगने पड़ रहे थे। अतएव वहां तो इस सम्बन्ध में विशेष रूप से एक उदार नीति बरतने की आवश्यकता थी। पंजाब का यह सौभाग्य था कि उसे अपने उस कठिन समय में पूज्य श्री काशीराम जी महाराज के रूप में एक योग्य नेता मिला। पूज्य काशीराम जी महाराज ने ऐसे अनेक धर्मच्युत व्यक्तियों को समाज में पुनः सम्मिलित करके दसे बीसे आदि के झगड़ों को दूर करके सबको बिरादरी में सम्मिलित कर दिया और उनको धार्मिक जीवन व्यतीत करने की सुविधा दी। यहां इस प्रकार के कुछ उदाहरणों को दिया जाता है—

कसूर में एक ओसवाल जैन मुसलमान बन गया था। वह कई वर्ष तक मुसलमान बना रहा और कसूर के जैनियों के कान पर जूं तक न रेंगी। किन्तु जब युवाचार्य काशीराम जी

महाराज विहार करते हुए कसूर पहुंचे तो उनको इस समाचार से आश्चर्य हुआ। उन्होंने यत्न करके उस मुसलमान बने हुए ओसवाल युवक को अपने पास बुलवा कर उससे निम्नलिखित वार्तालाप किया

युवाचार्य—क्यों भाई! क्या तुम हृदय की शान्ति प्राप्त करने के लिये जैनी से मुसलमान बने हो? क्या इस्लाम में जैन धर्म से अधिक शांति है?

युवक—नहीं महाराज! इस्लाम का हृदय की शान्ति से क्या सम्बन्ध?

युवाचार्य—तब फिर तुम मुसलमान क्यों बन गए?

युवक—महाराज! मुसलमान मुझे परिस्थिति ने बनाया। मेरे सामने आचरण की निर्बलता की विवशता थी। बिरादरी वालों ने उसमें एक और धक्का लगा दिया, जिससे मुझे इच्छा न होते हुए भी मुसलमान बनना पड़ा।

युवाचार्य—तब तो तुमको जैन धर्म में दुबारा आकर प्रसन्नता ही होगी।

युवक—नहीं महाराज! मुसलमान बनने के बाद अब मैं जैनी बनने को तैयार नहीं हूं।

युवाचार्य—यह क्यों?

युवक—बात यह है कि मुसलमान के नाते इस्लाम बिरादरी में मेरे साथ समानता का व्यवहार किया जाता है। फिर मुसलमान लोग नए बने हुए मुसलमान को नौ-मुस्लिम कह कर अपने से भी अधिक सुविधाएं देते हैं। यदि मैं बड़े से बड़े मुसलमान राज्याधिकारी के पास भी चला जाऊं तो वह मुझे अपने अधिकार से भी बढ़ कर अधिक सुविधाएं केवल इसलिये देगा कि मैं इस्लाम धर्म में स्थिर बना रहूँ। इसके विरुद्ध यदि मैं जैनी

बन भी गया तो सब लोग छुआछूत करके मुझ से घृणा करेंगे, जिसको मैं अपना अपमान समझ कर सहन न कर सकूंगा। अभी तो इस्लाम बिरादरी में मेरा स्थान है, किन्तु जैनी बन जाने पर मैं ठीक धोबी के कुत्ते के समान न तो घर का और न घाट का ही रह पाऊंगा।

युवाचार्य—भाई ! यह बात तुम्हारी ठीक है। किन्तु यदि जैनी लोग तुम्हारे हाथ का भोजन खा कर तुमको समानता का पद दें तब तो तुमको जैनी बनने में आपत्ति न होगी ?

युवक—हां, तब मैं अपने पुराने धर्म में वापिस आ जाऊंगा।

इस पर युवाचार्य श्री काशीराम जी महाराज ने कसूर के प्रमुख जैन पंचों को बुला कर उन पर दबाव डाला कि वह उस युवक को शुद्ध करके समानता के आधार पर फिर अपनी जाति में मिला लें। इस प्रकार एक जैन युवक मुसलमान बन कर भी आपके प्रयत्न से फिर जैन धर्म की शरण में आ गया।

× × × ×

जिस समय युवाचार्य जी जंडियाला गुरु में विहार कर रहे थे तो एक ठाकुर दास नामक व्यक्ति आपके पास आ कर कहने लगा

"महाराज ! यहां बड़ा अत्याचार हो रहा है। एक जैन लड़के को मुसलमानों ने अमृतसर ले जाकर मुसलमान बना लिया है और उसका नाम गुलाम मुहम्मद रख दिया है।"

युवाचार्य—उस के घर में सबसे बड़ा कौन है ?

ठाकुर दास— उसका पिता है।

युवाचार्य—अच्छा उसे हमारे पास बुला कर लाओ।

इस पर ठाकुर दास यत्न करके गुलाम मुहम्मद के पिता को बुला कर युवाचार्य जी के पास लाया।

युवाचार्य जी ने जब उस से वार्तालाप किया तो वह अपने पुत्र के विषय में स्मरण करके एक दम रो पड़ा। युवाचार्य जी ने उसको सांत्वना देकर यह विश्वास दिलाया कि उसका पुत्र शुद्ध होकर फिर भी बिरादरी में मिल सकता है। इस पर गुलाम मुहम्मद को भी युवाचार्य महाराज के पास बुलाया गया। आपने उसको उपदेश देकर जैन धर्म में वापिस आने को राजी कर लिया। अब प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि उसको किस प्रकार शुद्ध किया जावे। तब उसका पिता बोला

पिता—इसे गंगा जी ले जा कर शुद्ध करा लें।

युवाचार्य—क्या गंगाजी के जल में णमोकार मन्त्र से भी अधिक शक्ति है? आप निश्चिन्त रहें। उसकी शुद्धि हम करेंगे और अभी करेंगे।

इसके पश्चात् आपने उस को णमोकार मन्त्र, आलोचना तथा प्रतिक्रमण से शुद्ध करके तथा सम्यक्त्व देकर उसको उसकी बिरादरी में समानता के आधार पर मिलवा दिया।

× × × ×

जब युवाचार्य जी विहार करते हुए स्यालकोट आए तो वहां आपको एक ऐसे मुसलमान परिवार का समाचार मिला, जिस में कई भाई बहिन अपनी माता के साथ रहते थे। उनका पिता एक जैनी था और उसने उन सब को एक मुसलमान स्त्री में उत्पन्न किया था। इस समय उन का वह पिता मर चुका था। युवाचार्य जी ने मन में विचार किया कि यदि इन सब को

मुसलमान रहने दिया गया तो यह लोग जैनियों के कट्टर शत्रु प्रमाणित होंगे। अतएव आपने यत्न करके उन सब को शुद्ध करके जैनी बना लिया और समानता के आधार पर बिरादरी में सम्मलित कर दिया।

× × × ×

जिस प्रकार आपने धर्म विमुखों को शुद्ध करके जैन धर्म में फिर सम्मलित करके स्थितिकरण अंग का पूर्ण रूपेण पालन किया, उसी प्रकार आपने समाज की फजूलखर्ची को रोकने में भी कम परिश्रम नहीं किया।

फजूलखर्ची का सब से भयंकर रूप है, राजस्थान की नुकता प्रथा। इस प्रथा के अनुसार यदि किसी के यहां एक लड़का भी मर जावे तो बारह दिन तक तो उसे बिरादरी वालों को जिमाना पड़ता है। इस के पश्चात् उसे कई गांवों को जिमाना पड़ता है। अनेक बार तो ऐसा देखा जाता है कि इन दावतों में घर की समस्त पूंजी खर्च हो जाती है और घर की स्त्रियां निःसहाय होकर दाने दाने को मुहताज हो जाती हैं। कई बार उनके सिर पर इस कुप्रथा के कारण ऋण की बड़ी २ राशियां चढ़ जाया करती हैं। अतएव युवाचार्य श्री काशीराम जी को जब इन कुरीतियों का पता लगा तो उन्होंने उनको समूल नष्ट कर देने के लिये उपदेश देना आरम्भ कर दिया।

आपने अपने उपदेश द्वारा जांगल देश, मारवाड़ तथा मेवाड़ के अनेक नगरों में इस नुकता प्रथा को बंद कराया। जांगल देश के रामा मण्डी में तो आपके उपदेश का ऐसा भारी प्रभाव पड़ा कि वहां के अग्रवालों ने सभा करके जन्म से लेकर अंत्येष्टि संस्कार तक की सभी कुरीतियों को बन्द कर दिया। बारात के

अधिक दिन ठहराने को भी आपने अनेक स्थानों पर बन्द कराया। इस प्रकार सत्य धर्मोपदेष्टा होने के अतिरिक्त आप एक बड़े भारी समाजसुधारक भी थे।

× × × ×

पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज का स्वर्गवास होने के अनन्तर होशियारपुर में एक बड़ा भारी सम्मेलन फाल्गुण शुक्ला द्वितीया संवत् १९९२ को सन् १९३५ में ही किया गया। इसमें पंजाब भर के बड़े २ तपस्वी मुनि अपनी अपनी शिष्य मण्डली सहित पधारे। इस सम्मेलन में पंजाब भर की आर्याएं भी आईं। श्रावक और श्राविकाएं तो इस उत्सव में पञ्जाब से बाहिर की भी कम नहीं आईं। इस महोत्सव में युवाचार्य श्री काशी राम जी महाराज को पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज के पाट पर बिठला कर संघ का आचार्य बनाकर उन्हें आचार्य पद की चादर दी गई। इस प्रकार यह उत्सव आपका पाट महोत्सव था।

इस उत्सव में शतावधानी मुनि रत्नचन्द जी महाराज तथा उपाध्याय आत्माराम जी महाराज भी थे। आपके पाटमहोत्सव पर इन सभी ने आप का अभिनन्दन किया।

होशियार पुर के इस उत्सव में ही शतावधानी जी तथा पूज्य काशी राम जी महाराज के प्रयत्न से यह निश्चय किया गया कि काशी के हिन्दू विश्व विद्यालय की भूमि में जैन धर्म के प्रचार के लिये एक श्री पार्श्व नाथ विद्याश्रम खोला जावे। वास्तव में इस विद्यालय की स्थापना के लिये स्वर्गीय पूज्य सोहनलाल जी महाराज जी की भी बड़ी भारी इच्छा थी। इस अवसर पर इस विद्यालय की स्थापना करके उसकी एक कमैटी

भी बनाई गई, जिसका नाम 'सोहन लाल समिति' रखा गया। लाला त्रिभुवननाथ कपूरथले वालों को उसका प्रधान तथा बाबू हरजस राय बी० ए० अमृतसर वालों को उसका मन्त्री बनाया गया। लाला मुनिलाल जी को इस कमैटी का कोषाध्यक्ष बना गया। विद्यालय के कार्य तथा उसकी वार्षिक रिपोर्टों को देखने से पता चलता है कि आज कल इस विद्यालय का काम खूब अच्छी तरह चल रहा है।

होशियार पुर के इस पाट महोत्सव के अवसर पर अनेकों साधुओं को गणावच्छेदक, प्रवर्तक आदि की पदवियां भी द गई। पूज्य श्री काशीराम जी महाराज ने इसके पश्चात् निम्न-लिखित स्थानों पर चातुर्मास किये।

संवत् १९९३—अम्बाला
संवत् १९९४—दिल्ली
संवत् १९९५—उदयपुर
संवत् १९९६—अहमद नगर
संवत् १९९७—बम्बई
संवत् १९९८—राजकोट
संवत् १९९९—जोधपुर
संवत् २०००—जयपुर
संवत् २००१—दिल्ली

इस से पता चलता है कि आपने बम्बई से आगे अहमद नगर तक का विहार करके सभी स्थानों में धर्म प्रचार किया था। शतावधानी मुनि रत्नचन्द्र जी महाराज का आप से इतना अधिक घनिष्ट प्रेम हो गया था कि वह तब से लेकर अपना स्वर्गवास होने तक आपके साथ ही विहार करते रहे। जिस समय पूज्य काशीराम जी महाराज का संवत् १९९७ में बम्बई में

चातुर्मास था तो शतावधानी मुनि रत्नचन्द्र जी का चातुर्मास के बाद वहीं स्वर्गवास हो गया।

शतावधानी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् पूज्य श्री काशीराम जी महाराज का शरीर भी अधिक दिन नहीं चला।

अन्त में पूज्य श्री काशीराम जी महाराज का ज्येष्ठ बदि अष्टमी संवत् २००२ तदनुसार ३ जून सन् १९४५ को अम्बाला में स्वर्गवास हो गया।

आपके स्वर्गवास के समाचार से जैन समाज एक दम शोक सागर में डूब गया। आपका बड़ा भव्य विमान बना कर चन्दन की लकड़ियों से अंत्येष्टि संस्कार किया गया। आपके ऊपर विभिन्न व्यक्तियों ने १७६ दुशाले डाले।

× × × ×

इसके पश्चात् लुधियाना में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी संवत् २००३ को सन् १९४६ में एक बड़ा भारी पाट महोत्सव किया गया। इसमें उपाध्याय आत्माराम जी महाराज को पूज्य काशीराम जी महाराज के पाट पर बिठला कर आचार्य पद की चादर दी गई। इस अवसर पर निम्नलिखित पदवियां भी दी गई—

युवाचार्य—पंडित मुनि शुक्लचन्द्र जी महाराज।

उपाध्याय—मुनि प्रेमचन्द जी महाराज।

गणावच्छेदक—मुनि रामस्वरूप जी महाराज तथा
मुनि रामसिंह जी महाराज।

बहुसूत्री—मुनि नौबतराय जी महाराज।

प्रसिद्ध वक्ता—श्री विमल मुनि जी महाराज।

एकता के लिये प्रयत्न

अजमेर के अखिल भारतीय साधु सम्मेलन का वर्णन इन पंक्तियों में पीछे किया जा चुका है। उसमें स्थानकवासी जैन धर्म की प्रायः सभी सम्प्रदायों के मुख्य मुख्य प्रतिनिधि मुनिराज उपस्थित थे। इस सम्मेलन के अवसर पर अग्रगण्य मुनिराजों ने जैन समाज के उत्थान के लिये तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि के अर्थ विचार विनिमयपूर्वक बंधारण करके संगठन का बीज बोया था, जिसे स्वर्गीय शतावधानी मुनि रत्नचन्द जी महाराज तथा पूज्य श्री काशीराम जी महाराज ने सींचा था। स्वर्गीय पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज ने इस सम्मेलन में एक वर्द्धमान संघ योजना उपस्थित की थी, जो अब तक सब के कान में गूंज रही थी।

अजमेर सम्मेलन के पश्चात् अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर जैन कांफ्रेंस ने अपना अधिवेशन घाटकोपर में किया, जहां शतावधानी मुनि पंडित रत्नचन्द जी महाराज, पूज्य श्री काशीराम जी महाराज, मुनि ताराचन्द जी, मुनि सौभाग्यमल जी तथा मुनि किशनचन्द जी महाराज ने एकत्रित हो कर 'वीर संघ' की योजना बनाई। इस प्रकार स्थानकवासी जैन समाज को संगठित करने की भावना चलती रही और धीरे धीरे प्रगति भी करती रही।

सन् १९४८ में जैन गुरुकुल ब्यावर के इक्कीसवें वार्षिकोत्सव पर श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस की जेनेरल कमैटी का अधिवेशन भी हुआ। इसमें गुरुकुल की पुनीत भूमि में 'संघ ऐक्य' को मूर्त रूप देने का प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रस्ताव में यह निश्चय किया गया कि स्थानकवासी सम्प्रदाय के विविध आचार्यों के सहयोग से इस योजना को मूर्तरूप

दिया जावे। अस्तु इस उद्देश्य के लिये ब्यावर से एक शिष्ट-मंडल कांफ्रेंस के प्रमुख कार्यकर्ताओं का माननीय कुन्दनमल जी साहिब फिरोदिया जी के नेतृत्व में चला। प्रारम्भ में यह शिष्टमंडल पाली में जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म ाराज की सेवा में उपस्थित हुआ। यहां श्री चिमनलाल चकुभाई के सहयोग से 'संघ ऐक्य योजना' तयार की गई। बाद में इस योजना को अनेक मुनिवरों ने स्वीकार कर लिया। कांफ्रेंस के मद्रास अधिवेशन में 'संघ ऐक्य योजना' को सर्वसम्मति से पास किया गया।

इस समय यह निश्चय किया गया कि दो वर्ष के पश्चात एक अखिल भारतीय साधु सम्मेलन फिर किया जावे और इस बीच में विविध प्रान्तों में साधु सम्मेलन तथा साम्प्रदायिक संगठन करके उसके लिये जनमत तयार किया जावे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक साधु सम्मेलन नियोजक समिति भी बनाई गई, जिसका संयोजक मंत्री श्री धीरजलाल के० तुरखिया को बनाया गया।

ब्यावर में राजस्थान की १७ सम्प्रदायों का सम्मेलन किया गया था, किन्तु उसमें ६ सम्प्रदायों के प्रतिनिधि ही उपस्थित थे। इसमें कांफ्रेंस द्वारा प्रकाशित वीर संघ की योजना तथा समाचारी का संशोधन किया गया। उपस्थित ६ सम्प्रदायों में से ५ सम्प्रदायों ने अपनी अपनी सम्प्रदायों के नाम और पदवियों का त्याग कर 'वीर वर्द्धमान श्रमण संघ' की स्थापना की। इस समय पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज को आचार्य चुन कर बृहत् साधु सम्मेलन किये जाने तक 'संघ ऐक्य' का आदर्श उपस्थित किया गया।

अगले वर्ष गुलाबपुरा में चार बड़ों का स्नेह सम्मेलन किया गया। तीसरे वर्ष लुधियाना में पंजाब प्रांतीय सम्मेलन तथा सुरेन्द्र नगर में गुजरात प्रांतीय सम्मेलन किया गया। इस समय यह तय किया गया कि बैशाख शुक्ला तृतीया संवत् २००६ को अक्षय तृतीया के दिन मारवाड़ के सादड़ी नामक स्थान में वृहत् साधु सम्मेलन किया जावे। समय कम था, विहार लम्बा था, गर्मी का मौसिम था, किन्तु कष्टसहिष्णु मुनिवर अपने स्वास्थ्य की चिन्ता किये बिना सैंकड़ों मील की पैदल यात्रा करके यथा समय सादड़ी पधार गए। भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के संत ज्यों ज्यों किशनगढ़, अजमेर तथा ब्यावर आदि स्थानों में मिलते गए, बड़े प्रेम तथा उदारता से सहृदयता प्रकट करते थे। सम्मेलन का कार्य बड़ी शांति, सभ्यता और विवेक के वातावरण में आरम्भ हुआ। कांफ्रेंस के प्रमुख के नाते श्री फिरोदिया जी को तथा मंत्री के नाते श्री धीरजलाल के० तुरखिया जी को सम्मेलन की सब कार्यवाही में बैठने का अधिकार था।

साधु सम्मेलन में पंडित मुनि श्री मदनलाल जी महाराज को शान्तिरक्षक बनाया गया। उनका सहायक पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज को बनाया गया। कवि अमरचन्द जी महाराज, पंडित श्रीचंद जी महाराज, वक्ता पंडित सौभाग्यमल जी महाराज तथा मरुधर मंत्री श्री मिश्रीलाल जी महाराज ने विवादग्रस्त प्रश्नों को हल करने में अद्भुत कार्य किया। सम्मेलन में प्रतिनिधियों के अतिरिक्त दर्शक सन्त तथा सतियों के बैठने की भी व्यवस्था की गई थी।

सादड़ी का यह सम्मेलन वैशाख शुक्ला तृतीया से आरम्भ हो कर त्रयोदशी तक ११ दिन चला। इसके परिणामस्वरूप

विभिन्न सम्प्रदायें एक आचार्य के नेतृत्व में और एक समाचारी में 'श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' के रूप में सुसंगठित हो गईं।

सादड़ी सम्मेलन में २७ सम्प्रदायों के ३४१ मुनि तथा ७६८ आर्याएं उपस्थित थीं। उनमें से कुल ५३ प्रतिनिधि थे। इन प्रतिनिधियों में पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की सम्प्रदाय के निम्नलिखित चार प्रतिनिधि उपस्थित थे—

१ युवाचार्य श्री शुक्लचन्द जी महाराज,
२ उपाध्याय श्री प्रेमचन्द जी महाराज,
३ व्याख्यान वाचस्पति पंडित मुनि श्री मदनलाल जी महाराज तथा
४ वक्ता मुनि पंडित श्री विमलचन्द्र जी महाराज।

प्रतिनिधि मुनिवरों की गोल बैठक श्री लोंकाशाह जैन गुरु कुल के केन्द्रीय हाल में अक्षय तृतीया (वैशाख शुक्ल तृतीया) संवत् २००९ तदनुसार तारीख २७ अप्रैल सन् १९५२ को मध्याह्न ३ बजे से प्रारम्भ हुई।

इस सम्मेलन में २८ अप्रैल १९५२ को प्रस्ताव संख्या ६ निम्नलिखित रूप में सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया

"वृहत्साधु सम्मेलन सादड़ी के लिए निर्वाचित प्रतिनिधि मुनिराज यह निर्णय करते हैं कि अपनी अपनी सम्प्रदाय और साम्प्रदायिक पदवियों का विलीनीकरण करके 'एक आचार्य के नेतृत्व में एक संघ' कायम किया जावे।

प्रस्ताव संख्या ७ के अनुसार ता० २९ को इस संघ का नाम 'श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' रखना निश्चित किया गया।

प्रस्ताव संख्या ८ के अनुसार यह निश्चय किया गया कि "शासन को सुविधापूर्वक गति देने तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए एक आचार्य के नीचे एक 'व्यवस्थापक मंत्री मंडल' बनाया जावे।"

प्रस्ताव संख्या ९ के अनुसार व्यवस्थापक मन्त्री मण्डल के सदस्यों की संख्या १६ निश्चित की गई।

प्रस्ताव संख्या १० के अनुसार व्यवस्थापक मंत्री मंडल का कार्यकाल तीन वर्ष निश्चित किया गया।

वैशाख शुक्ल नवमी संवत् २००९ तदनुसार ३ मई १९५२ को प्रस्ताव संख्या १८ के अनुसार 'जैन श्रमण संघ के आचार्य श्री जैन धर्म दिवाकर साहित्यरत्न पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज' नियत किए गए। इसके अतिरिक्त पूज्य श्री गणेशीलाल जी महाराज को उपाचार्य नियत किया गया। क्योंकि आचार्य आत्माराम जी महाराज के अत्यन्त वृद्ध होने कारण संघ का कार्य चलाने के लिए किसी को उपाचार्य नियत करना आवश्यक था।

इसी दिन प्रस्ताव संख्या १९ के अनुसार व्यवस्थापक मंत्री मंडल के सदस्यों का निम्न लिखित निर्वाचन किया गया--

१ प्रधानमंत्री—पंडित श्री आनन्द ऋषि जी महाराज,
२ *सहायक मंत्री—पंडित श्री हस्तीमल जी महाराज,*
३ सहायक मंत्री— पंडित प्यारचन्द जी महाराज।
४ चातुर्मास मंत्री--पंडित श्री पन्नालाल जी महाराज।
५ विहार मंत्री—मरुधर केसरी मिश्रीमल जी महाराज।
६ विहार सेवा तथा चातुर्मास मन्त्री—पण्डित श्री शुक्लचन्द जी महाराज।

७ सेवा मन्त्री—पण्डित श्री किशनलाल जी महाराज।
८ प्रचार मन्त्री— धर्मोपदेष्टा श्री फूलचन्द जी महाराज।
९ प्रचार मन्त्री— पण्डित श्री प्रेमचन्द जी महाराज।
१० आक्षेप निवारक—पण्डित श्री पृथ्वी चन्द जी महाराज।
११ साहित्य शिक्षण मंत्री—पंडित श्री पुष्कर मुनि जी महाराज।
१२ विहार मंत्री—पंडित श्री मोती लाल जी महाराज (मेवाड़ी)
१३ प्रायश्चित्त मन्त्री—पण्डित श्री समर्थमल जी महाराज।
१४ दीक्षा मन्त्री—पंडित श्री सहसमल जी महाराज।
१५ साहित्य विभाग—मुनि श्री सुशीलकुमार जी शास्त्री प्रभाकर।

एक प्रस्ताव द्वारा उन सब आचार्यों, युवाचार्यों, उपाध्यायों, प्रवर्तक आदि पदवियों के धारक मुनिराजों को धन्यवाद दिया गया, जिन्होंने संघ की एकता के लिए अपनी अपनी पदवियों का विलीनीकरण किया था। इसी सम्बन्ध में पंडित मुनि शुक्लचन्द जी महाराज ने इससे पूर्व अपनी युवाचार्य पदवी का विलीनीकरण कर दिया था।

यह भी निश्चय किया गया कि इस मन्त्रीमण्डल का कार्य-काल तीन वर्ष होगा। मन्त्रीमण्डल में मतभेद होने की दशा में अंतिम निर्णय करने का अधिकार आचार्य को दिया गया। यह व्यवस्था की गई कि मंत्रीमण्डल यथासंभव वर्ष में एक बार अपनी बैठक अवश्य किया करे। किन्तु यदि प्रतिवर्ष मिलना संभव न हो तो प्रति तीसरे वर्ष अपनी बैठक अवश्य करे। यह भी निश्चय किया गया कि मन्त्रीमण्डल की बैठक में स्वयं उपस्थित

न हो सकने वाले मुनिराज किसी अन्य मुनिराज को अपनी सर्व सत्ता तथा अधिकार देकर प्रतिनिधि रूप में भेज सकेंगे।

सादड़ी के इस सम्मेलन में संघ व्यवस्था के कार्य के अतिरिक्त अन्य भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये गए। संवत्सरी पर्व निर्णय, पाक्षिक तिथि निर्णय आदि के अतिरिक्त दीक्षा, प्रतिक्रमण तथा साधना आदि के नियम भी बनाए गए। श्रमण संघकी समाचारी के सम्बन्ध में एक विस्तृत प्रस्ताव स्वीकार किया गया। वस्त्रों, पात्रों तथा गोचरी की मर्यादा के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव पास किये गए। साधुओं की दिन चर्या के सम्बन्ध में विस्तृत आदेश दिये गए।

इस प्रकार यह सम्मेलन वैशाख शुक्ला द्वितीया संवत् २००६ तदनुसार तारीख २७ अप्रैल १६५२ को आरम्भ हो कर ग्यारह दिन तक चला और वैशाख शुक्ला त्रयोदशी संवत् २००६ तदनुसार ७ मई १६५२ को समाप्त हुआ।

सम्मेलन के अन्तिम दिन वैशाख शुक्ला त्रयोदशी संवत् २००६ को आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज को विधिपूर्वक आचार्य पद की चादर दी गई। इस समय सब मुनि प्रतिज्ञा पत्र भर भर कर तयार थे और उन्होंने आचार्य पद की विधानविधि के समाप्त होते ही अपने अपने प्रतिज्ञा पत्र उनके चरणों में समर्पित कर दिये।

इस सम्मेलन में आचार्य श्री आत्मा राम जी महाराज की सम्प्रदाय के बीस मुनिराज उपस्थित थे, जिन में चार प्रतिनिधि मुनि थे।

इस प्रकार पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज द्वारा आरंभ किये संघ ऐक्य के कार्य को अजमेर में आरम्भ करके सादड़ी में समाप्त किया गया।

अजमेर सम्मेलन का आयोजन पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की आज्ञानुसार किया गया था। इस सम्मेलन के कारण सबके ध्यान में यह बात आ गई कि मुनिसंघ में प्रचलित तत्कालीन अनेक संप्रदाय समाज की एकता में बाधक थे और उनको आपस में संगठित करके एक आचार्य के नेतृत्व में लाना आवश्यक है। अजमेर में सब आचार्यों के ऊपर पूज्य श्री सोहन लाल जी महाराज को प्रधान आचार्य बनाया गया था। किन्तु सादड़ी में पृथक् पृथक् आचार्यों के पदों को समाप्त करके स्वर्गीय प्रधानाचार्य पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज की एकता की भावना के प्रयत्न को सफल कर समस्त संघ का एक आचार्य बनाया गया।

इस प्रकार पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज द्वारा बोए हुए एकता के बीज में उनके उत्तराधिकारी पूज्य श्री काशी राम जी महाराज ने अजमेर में व्यवस्था स्थापित करके बम्बई में एकता की ऐसी योजना बनाई, जिसको सादड़ी सम्मेलन में पूर्ण किया गया।

परिशिष्ठ

आत्मा राम जी संवेगी का कुछ अन्य वर्णन

(यह वर्णन पुस्तक समाप्त हो जाने के बाद मिलने के कारण सब से अन्त में दिया जा रहा है।

सम्पादक—)

आत्माराम जी के एक चातुर्मास के अवसर पर जंडियाला गुरु के एक स्थानकवासी श्रावक मोहर सिंह ने उनके पास आकर उनसे प्रश्न किया

मोहर सिंह—मैंने सुना है कि आप कुछ लोगों से यह कहते हैं कि "मुख पत्ती है तो ठीक, किन्तु उसको हमेशा नहीं बांधना चाहिये" और कुछ लोगों से आप मुख पत्ती की निन्दा करते हैं और कहते हैं कि 'नंगे मुख न बोलने से मतलब है, मुखपत्ती हो या न हो, क्या यह बात सत्य है ?

आतमा राम जी—मैं कहने वाले का जिम्मेवार नहीं हूं।

मोहर सिंह—क्या आप मुखवस्त्रिका को बांधना ठीक मानते है ?

आत्मा राम—हां, बहुत कुछ ठीक मानता हूं।

मोहर सिंह—तो कुछ कुछ ठीक नहीं भी मानते हैं ?

आत्मा राम—ऐसा भी हो सकता है।

मोहर सिंह—तो आपने जो मुख वस्त्रिका बांधी हुई है वह भावों से है, या उसमें कुछ कसर है ?

आत्मा राम—यदि मैं मुख वस्त्रिका न बांधूं तो मेरे पास कौन आकर फंसे। आप जैसे बैलों को अपने बाड़े में फसाने के लिये बांधनी ही पड़ती है।

मोहर सिंह—तब तो आपके ऊपर माया का पूरा दखल है और जहां माया है वहां साधुता का दिवाला है। आपने मुख वस्त्रिका लोगों को धोखा देने भर को बांधी हुई है। इस लिये आप को इसे उतार देना चाहिये, जिससे दुनिया धोखा न खावे। आपके चुंगल में फंसने वाले मनुष्य जन्म भर याद करके दुर्गति के पथगामी बनेंगे।

× × × ×

एक अन्य अवसर पर एक शिक्षित स्थानकवासी श्रावक ने आत्मा राम जी के पास आकर उनसे पूछा

श्रावक—कहां तो आप छै काय के जीवों की रक्षा किया करते थे और आज आप अपने सावद्य कार्यों में संयम का भी विचार नहीं रखते। आप जानते हैं कि सिद्धान्त ग्रन्थों में फूलों में जीव माने गए हैं, फिर भी आप मूर्त्ति पूजा के लिये फूल चढ़ाने का उपदेश देते हैं। क्या इसमें हिंसा नहीं होती ?

आत्मा राम जी—पहिले मुझे फूलों में जीव दिखला दो। उसके बाद मैं तुमको उत्तर दूंगा।

× × × ×

लाहौर जिले के पट्टी नामक नगर में एक लाला घसीटा मल रहते ते। उन्होंने आत्मा राम जी के पास आकर उनसे कहा

"आप बीस वर्ष से अधिक समय तक निर्ग्रन्थ मुनि बने रहे, किन्तु जब आपके शिथिलाचरण के कारण आपको श्वेताम्बर स्थानकवासी मुनि संघ से निकाल दिया गया तो

आप संवेगी बने। किन्तु क्या संवेगी बन कर भी आप अपने चारित्र की त्रुटि को दूर न करेंगे? ज्ञान तो आत्मा का गुण है तो फिर इसकी क्या गारंटी है कि आप जो कहते हैं वह सत्य है? आपके वचन को सत्य आपके स्थानकवासी वेष में ही माना जा सकता था। अब तो वह सच हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। इस लिये आप को अपने अन्दर की चारित्र की त्रुटि को मान कर उसे ठीक कर लेना चाहिये।"

आत्मा राम जी—पहिले आप अपने सबसे बड़े पुत्र को संस्कृत पढ़ा कर न्याय पढ़ाओ। फिर वह लड़का आप से जो कुछ करने को कहे वही करो। सत्य मार्ग को इसी प्रकार जाना जा सकता है। यही आपकी बात का उत्तर है।

श्रावक—तब तो संस्कृत तथा न्याय के विद्वान् जो कुछ कहें उसी को धर्म मानना चाहिये। पुत्र को पढ़ा कर उसका कहा करने की अपेक्षा तो यही अच्छा रहेगा कि काशी जी जाकर वहां के विद्वानों से शंका समाधान करे और जो कुछ वह कहें वही आंख मूंद कर मान लिया जावे। यह बात आप पर भी लागू होगी। क्यों कि उन विद्वानों के सामने तो आप भी जुगनूं ही हैं।

अस्तु प्रथम यह मार्ग आप को ही ग्रहण करना चाहिये। यह कह कर वह चला गया।

यह उनकी विद्वत्ता तथा उत्तर देने की शैली का नमूना है।

आदर्श आचार्य

परम योगी परम ज्ञानी, पूज्य सोहनलाल थे
परम त्यागी परम ध्यानी, पूज्य सोहनलाल थे
जैन जाति को जगाया, आपने जिन सन्त बन
था हृदय पावन अति, अमृत से मीठे थे वचन
वीर वाणी विज्ञ थे, मर्मज्ञ थे साहित्य के
गूढ़तम पाखण्ड तम के वास्ते आदित्य थे
जैन ज्योतिष में विचक्षणता भी पाई थी महां
गंभीरता और धीरता की क्या कहूं मैं खूबियां
वैराग्यपूर्ण उग्रक्रिया आपकी विख्यात थी
शान्ति समता सरलता की भी क्या बस बात थी
बाल ब्रह्मचारी क्षमाधारी महाभारी हुए
सुयशस्वी वर्चस्वी आदर्श उपकारी हुए
बाईस वर्षों का बड़ा तप एकान्तर कर महा
आपने अपनी बनाई खूब निर्मल आत्मा
अजमेर सम्मेलन में गहरा आप श्री का हाथ था
जैन धर्मोद्योत का रहता फिकर दिन रात था
देश देशान्तर में झण्डा धर्म का लहरा दिया
दया दान करुणा का सबक संसार को सिखला दिया
सूत्र वचनों को न पलटा सन्मार्ग पर ही चले
पाप को लौकिक बनाकर पुण्य नहीं प्राणी छले
दम्भ करनी में कुशल दया दान के जो शत्रु थे
कांपते थे आपकी वेर विद्वत्ता और नाम से
प्रति वर्ष अपना पाट उत्सव आप करवाते न थे
पाखण्ड और अभिमान के कुकृत्य ये भाते न थे

पंचमी जाते समय नौकर न रखते साथ थे
आप निर्भय सर्वथा संसार में दिन रात थे
आर्याओं से कभी आहार मंगवाते न थे
उनसे स्वप्रति लेखना भी आप करवाते न थे
गोचरी करते थे अब भी दोष पूरे टाल कर
थे बने सरताज सबके शुद्ध संयम पालकर
बांधकर बारी कभी आहार को लाते न थे
एक घर एकान्तर व नित्य कभी जाते न थे
साथ रखकर मार्ग में भोजन न भाइयों से लिया
सूत्र वर्णित शुद्ध संयम आपने पालन किया
आपके पुरखा भी इस रीति का पालन कर गए
संघ सन्मुख आप भी आदर्श अनुपम धर गए
चल रहे हैं आज भी सच्चे श्रवण इस राह पर
ध्यान देते हैं नहीं जो झूठी वाह वाह पर
आपकी महिमा सुनाए और क्या चन्दन मुनि
आप थे संसार में मुख्याचार्य शिरोमणि

साहित्य शिक्षण संचालक—

मुनि सुशील कुमार शास्त्री जी

की ओर से दी गई

श्रद्धाञ्जलि

पंजाब के महानतम आचार्य देव श्री १००८ श्री सोहनलाल जी महाराज का संयम तथा श्रद्धापूत जीवन पाठकों की चेतना को अनन्त की ओर उत्प्रेरित करेगा तथा विषमता—और अर्थ भेद की चक्की में पिसता हुआ जन मानस मार्ग दर्शन पायेगा यही एक कामना है। आचार्य श्री का जीवन संसार की बलखाती हुई मोह भंगिमाओं और ऐषणिक सम्पदाओं से भरपूर होने पर भी गीता के अनाशक्ति योग का, तथा पुष्कर पलाश वन्निर्लेप की साधना का ज्वलन्त साकार देदीप्यमान चित्र है।

उनकी अमोघ साधना, तपः पूतसंयम तथा आर्हति रसासिक्त वाणी, भव्य विचारणा, अव्यर्थ सर्जन शक्ति और विलक्षण प्रतिभा, प्राक्कालीन संस्कारों की उज्जवल प्रादुर्भूत विरासत थी।

वे जन मानस के सच्चे पारखी और विषम से विषम समस्याओं को सुलझा देने में सिद्ध थे। उनका समग्र जीवन लोक सेवा में तथा आत्म साधना में प्रत्यर्पित हुआ। ऐसे मंगलमय युगीन महापुरुष का जीवन वर्तमान के लिये नहीं अपितु भविष्य के लिये ही अधिक होता है।

विज्ञान तथा युद्धत्रस्त मानव और अन्धकाराच्छन्न युग को आचार्य देव का जीवन, जीवन की किरण बनकर युग के

सन्मार्ग को प्रकाशित कर सके, इसी अन्तःकामना के साथ सम्पादक वर्ग के महान प्रयास का अभिनन्दन करूंगा और इन्हीं दो शब्दों की अर्धस्फुटित कलियों की श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का साहस करूंगा।

(साहित्य शिक्षण संचालक—
मुनि सुशील शास्त्री,
भास्कर, साहित्य रत्न, आचार्य)

प्रेषक:—आचार्य सत्यपाल शर्मा,
बम्बई, विलेपार्ला।
चातुर्मास १०-११-५३।

नोट:—शेष श्रद्धाञ्जलियां पृथक प्रकाशित की जायेंगी।

आचार्य श्री सोहनलाल जी महामुनेः
संक्षिप्त मितिवृत्तम्

बभूवाऽमृतवर्षीसः, शान्तो दान्तो दयानिधिः।
आचार्य्यसोहनो देवः, जैनसिद्धान्तकोविदः ॥१॥

तपस्वी भिक्षुको धीरः प्रतापी तेजसां निधिः।
भिक्षुकोऽपि प्रभावेण रराज नृपसंनिभः ॥२॥

चरित्रं, परमं ज्ञानं, ततो दर्शन मव्ययम्।
त्रीणि रत्नानि संलेभे, मोक्षमार्गस्य कारणम् ॥३॥

सांवडियाला ग्रामे, स्यालकोटस्य संनिधौ।
१६-६
नन्दभूमिरसे जन्म माघकृष्णादिमे दिने ॥४॥

१६-३२
नन्दभू नेत्रनेत्रांके, मार्गशीर्षासिते दले।
पञ्चम्यां चन्द्रवारे च, दीक्षा मेषोऽग्रहीच्छुभाम् ॥५॥

गृहीत्वा पावनीं दीक्षां, भिक्षुर मेषोऽग्रहीन्मुनिः।
विचचार पृथिव्यां सः, जनतां भृश मुद्धरन् ॥६॥

मोहजाले निर्यातितान्, श्रावकानेष तापसः।
उद्धार वचोदीपैः, संसारध्वान्तनाशकैः ॥७॥

एवं परिभ्रमन्भूमौ, भिक्षया वर्त्तयन् तनुम् ।।
उद्धरन् जनता माप, परमं लाभ मात्मनः ।।८।।

१६ ९२
नन्दभूमि मिते वर्षे, दोर्नन्दांकेऽथ वैक्रमे ।
आषाढस्य शुक्लषष्ठ्यां, नाक माप सुधापुरे ।।९।।

इदं चरित्रं परमं तपस्विनां
मूर्धाभिषिक्तस्य सभासु भास्वतः ।
संमेलने साधुगणस्य राजतः
पठन्तु श्रण्वघहारि मानवाः ।।१०।।

तच्छिष्यशुक्लचन्द्रस्य
संमत्या चरितं मुनेः ।
वर्णितं जयरामेण
साहित्याचार्य्यशास्त्रिणा ।।११।।

इतिश्रीविद्वद्वरसाहित्याचार्य्यजयरामशास्त्रिप्रणीतं संक्षिप्त
माचार्यसोहनलालचरितम् समाप्तम् ।

शुद्धि पत्र

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
न सन्भवात्	असम्भवात्	घ	१४
घर्मकीर्ति	धर्मकीर्ति	ङ	२०
ज्तोति	ज्योति	च	१
उच्छ्ंखल	उच्छृंखल	ठ	२१
ज्य	पूज्य	ढ	२५
कानून	कानोड़	न	६
जनना	जननी	१	२
व्यास	व्यास	२	६
जैनधर्म:	जैनोधर्म:	११	२
सद़ गुरूणां	सद् गुरूणां	११	४
शुद्वशीलं	शुद्धंशीलं	११	५
नाल्य पुष्यै:	नाल्य पुण्यै:	११	५
चक्रव्यूह्	चक्रव्यूह	१३	१७-१८
श्बेत	श्वेत	१८	२१
मध्यान	मध्यान्ह	३५	१०
अन्त्तर	अन्तर	६१	२
उस्पन्न	उत्पन्न	६२	२३
व्यत्तिक्रम	व्यतिक्रम	६६	१५
सेवा धर्मो	सेवा धर्म:	६६	१
प्रशसा	प्रशंसा	१०१	८
बग्गी	बग्घी	१११	६
"	"	११४	१६
वौद्धों	बौद्धों	१२१	३
प्रात्त	प्राप्त	१४३	६
इन्द्र	इन्द्र	१७८	१६

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
उत्तर	उत्तर	१६२	१४
वर्षा	वर्षा	२०१	१६
बग्गी	बग्घी	२०४	१६
काय	कार्य	२०८	१७
भाख	भास	२४३	४
विद्दत्ता	विद्वत्ता	२५३	८
साहनलाल जी	सोहनलाल जी	२५४	४
अभियातकों	अभिभावकों	२५८	१
उल्लघन	उल्लंघन	२५६	२१
ब्राह्यण	ब्राह्मण	२६०	१०
बृत्तान्त	वृत्तान्त	२६२	१५
संघर्स	संघर्ष	२६८	२०
उत्तरदायित्व	उत्तरदायित्व	२६६	३
पूर्वक	पूर्वक	२६६	२०
गणाविछेदक	गणावच्छेदक	२७०	४
उपस्थिति	उपस्थित	२७८	४
स्पष्ट सत्र से	स्पष्ट रूप से	२८०	१५
विशय	विषय	२८१	५
चातुर्मास	चातुर्मास	२८१	१४-१५
शान्ती	शान्ति	२८२	८
अत्याधिक	अत्यधिक	२८२	६
धम	धर्म	२८४	१०
शब्दों	शब्दों	२८५	२०
लीधी	लोधी	२८६	२४
सुधर्य स्वामी	सुधर्मा स्वामी	२६४	५
गर्जत्यम्रे	गर्जयत्यम्रे	२६६	२
शब्द	शब्द	२६८	१२

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
प्रयार्जन	प्रमार्जन	२६६	२३
नामनं	नाभाने	३०१	२०
मनुष्म	मनुष्य	३०७	५
बकुल	बकुश	३१०	१०
कार्यकर्ता	कार्यकर्ता	३१६	३
स्वय	स्वयं	३२५	२४
मुझका	मुझको	३२६	१६
सन्बध	सम्बध	३३१	२३
उन्छृंखल	उच्छृंखल	३३२	५
तुस्हारी	तुम्हारी	३३२	६
जग	जैन	३३७	१३
चातुर्मास	चातुर्मास	३३६	१२
प्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष	३४४	१५
योग्न	योग्य	३४८	११
भारताय	भारतीय	३५०	१४
जेमरल	जनरल	३५१	११
हुशा	हुआ	३५१	१२
सम्शेलन	सम्मेलन	३५१	१३.
श्रतिरिक्त	अतिरिक्त	३५२	१
माड़वाड़	मारवाड़	३५२	१०
बृहत्	बृहत्	३५३	१
मकार	प्रकार	३५३	२०
पर्ण	पूर्ण	३५३	२५
प्रचारकार्य नें	प्रचारकार्य में	३५४	१४
महाचाय	महाचार्य	३५४	१७
प्रवतिनी	प्रवर्तिनी	३५४	२५
वर्तमान	बर्तमान	३५५	१५

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
ार्ग	मार्ग	३५६	२
सुनि	मुनि	३५६	४
उदषचन्द ी	उदयचन्दजी	३५६	११
द न	दर्शन	३५७	१०
वैठकों	बैठकों	३५७	२४
आचार्य पद	प्रधानाचार्य	३६१	१
म्नेलन	सम्मेलन	३६१	१६
दाक्षा	दीक्षा	३६४	१०
दीज्ञा	दीक्षा	३६४	१४
शाष	शिष्य	३६४	१६
कार्य	कार्य	३६४	२१
ध्याम	ध्यान	३६४	२२
धूलचम्द	धूलचन्द	३६५	१२
विशेषत्त	विशेषज्ञ	३६५	१६
मुमुत्तु	मुमुक्षु	३६६	७
वन्द	वन्द	३६६	१७
भा	भी	३६७	१०
राका	रोका	३७१	६
आक्रमण	आक्रमण	३७६	१७
मुकद्मा	मुकदमा	३७७	८
उत्पादस्य ध्रुवो	जातस्यहि ध्रुवं	३८८	१५
वाणा	वाणी	३६५	२३
श्रा	श्री	४०६	१२
म ाराज	महाराज	४१३	४
श्रीयल जी	श्रेमल जी	४१४	२०
धर्ष	धर्म	४१६	११